श्रीभरतमुनिप्रणीतं

नाट्यशास्त्रम्

NĀTYAŚĀSTRA

(प्रारम्भिकाध्यायद्वयमात्रम्)

संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याद्वयसंवलितम्

(१ से २ अध्याय)

015,2:9,1
152N9

सम्पादकश्च :

पं० श्रीजगन्नाथशास्त्री तैलङ्ग

भारतीय विद्या प्रकाशन

दिल्ली वाराणसी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

015,2:g,L 7048
152N9
Tailang, Jagannath
Shastri, Ed.
Natyasastram.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

015,2:8,1
152N9

7048

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

❁ ❁ ❁ ❁ ❁

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्रीभरतमुनिप्रणीतं

नाट्यशास्त्रम्

NĀṬYAŚĀSTRA

(१ से २ अध्याय)

(प्रारम्भिकाध्यायद्वयमात्रम्)

संस्कृत-हिन्दी-व्याख्याद्वयसंवलितम्

With Best Compliments ...
From:- Bharatiya Vidya Prakashan

'अभिनवभारती' संस्कृतव्याख्याकारः अभिनवगुप्तपादाचार्य

सविस्तार-भूमिकासहित 'तात्पर्यदीपिका' हिन्दीव्याख्याकारः

सम्पादकश्च पं. श्रीजगन्नाथशास्त्री तैलङ्गः

प्रकाशकः

भारतीय विद्या प्रकाशन

वाराणसी ० दिल्ली

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

प्रकाशक :

© भारतीय विद्या प्रकाशन

पो० बा० नं. ११०८ कचौडी गली, वाराणसी-२२१००१

फोन: (०५४२)३९२३७६

१, यू० बी० जवाहरनगर, बंग्लो रोड, दिल्ली-११०००७

फोन: (०११)३९७१५७०

015,2:g,1
152N9

अन्य प्राप्ति-स्थान:

भारतीय बुक कारपोरेशन

पो. बा. नं० २१४४

१, यू. बी. जवाहरनगर, बंग्लो रोड,

दिल्ली-११०००७

मूल्य : ५०.००

प्रथम संस्करण २०००

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 2048

अक्षर संयोजन

मीमांसा कम्प्यूटर,

वाराणसी

मुद्रण:

जैन अमर प्रिंटिंग प्रेस

दिल्ली-७

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

प्रस्तुत संस्करण

यह संस्करण अभिनवभारती और तात्पर्यदीपिका के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। तात्पर्यदीपिका में अन्वय, व्याख्या और भावार्थ समाविष्ट हैं। तात्पर्यदीपिका 'अभिनवभारती' पर आधारित है, किन्तु वह उसका अनुवाद-मात्र नहीं है।

नाट्यशास्त्र के 'अभिनव भारती' का दिल्ली-संस्करण उपलब्ध कराने के निमित्त मैं चिरंजीव पं. माधव जनार्दन रटाटे को शुभाशीर्वाद देता हूँ। भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, दिल्ली के मालिक श्री किशोर चन्द जैन जी के पुत्र राकेश जैन की प्रेरणा से यह संस्करण तैयार किया जा सका। इसके लिए उन्हें अनेक शुभाशीर्वाद। वे इसी प्रकार प्रकाशन क्षेत्र में अग्रणी हों।

निर्जला एकादशी, २०५६ —जगन्नाथशास्त्री तैलङ्ग
२४ जून, १९९९, गुरुवार

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

प्रकाशक :
© भारतीय विद्या प्रकाशन

LIBRARY

वाराणसी

मुद्रक:
श्री अमर प्रिंटिंग प्रेस

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

पूर्व-पीठिका

मानव की जीवन यात्रा के दो मार्ग हैं–प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग। जब उसके जीवन का उद्देश्य भोग होता है, तब वह प्रवृत्तिमार्ग पर चलता है और जब उसका लक्ष्य मोक्ष होता है, तब वह निवृत्ति मार्ग अपनाता है। यहां भोग का तात्पर्य सुखोपभोग से है। यद्यपि उसकी जीवन-यात्रा में सुख और दुःख के रथ-चक्र चलते रहते हैं। दुःखों से छुटकारा और सुखोपभोग के लिए वह प्रवृत्ति मार्ग अपनाता है और शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए निवृत्ति मार्ग।

सुखोपभोग -त्रिवर्ग के अन्तर्गत समाहित है। वह त्रिवर्ग है–धर्म, अर्थ और काम। मोक्ष को मिलाकर वही चतुर्वर्ग कहलाता है। जैसा कि अमरकोष(२।७।५७) में वर्णित है–

त्रिवर्गो धर्मकामार्थैः चतुर्वर्गः समोक्षकैः

त्रिवर्ग में अर्थ और काम की लालसा प्रत्येक व्यक्ति में रहती है। यहां अर्थ का तात्पर्य चल और अचल सम्पत्ति से है और काम का तात्पर्य है पुरुष की विषय वासना

पुंसो या विषयापेक्षा स काम इति भण्यते

अर्थ अथवा काम की प्राप्ति धर्म की अविरोधिनी होनी चाहिए। यहां धर्म का तात्पर्य सीमित नहीं, अपितु व्यापक है। शास्त्रविहित कर्मों के आचरण से उत्पन्न भावी शुभफल का साधन वही है। वह अदृष्ट है, जिसे हम देख नहीं सकते।

विहितः क्रिपया साध्यो धर्मः पुंसां गुणो मतः

धर्म शब्द का श्रौत-स्मार्त कर्मकाण्ड अर्थ में प्रयोग लाक्षणिक है। चारों मिलकर पुरुषार्थ कहलाते हैं। मनुष्य जीवन के ये ही चार प्रयोजक (अर्थ) हैं, अत एव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी पुरुषार्थ हैं। शाश्वत सुख की दृष्टि से केवल मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है, उसके साथ त्रिवर्ग को भी पुरुषार्थ शब्द से संकेतित किया गया है।

नाट्य अथवा तौर्यत्रिक

त्रिवर्ग को प्राप्त करने का सर्वसुलभ साधन है नाट्य, जैसा कि अग्निपुराण का वचन है–त्रिवर्गसाधनं नाट्यम्। वह नाट्य श्रीगणेशस्वरूप भी है। गणेशपुराणान्तर्गत 'श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्र' में श्रीगणेशजी का अन्यतम नाम काव्य-नाटक भी है–

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वं काव्यनाटकम्

इसकी व्याख्या करते हुए खद्योत-वार्तिककार परम-तान्त्रिक निगमागमवेत्ता श्रीभास्करराय दीक्षित लिखते हैं–

काव्यनाटकशब्दाभ्यां श्रव्यं दृश्यं च गृह्यते ।
श्रव्यमष्टविधं दृश्यमष्टाविंशतिधा च यत् ।।
संकीर्णं यच्च बहुधा तत् तत् सर्वात्मको भवान् ।।
(४४८,४४९)

इस प्रकार अष्टविध श्रव्य काव्य के अन्तर्गत और अठ्ठाईस(२८) प्रकार का दृश्य नाटक शब्द से संकेतित है। श्रव्य और दृश्य द्विविध काव्यस्वरूप श्रीगणेशस्वरूप ही हैं। काव्य का दृश्यस्वरूप ही नाट्य है, जिसे अग्निपुराण में त्रिवर्ग का साधन माना है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

शब्दस्तोत्रमहानिधि में नट के कर्तव्य को नाट्य कहा है, जिसके त्रिविध रूप हैं–नृत्य, गीत और वाद्य। अत एव अमरकोष (१।७।१०) में इसका अपर पर्याय तौर्यत्रिक है–

तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्

भारतीय नाट्यशास्त्र के प्रारम्भ में भरतमुनि ने इस प्रकार ग्रन्थ-प्रतिज्ञा की है–

प्रणम्य शिरसा देवौ पितामह-महेश्वरौ ।
नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम् ।।

इस पद्य में ग्रन्थकार ने पितामह और महेश्वर को सिर झुकाकर प्रणाम किया है। अभिनवगुप्तपादाचार्य इस पर विशेष प्रकाश डालते हैं। उनकर मत यह है कि त्रिदेव नाट्यशास्त्र के उपज्ञ आचार्य हैं।

नाट्यशास्त्र के उपज्ञ देवता–

इस शास्त्र के उपज्ञ देवता ब्रह्मदेव, विष्णु और महेश्वर तीनों हैं। इनमें भगवान् विष्णु कैशिकी आदि वृत्तियों के सर्जक हैं, भरतमुनि ने पितामह ब्रह्मदेव से साक्षात् नाट्यशास्त्रोपदेश लिया था। द्वितीय देव महेश्वर सांध्य-वेला में साभिनय नृत्य करते हैं, अतः वे भी नाट्य और उसके उपकारक नृत्य की आचार्यकोटि, गुरु कोटि में होने के कारण भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के आदि में उन दोनों की वन्दना की है। विष्णु की नहीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार महर्षि पाणिनि ने चतुर्दश माहेश्वर सूत्रों से प्रेरणा पाकर अष्टाध्यायी की सर्जना की, उसी प्रकार भरतमुनि ने नाट्यसम्मत छत्तीस शैव सूत्रों पर छत्तीस अध्यायों में नाट्यशास्त्र की सर्जना की। इसमें अभिनवभारती की शिववंदना प्रमाण है–

षट्त्रिंशकाऽऽत्मकजगद्गगनावभास-
संविन्मरीचिचयचुम्बितबिम्बशोभम् ।
षट्त्रिंशकं भरतसूत्रमिदं विवृण्वन्
वन्दे शिवं श्रुति-तदर्थविवेकि धाम ।।

जिस प्रकार परमशिव द्वारा शिव से धरणी तक छत्तीस तत्त्वों की सृष्टि हुई, उसी प्रकार परमशिव द्वारा आदि भरत अथवा वृद्ध-भरत को पितामह ब्रह्मदेव से प्राप्त इन छत्तीस सूत्रों की उत्पत्ति हुई।

आचार्य बलदेव अपाध्याय के अनुसार उपलब्ध भारतीय नाट्यशास्त्र के तीन स्तर हैं। उनका मत संस्कृतशास्त्रों का इतिहास में इस प्रकार उद्धृत है–

"नाट्यशास्त्र में तीन स्तर दीख पड़ते हैं–(१) सूत्र, (२) भाष्य, (३) श्लोक या कारिका। इन तीनों का उदाहरण हमें इसमें देखने को मिलता है। ऐसा जान पड़ता है कि मूलग्रन्थ सूत्रात्मक था, जिसका रूप छठें और सातवें अध्याय में आज भी देखने को मिलता है। तदनन्तर भरत के सूत्रों का अभिप्राय उदाहरण देखकर स्पष्ट समझाया गया। तीसरा अन्तिम स्तर कारिकाओं का है, जिसमें नाटकीय विषयों का बड़ा ही विपुल तथा विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया।"

–संस्कृतशास्त्रों का इतिहास, तृतीय परिच्छेद, पृ. १६१
(प्रथम संस्करण, १९६९)

आचार्य कोहल द्वारा संभवतः उपलब्ध कारिकाएं लिखी गयीं। भारतीय नाट्यशास्त्र के मूल छत्तीस सूत्र भरतमुनि को प्राप्त होने के कारण भरतसूत्र के नाम

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

से प्रसिद्ध हुए। ये भरतमुनि मान्धाता के प्रपौत्र भरत, दशरथपुत्र भरत, दुष्यन्त पुत्र भरत और जड भरत से भिन्न हैं। नाट्यशास्त्रकार भरत का उल्लेख **मत्स्यपुराण** (२४।२७-३२) में प्राप्त है।

महाकवि भवभूमि (सप्तमशतक पूर्वार्द्ध) अपने **उत्तररामचरित** नाटक में भगवान् भरत को 'तौर्यत्रिक सूत्रधार' के नाम से संबोधित करते हैं- **तं च स्वहस्तलिखितं मुनिर्भगवान् व्यसृजत् भगवतो भरतस्य तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य।**

दशरूपककार धनंजय के मत में ब्रह्मदेव ने नाट्यवेद की सृष्टि की, भरतमुनि ने उसका प्रयोग किया और नटराज शिव ने ताण्डव नृत्य किया-

उद्धृत्योद्धस्य सारं यमखिलनिगमन्नाट्यवेदं विरञ्चि-
श्चक्रे यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नीलकण्ठः ।(१।४)

कविकुलगुरु कालिदास के मतानुसार भरतमुनि ने ही सर्वप्रथम अष्टविध नाट्यरसों पर आधारित नाट्यप्रयोगों का प्रदर्शन किया था-

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो
भवतीष्वष्टरसाश्रयः प्रवृत्तः
(-विक्रमोर्वशीय)

काव्यप्रकाश के टीकाकार महेश्वर और विद्याभूषणकृत साहित्यकौमुदी के कृष्णानन्दिनी व्याख्याकार का मत है कि भरतमुनि ने अग्निपुराण की कारिकाओं को उद्धृत करते हुए अपने ग्रन्थ का निर्माण किया। इनमें महेश्वर का उद्धरण इस प्रकार है-**सुकुमारान् राजकुमारान् स्वादुकाव्यप्रवृत्तिद्वारा गहने शास्त्रकान्तारे प्रवर्तयितुम् अग्निपुराणादुद्धृत्य काव्यरसास्वादकारणमलङ्कारशास्त्रं कारिकाभिः संक्षिप्य भरतमुनिः प्रणीतवान्।**

कृष्णानन्दिनी का उद्धरण इस प्रकार है-**काव्यरसास्वादनाय वह्निपुराणादिदृष्टां साहित्यप्रक्रियां भरतः संक्षिप्ताभिः कारिकाभिः निबबन्ध।**

रचनाकाल

कतिपय स्थलों में अग्निपुराण और नाट्यशास्त्र की कारिकाएं यथावत् प्राप्त होती हैं। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य (ई. नवम शतक) ने अनेक स्थलों पर भरतमुनि का सादर स्मरण किया है। गद्यकवि बाणभट्ट भी अपने हर्षचरित और कादम्बरी में भरत का नामोल्लेख करते हैं। त्रिस्तरीय नाट्यशास्त्र के रचनाकाल की दृष्टि से मूल सूत्र ग्रन्थ की रचना सूत्रकाल (ई.पू.चतुर्थ शतक) में हुई। तदनन्तर इसकी गद्यात्मक सोदाहरण व्याख्या की गयी और पश्चात् कारिकाग्रन्थ का निर्माण किया गया। उपलब्ध नाट्यशास्त्र में शक, यवन, पल्लव आदि भारत पर आक्रमण करनेवाली विदेशी जातियों का उल्लेख है, जिन्होंने भारत पर ई. प्रथम शतक में आक्रमण किया था। अतः समग्र नाट्यशास्त्र का रचनाकाल ई. पू. चतुर्थ शतक से ई. प्रथम शतक तक स्थिर किया जा सकता है।

दो प्रकार के भरतसूत्र उपलब्ध हैं-(१) **विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः** जैसे गद्यसूत्र। (२) सूत्रानुबद्ध आर्याएं अथवा आनुर्वश्य श्लोक। इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र के अन्य दो भाग भी हैं-(१) गद्यसूत्रों के गद्यात्मक भाष्य और (२) अनुष्टुप् पद्यमय कारिकाभाग।

अतः परं प्रवक्ष्यामि सूत्रग्रन्थनिबन्धनम् (६।३४)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

इत्यादि की व्याख्या करते हुए अभिनवगुप्तपादाचार्य नें सूत्र का अर्थ लक्षण तथा ग्रन्थ का अर्थ भाष्य किया है और वह भाष्य कहां से कहां तक है इसका स्पष्टीकरण भी दिया है। अभिनवगुप्तपादाचार्य के अनुसार सूत्रानुबद्ध आर्याएं प्रथम एक स्थान पर पठित थीं, भरतमुनि ने उनका वर्गीकरण किया–ता एता आर्या एकप्रघट्टकतया पूर्वाचार्यैर्लक्षणत्वेन पठिताः, मुनिना तु सुखसंग्रहाय यथास्थानं पठिताः। अत्रानुवंश्यौ श्लोकौ भवतः (षष्ठ अध्याय), इसका स्पष्टीकरण अभिनवभारती कार इस प्रकार करते हैं–'अनुवंशभवौ शिष्याचार्यपरंपरासु वर्तमानौ श्लोकाख्यौ सूत्रार्थसंक्षेपप्रकटीकरणेन कारिकाशब्दवाच्यौ। अर्थात् आनुवंश्य का तात्पर्य भी वही है, जो वंशपरम्परा से प्राप्त होता है, उसे 'आनुवंश्य' कहते हैं।

नट और भरत–'अमरकोष' में नट शब्द के छः पर्याय इस प्रकार पठित हैं–

शैलालिनस्तु शैलूषा जायाजीवा कृशाश्विनः, भरता इत्यपि नटाः

(२।१०।१२)

भट्टोजिदीक्षित के पुत्र भानुजीदीक्षित की अमरकोष व्याख्या 'सुधा' के अनुसार शलालि आचार्य द्वारा प्रोक्त नटसूत्र के अध्येता नट शैलाली हैं। शिलुष ऋषि के अपत्य होने से उनका नाम शैलूष भी है। वे नायिकाओं से जीवन-यापन करते हैं, अतः उनका नाम जायाजीव भी है। कृशाश्वप्रोक्त नटसूत्र का अध्ययपनकर्ता होने के कारण वे 'कृशाश्वी' नामसे भी संबोधित हैं। नट भरतमुनि के शिष्य होने के कारण 'भरत' भी हैं–'भरतस्य मुनेः शिष्याः'। वाचस्पति के अनुसार नट के दो अन्य पर्याय हैं– रङ्गावतार और भारत। रंगमंच पर अवतीर्ण होने के कारण उन्हें रंगावतार कहते हैं और भरतमुनि के शिष्य होने के कारण भारत भी।

रङ्गवतारौ शैलूषौ नटौ भरतभारतौ (सुधा-व्याख्या)

उपलब्ध संस्करण

उपलब्ध नाट्यशास्त्र के कतिपय अध्यायों की पाण्डुलिपि १८६५ ई. में फ्रेडिक हाल को प्राप्त हुई, जिसको उन्होंने 'दशरूपक' के परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित किया। १८९४ ई. में निर्णयसागर से इसका संपूर्ण रूप से प्रथम बार प्रकाशन हुआ। १९२९ ई. में पण्डित बटुकनाथ शर्मा एवं आचार्य बलदेव उपाध्याय के सम्पादन में इसका काशी-संस्करण प्रकाशित हुआ।

अभिनवगुप्तपादाचार्य कृत अभिनवभारती के साथ सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र को गायकवाड़ ओरियण्टल् सीरिज, बड़ौदा द्वारा १९२६ ई. से १९६४ ई. तक चार खण्डों में प्रकाशित किया गया, जिसके प्रथम तीन खण्डों का सम्पादन मानवल्ली रामकृष्ण कवि और अंतिमखण्ड का सम्पादन श्री जे.एस. पदे ने किया।

नाट्यशास्त्र की व्याख्याएं

उपलब्ध नाट्यशास्त्र पर एकमात्र व्याख्या अभिनवगुप्तपादाचार्य विरचित अभिनवभारती है। अभिनवगुप्त तथा शार्ंगदेव द्वारा उद्धृत टीकाकारों के नाम इस प्रकार हैं–(१) उद्भट, (२) लोल्लट, (३) शंकुक, (४) भट्टनायक, (५) राहुल, (६) भट्टपन्ना, (७) कीर्तिधर, (८) वार्तिक, (९) हर्षवार्तिक, (१०) मातृगुप्ताचार्य।

शार्ंग देव ने अपने संगीतरत्नाकर में नाट्यशास्त्र के टीकाकारों का परिगणन इस प्रकार किया है–

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

व्याख्यातारो भारतीये लोल्लटोभ्दटशंकुकाः ।
भट्टाभिनवगुप्तश्च श्रीमत्कीर्तिधरोऽपरः ।।

अभिनवगुप्तपादाचार्य

उपलब्ध भारतीय नाट्यशास्त्र का अध्ययन आपके द्वारा प्रणीत **अभिनवभारती** के विना असम्भव है। आप महामाहेश्वर थे, आपके द्वारा साक्षात्कृत **प्रत्यभिज्ञादर्शन** से अलंकारशास्त्र को दार्शनिक धरातल मिला और रससिद्धान्त का विवेचन इस प्रकार किया गया कि **नाट्यरस ब्रह्मास्वाद सहोदर** हो गया। आनन्द-वर्द्धनाचार्य द्वारा **ध्वन्यालोक** में प्रतिष्ठापित 'ध्वनिसिद्धान्त' को समझने में आपके द्वारा प्रणीत **ध्वन्यालोक-लोचन** वास्तविक अर्थ में ज्ञानचक्षु हो गया। इसके द्वारा वस्तुध्वनि, अलंकारध्वनि और रसध्वनि का मर्म सभी समझ सके और कालान्तर में लुप्त ध्वनिसिद्धान्त को पुनः प्रतिष्ठापित करने में आचार्य **मम्मट** ने **काव्यप्रकाश** का प्रणयन किया, जिसकी मुख्य प्रेरणा उनको अभिनवगुप्तपादाचार्य से ही प्राप्त हुई थी। अत एव भरत को रससूत्र की व्याख्या करते समय आपने अभिनवगुप्तपादाचार्य की व्याख्या को ही सिद्धान्तरूप में मान्यता दी है।

आपके साहित्यशास्त्रीय, गुरु का नाम था–भट्ट इन्दुराज। **ध्वन्यालोक-लोचन** में आप उनका सादर स्मरण इस प्रकार करते हैं–**यथा वा अस्मदुपाध्यायस्य विद्वत्-कवि-सहृदय-चक्रवर्तिनो भट्टेन्दुराजस्य**। आपके द्वितीय साहित्यगुरु भट्टतौत से आपको **अभिनवभारती** की रचना की प्रेरणा प्राप्त हुई।

आपके शैवदर्शन के गुरु **लक्ष्मणगुप्त** थे। आप वराहगुप्त के पौत्र और बुक्खल के पुत्र थे। मनोरथगुप्त आपके अनुज थे।

काल के विचार से भैरवस्तोत्र का (९९३ ई.), और ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्दिनी ४११५ कलिवर्ष(१०१५ ई.) रचनाकाल है। इस प्रकार आपका स्थितिकाल दशम शताब्दी के अन्त से एकादश शताब्दी का आरंभ है। आपके अन्य दार्शनिक ग्रन्थों में–(१) तन्त्रसार, (२) मालिनीविजय वार्तिक, (३) परमार्थसार, (४) परात्रिंशिका विवरण और (५) तन्त्रालोक तन्त्रशास्त्र के अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। आप अर्ध-त्र्यम्बक-मत के प्रधान आचार्य शम्भुनाथ के दीक्षित शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ सम्प्रदाय के सिद्धकौल थे।

आपकी अलंकारशास्त्रीय कृतियों में **अभिनवभारती** और **ध्वन्यालोक-लोचन** के अतिरिक्त **काव्यकौतुक-विवरण** का उल्लेख प्राप्त होता है। 'काव्यकौतुक' आपके साहित्यगुरु भट्टतौत की कृति थी, जिस प्रर यह विवरण लिखा गया था। किन्तु दुर्भाग्य से आज दोनों अनुपलब्ध है।

भारतीय नाट्यशास्त्रः सार-संक्षेप

छत्तीस तत्त्वों की छत्तीस संख्या को महत्व देते हुए इसके छत्तीस अध्याय हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं–(१) नाट्यशास्त्रोत्पत्तिः, (२) प्रेक्षागृह-लक्षणम् , (३) रङ्गदैवतपूजनम्, (४) ताण्डवलक्षणम्, (५) पूर्वरङ्गविधिः, (६) रसविकल्पः, (७) भाव-व्यञ्जनम्, (८) उपाङ्गविधानम्, (९) हस्ताभिनयः, (१०) शरीराभिनयः, (११) चारीविधानम्, (१२) मण्डलविधानम्, (१३) गतिप्रचारः, (१४) प्रवृत्तिधर्मव्यञ्जनम्, (१५) वाचिकाभिनयच्छन्दोविभागः, (१६) छन्दोविचितिः, (१७) वागभिनयः,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

(१८) भाषाविधानम् , (१९) काकुस्वरव्यंजनम् , (२०) दशरूपकविधानम्, (२१) सन्ध्यंगविकल्पः, (२२) वृतिविकल्पः, (२३) आहार्याभिनयः, (२४) सामान्याभिनयः, (२५) बाह्योपचारः, (२६) चित्राभिनयः, (२७) सिद्धिव्यञ्जनम्, (२८) आतोद्यविधिः, (२९) ततातोद्यविधानम्, (३०) सुषिरातोद्यविधानम्, (३१) तालव्यञ्जनम्, (३२) ध्रुवाविधानम्, (३३) वाद्याध्यायः, (३४) प्रकृतिविचारः, (३५) भूमिकापात्र विकल्पः, (३६) नाट्यावतारः।

प्रथम अध्याय

नामनिर्वचन—मङ्गलाचरण में वन्दना-पूर्वक 'नाट्यशास्त्र-प्रवचन' की ग्रन्थ-प्रतिज्ञा की गयी है। **नाट्यस्येदं नाट्यम्** इस निर्वचन के अनुसार **नाट्य** शब्द का अर्थ नट-सम्बन्धी होता है। **नाट्यशास्त्र** शब्द के समास-विग्रह के विषय में अनेक मत हैं—

(१) 'नाट्यस्य नटवृत्तस्य शास्त्रं नाट्यशास्त्रं शासनोपायं ग्रन्थं प्रवक्ष्यामि' यह प्रथम व्याख्या है। तदनुसार नटवृत्त (नट का चरित्र) नाट्य नाम से सम्बोधित है। उसके नियमों, अनुशासनबद्ध उपायों का प्रदर्शक ग्रन्थ **नाट्यशास्त्र** कहलाता है। उसका प्रवचन इस ग्रन्थ में है।

(२) किन्तु यह मत स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि नाट्यशास्त्र और नाट्यवेद दोनों पर्यायवाची और परस्पर अभिन्न हैं। यदि नाट्यशास्त्र को ग्रन्थविशेष माना जाय, तो उसको लिपिबद्ध करना उचित है। प्रवचन अथवा व्याख्यान कंठप्रोक्त होते हैं, लिपिबद्ध नहीं। अतः यहां षष्ठी-तत्पुरुष समास करना उचित नहीं है, अपितु कर्मधारय-समास उचित है—'नाट्यं च तत् शास्त्रं च नाट्यशास्त्रम्, नाट्याख्यं वेदं लक्षणतो प्रवक्ष्यामि' निरूपयिष्ये।'

(३) 'यह मत भी असगंत है, क्योंकि नाट्यवेद शब्दात्मक न होकर अनुभाव-(चेष्टा) स्वरूप होता है। अतः षष्ठी-तत्पुरुष का आश्रय लेकर इसका अर्थ है—"अनुभाव-स्वरूप नाट्य(नटवृत्त) के प्रायोगिक और सैद्धान्तिक लक्षण का निरूपण कर रहा हूँ।" यह मत **अभिनव-भारतीकार अभिनवगुप्तपादाचार्य के साहित्यगुरु भट्टतौत** का है।

(४) नाट्यशास्त्र और नाट्यवेद भिन्न-भिन्न हैं। **नाट्यवेद** को **नाट्यशास्त्र** का पर्याय मानने पर **नाट्यस्य वेदः शास्त्रम्** इस प्रकार निर्वचन होगा। पञ्चम वेद मानने पर 'नाट्यमेव वेदः' यह कर्मधारय समास होगा।

(५) षष्ठी-तत्पुरुष समास के अनुसार जब कवि दशविध रूपकों की रचना करता है, वह अभिनययोग्य होने के कारण **नाट्य** होता है, उसका प्रायोगिक-शास्त्र **नाट्यशास्त्र** है, जो नटों के लिए होता है।

(६) भट्टनायक ने इसकी दार्शनिक व्याख्या की है। दृश्यमान समस्त जगत् मिथ्या है, मात्र कल्पनाप्रसूत है। उसी का अभिनय रंगमंच पर भी किया जाता है। उसका पर्यवसान शान्तरस का आस्वाद करते हुए मोक्षप्राप्ति में होता है।

अनुबन्ध-चतुष्टय

अनुबध्नन्ति प्रेक्षकान् इति अनुबन्धाः—जो प्रेक्षकों को बांध रखते हैं, वे नाट्यशास्त्र के अनुबन्ध होते हैं। वे चार हैं—

(क) **विषय**—नृत्य, गीत, वाद्यात्मक माध्यम से प्रस्तुत नाट्यवेद।

(ख) **प्रयोजन**—त्रिवर्ग अथवा परम-पुरुषार्थ

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

(ग) सम्बन्ध–अधिकारी और विषय का व्युत्पाद्य-व्युत्पादकभाव सम्बन्ध
(घ) अधिकारी–समस्त सामाजिक दर्शक

पञ्चप्रश्नमयी नाट्यवेद-जिज्ञासा

आत्रेय आदि ऋषिजनों ने भरतमुनि से नाट्यवेदविषयक पांच प्रश्न उपस्थित किये थे–(अ) नाट्यवेदः कथम् उत्पन्नः? (आ) कस्य कृते उत्पन्नः? (इ) कत्यङ्गः? (ई) किंप्रमाणः? (उ) अस्य प्रयोगश्च कीदृशः?

इन पांच प्रश्नों के समाधान के विषय में जिज्ञासु किसी क्रम की अपेक्षा नहीं करते। षट्साहस्री नाट्यशास्त्र महावाक्यस्वरूप है, जिसमें इन समस्त प्रश्नों का समाधान है।

पञ्चम वेद की उत्पत्ति

नाट्यवेद को पंचम वेद कहा गया है। समस्त दुःखों से मुक्ति ही इसकी उत्पत्ति में कारण है। अत एव त्रेतायुग में देवराज इन्द्र की प्रार्थना पर ब्रह्मदेव ने सार्ववर्णिक पञ्चम नाट्यवेद की उत्पत्ति की। क्योंकि शूद्रवर्ण वेदाध्ययन नहीं कर सकता था। साथ ही वह दृश्य-श्रव्यात्मक, संपूर्ण दुःखों से मुक्ति दिलानेवाला चरम आह्लादप्रद और पुरुषार्थ साधन भी है और यही इसकी विशेषता है। क्योंकि ब्रह्मदेव से देवराज ने यही प्रार्थना की थी–

क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यत् भवेत्।
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।।
तस्मात् सृजाऽपरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्।।
(ना.शा. १।११-१२)

ब्रह्मदेव ने उनकी प्रार्थना को सुनकर चतुर्वेदाङ्गसम्भव पंचम नाट्यवेद की रचना की। जिस प्रकार प्रत्येक वेद के शिक्षा, कल्प आदि छः अंग होते हैं, उसी प्रकार पंचम वेद के चार अंग हैं–पाठ्य, गीत, अभिनय और रस। जिस प्रकार वह वेदों से सम्बद्ध है उसी प्रकार उपवेदों से भी। ब्रह्मदेव ने पंचम वेद के अंगस्वरूप पाठ्य, गीत, अभिनय और रस इनका संकलन यथाक्रम ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद से किया। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इनके उपवेद यथाक्रम आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और स्थापत्यवेद हैं। नाट्यवेद में इनकी यथाक्रम उपयोगिता है। आयुर्वेद स्वर परिवर्तन आदि में, धनुर्वेद युद्धादि प्रदर्शन में, गीतसंगीत-वाद्यस्वरूप संगति के लिए गान्धर्व वेद और नाट्यमण्डपादि निर्माण के लिए स्थापत्यवेद की उपयोगिता है। (द्रष्टव्य ना.शा. १।१७-१८)

नाट्यवेद के प्रयोगकर्ता

यतः देवता नाट्यवेद का प्रयोग करने में, उसे मंचस्थ करने में असमर्थ थे, अतः ब्रह्मदेव ने भरतमुनि को नाट्यवेद का अध्यापन कराया। भरतमुनि ने शाण्डिल से लेकर वीरतक अपने सौ पुत्रों को नाट्यशास्त्र का अध्यापन किया एवं जो जिस भूमिका के उपयुक्त था, उसे वह भूमिका प्रदान की। तबसे नटों की भी भरत कहा जाने लगा–भरता इत्यपि नटाः।

ब्रह्मदेव नें कैशिकी वृत्ति का प्रयोग करने के लिए मंजुकेशी, सुकेशी आदि अप्सराओं की सृष्टि की; स्वातिमुनि को वाद्य-वादन के लिए एवं नारदमुनि को गान

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

के लिए नियुक्त किया। भरतमुनि के पुत्र अन्य तीन् वृत्तियों–भारती, सात्वती और आरभटी का प्रयोग कर सकते थे। भरतमुनि ने उन वृत्तियों की शिक्षा-दीक्षा उन्हें प्रदान की और उन्हें उनका अभ्यास कराया।

नाट्य(रूपक) का प्रथम मंचन

इन्द्रध्वज महोत्सव के अवसर पर इसका प्रथम प्रयोग किया गया। भरतमुनि ने सर्वप्रथम नान्दीपाठ किया–

पूर्वं कृता मया नान्दी ह्याशीर्वचनसंयुता ।
अष्टांगपदसंयुक्ता विचित्रा वेदनिर्मिता ।।
(ना.शा. १।५६-५७)

नान्दी के विषय में विशिष्ट विवेचन विभिन्न व्याख्याओं में द्रष्टव्य है। प्रथम नाट्य-प्रयोग देवताओं द्वारा असुरों पर विजयप्राप्ति के उपलक्ष्य में किया गया था। प्रथम मंचन की विषयवस्तु थी– देवताओं द्वारा असुरों पर विजय। प्रथम प्रयोग को देखकर सभी देवता प्रसन्न हुए और देवराज से लेकर वाग्देवी तक सभी देवताओं ने ध्वज से लेकर श्रव्य एव प्रेक्षणीय तक सभी वस्तुएं भरतमुनि के पुत्रों को प्रदान की।

किन्तु असुर उस प्रयोग को देखकर क्षुब्ध हुए, वे उससे अपमानित हुए और उन्होंने उस नाट्यप्रयोग में विघ्न-बाधा उपस्थित की। देवराज इन्द्र ने अपने ध्वज-दण्ड से समस्त असुरों को प्रताड़ित कर जर्जर कर दिया, जिससे वह इन्द्रध्वज जर्जर नाम से संबोधित हुआ। नाट्यशास्त्र के तेईसवे अध्याय में इसके निर्माण और तृतीय अध्याय में उसकी स्थापन-पूजनविधि प्रतिपादित है। तदनुसार वह १०८ अंगुल लंबा, पांच पर्वों तथा चार ग्रंथियों से युक्त होना चाहिए। नाट्यारंभ के पूर्व अभिजित् नक्षत्र में इसके स्थापन एवं पूजन का विधान है।

नाट्यमण्डप का निर्माण

विश्वकर्मा ने ब्रह्मदेव की आज्ञा असुरों से रक्षा के लिए से नाट्यमण्डप का निर्माण किया। चन्द्रमा से लेकर शंकर तक सभी देवता उसकी रक्षा करने के लिए अधिकृत किए गए, जो नाट्य मण्डप के विभिन्न विभागों के अधिदेवता हो गए। उनकी पूजाविधि तृतीयाध्याय में वर्णित है।

ब्रह्मदेव की सामनीति

ब्रह्मदेव ने विघ्नबाधा दूर करने के लिए असुरों के साथ सामनीति का प्रयोग किया। क्योंकि साम, दाम, भेद और दण्ड इन उपायों में उत्तरोत्तर का प्रयोग किया जाता है–

पूर्वं साम प्रयोक्तव्यं द्वितीयं दानमेव च ।
तयोरुपरि भेदस्तु ततो दण्डः प्रयुज्यते ।।(९९,१००)

ब्रह्मदेव और विरूपाक्ष की वार्ता के समय विरूपाक्षद्वारा रोष प्रकट करने पर ब्रह्मदेव ने उनसे कहा–

भवतां देवतानां च शुभाशुभविकल्पकः ।
कर्मभावान्वयापेक्षी नाट्यवेदो मया कृतः ।।१०६।।

नाट्यवेद देश और काल के अनुरूप, जो शुभ अथवा अशुभ रहता है, उसका यथार्थ मंचन करता है, वह किसी का पक्षपाती नहीं है, जो जिसकी अच्छाई या बुराई है, उसे स्पष्ट तथा चित्रित करना है। अब प्रेक्षकों की यह जिम्मेदारी है कि उससे वह क्या सीखे?

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

नाट्यवेद का वैशिष्ट्य–उसमें न केवल असुरों और न केवल देवों की चेष्टाओं का अनुभावन है, अपितु समस्त चराचर जगत् का अनुकीर्तन है–**त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।** अतः असुरों को क्रुद्ध नहीं होना चाहिए। संक्षेप में

न तज् ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नाऽसौ योगो न तत् कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।।११६।।

अभिनय–यह शब्द अभिपूर्वक नी धातु से निष्पन्न है। वह चार प्रकार का है–(१) आंगिक, (२) वाचिक, (३) सात्विक और (४) आहार्य। इसका विशिष्ट विवरण विभिन्न व्याख्याओं में द्रष्टव्य है। (द्रष्टव्य ना.शा. १।११८-११९)

रंगदेवता-पूजन–नाट्यमण्डप की अधिष्ठात्री देवताएँ नाट्यमण्डप के विभिन्न विभागों की रक्षा करती हैं। ब्रह्मदेव ने उनका पूजन करने के लिए निर्देश दिया। इसका संकेत १२० से १२७ पद्यों तक किया गया है। इसका विशिष्ट विधान तृतीय अध्याय में है।

द्वितीय अध्याय

इस अध्याय के दो नाम हैं–(१) प्रेक्षागृह-लक्षणम् और (२) मण्डपाध्यायः। अभिनवभारतीकार ने द्वितीय नाम को स्वीकार करते हुए द्वितीय अध्याय को मण्डपाध्याय नाम से संबोधित किया है। (द्र. अभिनवभारती पुष्पिका)।

विविध भेद–नाट्यमण्डप के विविध भेद हैं। आकृति की दृष्टि से उसके तीन भेद हैं–(१) विकृष्ट (दीर्घाकार), (२) चतुरस्र (चतुष्कोण या वर्गाकार) और (३) त्र्यस्र (त्रिकोणाकार)।

प्रमाण की दृष्टि से कुछ नाट्यमण्डप हस्त-प्रमाण से, हाथ के नाम से और कुछ दण्डप्रमाण से बनाए जाते हैं।

हस्तप्रमाण के विचार से उसके तीन भेद हैं–ज्येष्ठ १०८ हाथ का, मध्यम ६४ हाथ का और अवर ३२ हाथ का। इनमें देव आदि पात्रों की भूमिका के लिए ज्येष्ठ मण्डप का, राजा आदि पात्रों की भूमिका के लिए मध्यम मण्डप का और सर्व-साधारण जन के चरित्र को मंचस्थ करने के लिए अवर नाट्यमण्डप के निर्माण का विधान हैं। इस प्रकार नाट्यमण्डप के अठारह (१८) भेद हैं–

(१) ज्येष्ठ विकृष्ट(दीर्घाकार)	हस्तप्रमाण	देवतार्थ
(२) " चतुरस्र (वर्गाकार)	"	"
(३) " त्र्यस्र (त्रिकोणाकार)	"	"
(४)मध्यम-विकृष्ट (दीर्घ)	"	नृपार्थ
(५) " चतुरस्र (वर्गाकार)	"	"
(६) " त्र्यस्र (त्रिभुजाकार)	"	"
(७)अवर विकृष्ट-दीर्घ	"	"
(८) " चतुरस्र(चतुष्कोण)	"	"
(९) " त्र्यस्र (त्रिकोण)	"	"

इसी प्रकार दण्डप्रमाण नाट्यमण्डप के भी नौ भेद होंगे। उन्हें मिलाकर नाट्यमण्डप के अठारह (१८) भेद होंगे।

विभिन्न प्रमाण–(पैमाना)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

८ अणु = १ रजकण
८ रजकण = १ वाल
८ वाल = १ लिखा
८ लिखा = १ यूका
८ यूका = १ यव
८ यव = १ अंगुल
२४ अंगुल = १ हस्त
४ हस्त = १ दण्ड

इनमें लघुतम(सवसे छोटी) इकाई अणु और सवसे बड़ी(महत्तम) इकाई दण्ड है। नाट्यमण्डप का निर्माण हस्त और दण्ड के प्रमाण से करना चाहिए।

मध्यम नाट्यमण्डप

मृत्युलोक निवासियों के लिए नाट्यमण्डप का निर्माण लम्वाई में चौंसठ(६४) हाथ और चौड़ाई में वत्तीस(३२) हाथ करना चाहिए। उनके लिए नाट्यमण्डप न इससे बड़ा और न इससे छोटा होना चाहिए। अन्यथा उस नाट्यमण्डप में वैठै हुए दर्शकों को नाट्यप्रयोग को देखने और उसमें होने वाले संगीत आदि को सुनने में असुविधा होती है। सभी दृष्टियों से मध्यम-प्रमाण नाट्यमण्डप ही सुख-सुविधापूर्ण होता है।

दिव्य प्रकृति के प्रेक्षकों के लिए प्रेक्षागृह का निर्माण करना मानव की कल्पना से भी परे है। क्योंकि देवता अपनें मानस संकल्प-मात्र से ऐसी सृष्टि कर सकते हैं, जो मानव के लिए प्रयत्न-साध्य भी नहीं है। अतः हस्त-प्रमाण मध्यम नाट्यमण्डप की संरचना-विधि, जो मानव-दर्शकों के लिए उपादेय है, वह यहां वर्णित है।

भूमि-शोधन–नाट्यमण्डप के निर्माण के पूर्व जहां नाट्यमण्डप का निर्माण करना हो, वहां की मिट्टी की परीक्षा करनी चाहिए। वह मिट्टी काली और सफेद मिली हुई हो। समतल, स्थिर, जहां भूकंप की संभावना न हो, और मजवूत, जो धंसती न हो, ऐसी होनी चाहिए। उस जमीन को हल से जोतना चाहिए और उसको सफाई कर उसे समतल करना चाहिए। उसमें जो वैल हों वे शुभ्र तथा हृष्ट-पुष्ट होने चाहिए। हल चलाकर सफाई करने के पश्चात् काली मिट्टी भरकर उस जमीन को समतल करना चाहिए। सुमूहूर्त में उत्तम तिथि करण देखकर पुण्याहवाचनपूर्वक ब्राह्मणों को संतुष्ट करते हुए भूमिशोधन करना चाहिए।

भूमि-प्रमाण-विधि–उसके पश्चात् भूमि की नाप-जोख करनी चाहिए। उसके लिए शुभ्र सूत्र का प्रयोग करना चाहिए, इसके लिए उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, हस्त, अनुराधा और पुष्य नंक्षत्र प्रशस्त हैं। उनमें भी पुष्य नक्षत्र श्रेष्ठ हैं।

माप-सूत्र–वह मापसूत्र कपास, 'बाल्व' नामक घास, मूंज और वल्कल (पेड़ की छाल) से बना हुआ होना चाहिए तथा अखण्ड होना चाहिए, वह छिन्न नहीं होना चाहिए और नापते समय हाथ से छूटना नहीं चाहिए। अन्यथा उसका कुफल भोगना पड़ता है।

प्रथम उस माप सूत्र दो जमीन पैर फैलाना चाहिए, **विकृष्ट मध्यम प्रमाण**

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

नाट्यमण्डप का निर्माण करने के लिए उसे जमीन पर चौंसठ(६४) हाथ की लम्बाई से फैलाना चाहिए। फिर चौड़ाई में वत्तीस(३२) हाथ फैलाना चाहिए। पूर्ण नाट्यमण्डप के मानचित्र को दो भागों में विभक्त करके उसके एक भाग में पीछे की ओर रंगपीठ की और दूसरे भाग में प्रेक्षागृह की। कल्पना करनी चाहिए। इस प्रकार दर्शकों के लिए निर्माणाधीन नाट्यमण्डप ३२×३२ हस्तप्रमाण वर्गाकार होगा। अवशिष्ट ३२×३२ हस्तप्रमाण भूमि में सोलह(१६) हस्तप्रमाण रङ्गशीर्ष और उसके भी पीछे सोलह(१६) हस्तप्रमाण नेपथ्य-गृह होगा।

शिलान्यासविधि—इसके पश्चात् शुभ नक्षत्र योग में उसकी आधार-शिला रखनी चाहिए। वह शिलान्यास-उत्सव वाजे-गाजे के बीच वड़े धूम-धाम से मनाना चाहिए। उस समय वहां कोई पाखण्डी संन्यासी या गेरुआधारी नहीं होना चाहिए। विकलांग लोगों को वहां से हटा देना चाहिए। कारीगर और मजदूर भी विकलांग न हों। रात्रि में विभिन्न दिशाओं में देवताओं के अनुरूप शुक्ल, नील, पीत और रक्त वस्तुओं का भोग लगाना चाहिए। ब्राह्मणों को घी और खीर, राजा को मधुपर्क, और कर्मचारियों को गुड का मीठा भात खिलाना चाहिए।

भित्ति-कर्म और स्तंभ-स्थापन—नींव को कायम करने के वाद दीवालों को स्थापित करना चाहिए। उनके लिए विशिष्ट तिथि, नक्षत्र और योग नियत हैं। नाट्याचार्य द्वारा तीन रात्रि उपवास करने के वाद सूर्योदय की वेला में स्तम्भस्थापन करना चाहिए। चारों ओर के चार स्तम्भ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण के नाम से संवोधित हैं। उनका विधिवत् पूजन करना चाहिए। उन उन स्तम्भों का और शुक्ल, रक्त, पीत और नील द्रव्यों से वैठे हुए ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिए। उन-उन स्तम्भों के पास उपविष्ट ब्राह्मणों को यथाक्रम पायस (खीर), गुडौदन, घृतौदन (घी-चावल) और खिचड़ी खिलानी चाहिए। उन स्तम्भों के नीचे यथाक्रम सुवर्ण, ताम्र, रजत और लौह रखना चाहिए। पूर्व-दक्षिण कोण (आग्नेय) दिशा में ब्राह्मण-स्तम्भ, पश्चिम-दक्षिण (नैर्ऋत्य) कोण में क्षत्रिय-स्तम्भ, पश्चिमोत्तर (वायव्य) कोण में वैश्य-स्तम्भ और पूर्वोत्तर (ईशान्य) कोण में शूद्र-स्तम्भ होने चाहिए। वे स्तम्भ ऐसे स्थापित होने चाहिए, जो अपनी जगह से न तो हिलें और न कंपित हों और न अपने स्थान से खिसकें। अन्यथा उसके विभिन्न कुफल सुनिश्चित हैं।

मत्तवारणी—रंगपीठ (रंगमंच) के दोनों ओर होने वाली बरामदानुमा यह विशिष्ट दर्शक-दीर्घा है। वह चार खम्भों पर तथा रङ्गवेदी से डेढ़ हाथ की उंचाई पर होनी चाहिए। उन दोनों की जो उंचाई हो, उनके बराबर रंगमण्डप का निर्माण करना चाहिए। विधिपूर्वक पूजन के साथ ब्राह्मणों को प्रसन्न करते हुए उसका निर्माण करना चाहिए।

रङ्गपीठ—रङ्गपीठ का शीर्षभाग षड्विध काष्ठ दण्डों से निर्मित करना चाहिए। उसके पीछे नेपथ्यगृह बनाना चाहिए। नेपथ्यगृह में रंगमंच पर पात्रों के प्रवेश के लिए दो द्वार होने चाहिए।

षड्विध दारुकर्म—इसका विशिष्ट वर्णन टीका में द्रष्टव्य है। विकृष्ट (दीर्घाकार) नाट्यमण्डप का निर्माण पर्वतगुफा के समान होना चाहिए, उसमें विभिन्न धरातल ऐसे होने चाहिए, जिससे प्रेक्षक के आमने-सामने दूसरा प्रेक्षक न आए और वह

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

सुविधापूर्वक नाटकों को देख सकें। उसमें मन्द-मन्द हवा आए, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। वहां ध्वनि की गंभीरता अभिव्यक्त होनी चाहिए। दीवालों का पलस्तर (भित्तिलेप) करने के पश्चात् उस पर सफेदी करनी चाहिए, उस पर नानाविध स्त्री-पुरुष-मिथुनों का चित्रांकन करना चाहिएं, जो लतावेष्टितक वृक्षाधिरूढ़क आदि विशिष्ट आलिंगन-मुद्राओं में आबद्ध हों।

चतुरस्र नाट्यमण्डप

यह चतुष्कोण (वर्गाकार) होना चाहिए। वह ३२×३२ हस्तप्रमाण चतुरस्र हो। उसके चारों ओर ईंटों की मजबूत दीवाल होनी चाहिए। भीतर की ओर रंगपीठ पर दस स्तम्भ स्थापित करने चाहिए, जो नाट्यमण्डप को संभाल सकें। उन स्तम्भों के बाहरी ओर सीढ़ियों के आकार की दर्शक-दीर्घा होनी चाहिए, जो काष्ठ- फलक और ईंटों से बनी हो। उसकी उंचाई जमीन से एक हाथ उठकर होनी चाहिए। इसके अतिरिक्ति विभिन्न दिशाओं में छः अन्य स्तम्भ स्थापित करने चाहिए। और उसके वाद भी आठ अन्य स्तम्भ स्थापित करने चाहिए। उस पर अष्ट-हस्तप्रमाण विद्धास्य-पीठ स्थापित करना चाहिए। (द्र. टीका ९९, १००)

उसका रङ्गपीठ ८×८ हस्तप्रमाण चतुरस्र होना चाहिए। नेपथ्य-गृह के दो प्रवेश-द्वार और दर्शकों के लिए रङ्गपीठ के संमुख एक अन्य प्रवेश-द्वार होना चाहिए। उसकी मत्तवारणी भी विकृष्ट नाट्यमण्डप के समान होनी चाहिए।

त्र्यस्र नाट्यमण्डप

यह त्रिकोणाकार होना चाहिए और इसका रङ्गपीठ भी त्रिकोणाकार होना चाहिए। उसके द्वार भी प्रतिकोण पर होने चाहिए और एक द्वार रङ्गपीठ के पीछे भी होना चाहिए। अन्य निर्माणविधि चतुरस्र नाट्य-मण्डप के समान हैं। विकृष्ट नाट्यमण्डप में रङ्गशीर्ष उन्नत होना चाहिए और चतुरस्र मण्डप में समतल। यही नाट्यमण्डपों के निर्माण का सार-संक्षेप हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तुत संस्करण

पूर्वपीठिका

विषयानुक्रमणिका

प्रथमोऽध्यायः–नाट्योत्पत्तिः

पृष्ठ

१. टीकाकर्तुः मंगलपद्याष्टकम् १

२. ग्रन्थकर्तुः प्रतिज्ञा (श्लोक १) २

टीकायाम्–ब्रह्मणः पितामहत्त्वम्, पितामह-महेश्वरयोः देवत्वम्, प्रणमनं त्रिविधम्, 'नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि'–विविधव्याख्यानानि, अनुबन्धचतुष्टयम्। २-९

३. आत्रेयप्रमुखानां मुनीनां प्रश्नोपक्रमः (२-३) ९-१०

४. प्रश्नपंचकमयी नाट्यजिज्ञासा (४-५) १०-१४

५. भरतमुनेः उत्तरोपक्रमः (६-७) १४-१६

६. देवानां ब्रह्माणं प्रति क्रीडनीयकसृष्टेः प्रार्थना (८-१२) १६-२१

७. ब्रह्मणः चतुर्वेदस्मरणम् (१३) २१-२२

८. संकल्पपुरस्सरं ब्रह्मदेवद्वारा नाट्यवेदसृष्टिः (१४-१६) २२-२५

९. पंचमवेदस्य वेदांगसंग्रहः (१७-१८) २५

टीकायाम्– पाठ्यम्, तस्य वाचिकाभिनये उपादेयत्वम्, काकुस्वरः, पाठ्यगुणाः, गीतम्, सप्त स्वराः, लय-ताल-विभागः, वाद्य-विचारः, ब्रह्मणः सर्ववेत्तृत्वम्, चतुर्विधोऽभिनयः, 'अभिनय'शब्दनिर्वचनम्, नाट्यवेदस्य वेदोपवेदसंबद्धता २५-२९

१०. पितामहेन पृष्टे सति देवेन्द्रेण नाट्यानुशीलने देवानाम् अक्षमत्वज्ञापनम् (१९-२२) २९-३१

११. ऋषीणां नाट्यधारणयोग्यता (२३) ३१-३२

१२. भरतमुनेः ब्रह्मणः सकाशात् नाट्यवेदग्रहणपूर्वकं पुत्रेभ्यः तत्प्रदानम् (२४-२५) ३२-३३

१३. पुत्रशतनामानि (२६-४०) ३३-३६

१४. नाट्यप्रयोगाय वृत्तित्रयीपसमाश्रयः (४१) ३६-३७

१५. कैशिकीवृत्तिप्रयोगाय अप्सरसां सृष्टिः (४२-४६) ३७-४०

१६. अप्सरोभिः स्वाति-मुनिना नारदादिगन्धर्वैश्च सह पुत्रपरिवृतस्य भरतमुनेः नाट्यप्रयोगसम्बद्धता (४७-५२) ४०-४२

१७. इन्द्रध्वजे नाट्यप्रयोगस्य आदौ नान्दीपाठः (५३-५७) ४२-४५

१८. देवासुरसंग्रामे देवविजयमालक्ष्य प्रथमः प्रयोगः (५७-५८) ४५-४६

१९. नाट्यप्रयोगसंतुष्टैः देवैः भरतपुत्रेभ्यः उपायनदानम् (५८-६३) ४६-४९

२०. क्षुब्धानाम् असुराणां प्रयोगमध्ये विघ्नबाधा (६४-६७) ४९-५०

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

पृष्ठ

२१. इन्द्रध्वजेन विघ्ननिवारणम्, तस्य 'जर्जर' संज्ञा, नाट्यप्रयोगे
विघ्ननिवारणाय विश्वकर्मणा नाट्यमण्डपनिर्माणम्,(६८-८३) ५०-५४
२२. मण्डपरक्षायै देवतानां नियोजनम् (८४-९८) ५४-६०
२३. असुरैः सह ब्रह्मणः सामप्रयोगः विरूपाक्षस्य रोषः (९९-१०४) ६०-६२
२४. ब्रह्मणः समाधानम्– त्रैलोक्यस्य कृते नाट्यम् (१०५-१०७) ६२-६८
२५. नाट्ये सर्वजनानां रुच्यनुरूपं सर्वसमावेशः (१०८-११७) ६८-७५
२६. नाट्यस्वरूपम् (११८-११९) ७५-७९
२७. पितामहस्य देवेभ्यः रंगदैवतपूजाया आदेशः (१२०-१२७) ७९-८२

द्वितीयोऽध्यायः–मण्डपविधानम्

१. मुनीनां रंगपूजाविषयिणी नाट्यमण्डपविषयिणी च जिज्ञासा,
भरतस्य उपक्रमः (१-६) ८३-८६
२. विश्वकर्मणः त्रिविध-मण्डपसृष्टिः-विकृष्टं, चतुरस्रं त्र्यस्रं च (७-९) ८६-८८
३. ज्येष्ठ-मध्यम-अवरनाट्यमण्डपानि (१०-११) ८८-८९
४. मध्यमनाट्यमण्डपप्रशस्तिः ८९-९०
५. अणुतः प्रारभ्य दण्डपर्यन्तं प्रमाणनिर्देशः (१२-१६) ९०-९३
६. विकृष्टमध्यममण्डपप्रमाणम् (१७-१९) ९३-९५
७. भूमिशोधनम्, प्रमाणसूत्राणि, मुहूर्त विचारः,
पुण्याहवाचनम्, ब्राह्मणपूजनम् (२०-३२) ९५-१००
८. सूत्रप्रसारणविधिः (मानचित्र-कल्पनम्) (३३-३५) १००-१०२
९. शिलान्यासविधिः, यथादिशं बलिदानम् (३६-४३) १०२-१०४
१०. भित्तिकर्म, स्तम्भस्थापनम् (४४-५५) १०४-१०६
११. स्तम्भदोषाः (५५-५७) १०६-१०७
१२. वर्णस्तम्भानुसारिणी पूजा (५८-६३) १०७-१०८
१३. मत्तवारणी-रंगमण्डप-निर्माणविधिः (६३-६७) १०८-११०
१४. रङ्गपीठ-रङ्गशीर्ष-नेपथ्यगृह-प्रवेशद्वारविधानम्,
मृत्तिकापूजनविधिः (६८-७१) ११०-११३
१५. रंगशीर्षम् आदर्शोपमम् , रत्ननिवेशः, दारुकर्म (७२-७८) ११३-११५
१६. भित्तिकर्म, भित्तिलेपः, सुधाकर्म, चित्रकर्म (७९-८५) ११५-११८
१७. चतुरस्रनाट्यमण्डपम्–भित्तिरचना, स्तम्भविधानम्, सोपानाकृति
पीठकम्, विद्धास्यपीठं रंगपीठम् (८६-९४) ११८-१२३
१८. स्तम्भशिल्पः, नेपथ्यगृहम्, प्रवेशद्वारम्, जनप्रवेशनं द्वारम्,
मत्तवारणी (९५-१०१) १२४-१२७
१९. त्र्यस्रनाट्यमण्डपम् – (१०१-१०५) १२७-१२९
२०. श्लोकानुक्रमणिका – (१०१-१०५) १३०-१३९

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

।।श्रीः।।

भरतमुनिप्रणीतं

नाट्यशास्त्रम्

प्रारम्भिकाऽध्यायद्वयमात्रम्

'अभिनवभारती'-संवलितं

'तात्पर्यदीपिका' व्याख्योपेत्तम्

अभिनवभारती

यस्तन्मयान् हृदयसंवदनक्रमेण
द्राक् चित्रशक्तिगणभूमिविभागभागी ।
हर्षोल्लसत्परविकारजुषः करोति
वन्देतमां तमहमिन्दुकलावतंसम् ।।१।।

षड्विंश (शट्त्रिंश) कात्मकजगद्गगनावभास-
संविन्मरीचिचयचुम्बितबिम्बशोभम् ।
षट्त्रिंशकं भरतसूत्रमिदं विवृण्वन्
वन्दे शिवं श्रुतितदर्थविवेकि धाम ।।२।।

विश्वबीजप्ररोहार्थं मूलाधारतया स्थितम् ।
धर्तृशक्तिमयं वन्दे धरणीरूपमीश्वरम् ।।३।।

सद्विप्रतौतवदनोदितनाट्यवेद-
तत्त्वार्थमर्थिजनवाञ्छितसिद्धिहेतोः ।
माहेश्वराभिनवगुप्तपदप्रतिष्ठः
संक्षिप्तवृत्तिविधिना विशदीकरोति ।।४।।

उपादेयस्य सम्पाठस्तदन्यस्य प्रतीकनम् ।
स्फुटव्याख्या विरोधानां परिहारः सुपूर्णता ।।५।।
लक्ष्यानुसरणं शिलष्टवक्तव्यांशविवेचनम् ।
सङ्गतिः पौनरुक्त्यानां समाधानसमाकुलम् ।।
सङ्ग्रहश्चेत्ययं व्याख्याप्रकारोऽत्र समाश्रितः ।।६।।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

पृष्ठ

२१. इन्द्रध्वजेन विघ्ननिवारणम्, तस्य 'जर्जर' संज्ञा, नाट्यप्रयोगे विघ्ननिवारणाय विश्वकर्मणा नाट्यमण्डपनिर्माणम्,(६८-८३) ५०-५४
२२. मण्डपरक्षायै देवतानां नियोजनम् (८४-९८) ५४-६०
२३. असुरैः सह ब्रह्मणः सामप्रयोगः विरूपाक्षस्य रोषः (९९-१०४) ६०-६२
२४. ब्रह्मणः समाधानम्– त्रैलोक्यस्य कृते नाट्यम् (१०५-१०७) ६२-६८
२५. नाट्ये सर्वजनानां रुच्यनुरूपं सर्वसमावेशः (१०८-११७) ६८-७५
२६. नाट्यस्वरूपम् (११८-११९) ७५-७९
२७. पितामहस्य देवेभ्यः रंगदैवतपूजाया आदेशः (१२०-१२७) ७९-८२

द्वितीयोऽध्यायः–मण्डपविधानम्

१. मुनीनां रंगपूजाविषयिणी नाट्यमण्डपविषयिणी च जिज्ञासा, भरतस्य उपक्रमः (१-६) ८३-८६
२. विश्वकर्मणः त्रिविध-मण्डपसृष्टिः-विकृष्टं, चतुरस्रं त्र्यस्रं च (७-९) ८६-८८
३. ज्येष्ठ-मध्यम-अवरनाट्यमण्डपानि (१०-११) ८८-८९
४. मध्यमनाट्यमण्डपप्रशस्तिः ८९-९०
५. अणुतः प्रारभ्य दण्डपर्यन्तं प्रमाणनिर्देशः (१२-१६) ९०-९३
६. विकृष्टमध्यममण्डपप्रमाणम् (१७-१९) ९३-९५
७. भूमिशोधनम्, प्रमाणसूत्राणि, मुहूर्त विचारः, पुण्याहवाचनम्, ब्राह्मणपूजनम् (२०-३२) ९५-१००
८. सूत्रप्रसारणविधिः (मानचित्र-कल्पनम्) (३३-३५) १००-१०२
९. शिलान्यासविधिः, यथादिशं बलिदानम् (३६-४३) १०२-१०४
१०. भित्तिकर्म, स्तम्भस्थापनम् (४४-५५) १०४-१०६
११. स्तम्भदोषाः (५५-५७) १०६-१०७
१२. वर्णस्तम्भानुसारिणी पूजा (५८-६३) १०७-१०८
१३. मत्तवारणी-रंगमण्डप-निर्माणविधिः (६३-६७) १०८-११०
१४. रङ्गपीठ-रङ्गशीर्ष-नेपथ्यगृह-प्रवेशद्वारविधानम्, मृत्तिकापूजनविधिः (६८-७१) ११०-११३
१५. रंगशीर्षम् आदर्शोपमम् , रत्ननिवेशः, दारुकर्म (७२-७८) ११३-११५
१६. भित्तिकर्म, भित्तिलेपः, सुधाकर्म, चित्रकर्म (७९-८५) ११५-११८
१७. चतुरस्रनाट्यमण्डपम्–भित्तिरचना, स्तम्भविधानम्, सोपानाकृति पीठकम्, विद्धास्यपीठं रंगपीठम् (८६-९४) ११८-१२३
१८. स्तम्भशिल्पः, नेपथ्यगृहम्, प्रवेशद्वारम्, जनप्रवेशनं द्वारम्, मत्तवारणी (९५-१०१) १२४-१२७
१९. त्र्यस्रनाट्यमण्डपम् – (१०१-१०५) १२७-१२९
२०. श्लोकानुक्रमणिका – (१०१-१०५) १३०-१३९

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

।।श्रीः।।

भरतमुनिप्रणीतं

नाट्यशास्त्रम्

प्रारम्भिकाऽध्यायद्वयमात्रम्

'अभिनवभारती'-संवलितं

'तात्पर्यदीपिका' व्याख्योपेत्तम्

अभिनवभारती

यस्तन्मयान् हृदयसंवदनक्रमेण
द्राक् चित्रशक्तिगणभूमिविभागभागी ।
हर्षोल्लसत्परविकारजुषः करोति
वन्देतमां तमहमिन्दुकलावतंसम् ।।१।।

षड्विंश (शट्त्रिंश) कात्मकजगद्गगनावभास-
संविन्मरीचिचयचुम्बितविम्बशोभम् ।
षट्त्रिंशकं भरतसूत्रमिदं विवृण्वन्
वन्दे शिवं श्रुतितदर्थविवेकि धाम ।।२।।

विश्ववीजप्ररोहार्थं मूलाधारतया स्थितम् ।
धर्तृशक्तिमयं वन्दे धरणीरूपमीश्वरम् ।।३।।

सद्विप्रतौतवदनोदितनाट्यवेद-
तत्त्वार्थमर्थिजनवाञ्छितसिद्धिहेतोः ।
माहेश्वराभिनवगुप्तपदप्रतिष्ठः
संक्षिप्तवृत्तिविधिना विशदीकरोति ।।४।।

उपादेयस्य सम्पाठस्तदन्यस्य प्रतीकनम् ।
स्फुटव्याख्या विरोधानां परिहारः सुपूर्णता ।।५।।
लक्ष्यानुसरणं शिलष्टवक्तव्यांशविवेचनम् ।
सङ्गतिः पौनरुक्त्यानां समाधानसमाकुलम् ।।
सङ्ग्रहश्चेत्ययं व्याख्याप्रकारोऽत्र समाश्रितः ।।६।।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अथ प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरणम्

प्रणम्य शिरसा देवौ पितामहमहेश्वरौ ।
नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम्[१] ।।१।।

अन्वयः–(अहं) पितामह-महेश्वरौ देवौ शिरसा प्रणम्य (तत्) नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि, यत् ब्रह्मणा उदाहृतम्।।१।।

अभिनव-भारती

भरतमुनिरुचित्देवतानमस्कारपूर्वकमभिधेयगुणीभावेन प्रयोजनं मुख्यया वृत्त्या प्रतिजानानो विशेषणद्वारेण गुरुपूर्वक्रममर्थाक्षिप्ततया चाऽभिधेय-प्रयोजनतत्सम्बन्धान् दर्शयति–**'प्रणम्ये'त्यादिना।**

पितामहोऽत्र न पितुः पिता महेश्वरश्च न राजादिरिति देवशब्दः। एतच्च नाऽऽशङ्कनीयं प्रसिद्धेः। एको विजिगीषुर्नाट्यप्रवर्तयितेति देवः। भगवांस्त्वानन्दनिर्भरतया क्रीडाशीलः सन्ध्यादौ नृत्यतीति नाट्ये तदुपस्कारिणि च नृत्ते तदुपज्ञप्रवृत्तिरिति तावेवाऽत्राऽधिदैवतं गुरू चेति नमस्कार्यौ। लक्ष्मीपतिस्तु यद्यपि वृत्तीनां निर्माता तथापि पितामहादिवदसौ स्वकर्तव्यमात्र-निष्ठस्तथाचरन्नाऽत्र नाट्ये लोकवदुपजीवित इति गुरुत्वाभावान्न नमस्कृतः।' (इत्ये) तदपि नमस्कारहेतुनिरूपणस्याऽनुचितत्वादसत्।

तस्मात्प्रणमनं प्रह्वीभावः कायेन वाचा मनसा च। आद्यः शिरसेति दर्शितः, द्वितीयो देवावित्यनेन। प्रणम्यस्य निरुपपदनामग्रहणानौचित्यात्। तेन प्रथमं देवावित्युक्तम्। अभिनेयप्राधान्याच्चाऽऽङ्गिकः शिरसेति। वाचिकश्च देवावित्यादिना (च) वाक्याभिनयो दर्शितः। लोकसिद्धो ह्ययमभिनयो न च नाट्यधर्मिरूपः। चतुर इव भुजादावूर्ध्वादिभिन्न इत्यभिनयोऽपि प्रदर्शनीय एव। मानसी तु प्रह्वता वाक्कायव्यापारगम्येति नाऽसौ पृथुगुक्ता। पितामहमहेश्वराविति क्रमः छेकानुप्रासार्थः। सालङ्कारस्य च वाक्याभिनयतां दर्शयितुम्। सालङ्कारस्य देवतापरितोषहेतुत्वं च दर्शयितुम्। पितामह-महेश्वरावित्यनेन देवयोर्लोकहितैषित्वमुक्तम् ।

नाट्यशास्त्रमिति–नाट्यस्य नटवृत्तस्य शास्त्रं शासनोपायं ग्रन्थं प्रवक्ष्यामीति। नैतदित्यन्ये। 'नाट्यवेदः नाट्यशास्त्रम्' इति हि पर्यायौ। तत्र नाट्यशास्त्र-शब्देन चेदिह ग्रन्थः। तद्ग्रन्थस्येदानीं करणम्, न तु प्रवचनम्। तद्धि व्याख्यानरूपं करणाद् भिन्नं कंठेन प्रोक्तमिति यथा। ग्रन्थस्य च नाट्यवेदत्वे उत्पत्यादिपञ्चकस्य तद्गतस्याऽन्यग्रन्थसाधारण्यात् प्रश्नासङ्गतिः। उत्तरग्रन्थस्य चाऽनुपपत्तिः– 'दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्' (१-११) 'जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्' (१-१७) इत्यादेर्ग्रन्थं प्रत्यसङ्गतत्वात्। तस्मान्नाट्यं च तच्छास्त्रञ्च। व्युत्पत्तिप्रदत्वात्। प्रवक्ष्यामि व्याख्यास्ये। नाट्याख्यं वेदं लक्षणतो निरूपयिष्य इत्यर्थः।

एतदप्यमनोहरम्, शब्दात्मताव्यतिरेकेण प्रवचनायोगात्, नाट्यस्य

---

१. यदुदीरितम् ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

चाऽशब्दात्मकत्वात्, निरूपणमात्रे च प्रवचने ग्रन्थस्याऽपि प्रवचनोपपत्तेः, नाट्यस्य च प्रोच्यमानतयैवाऽलाक्षणिकबाह्यस्वरूपनिरासलाभे शास्त्रशब्दानर्थक्यप्रसङ्गात्। 'य इमं शृणुयात् प्रोक्तं नाट्यवेदम्' इति शास्त्रान्ते यद् वक्ष्यते तस्याऽसङ्गत्यापत्तेः, शब्दविषयतातिरेकेण शृणुयादित्यस्याऽवाचकत्वात्।

तस्मादित्थमेतदिति मद्गुरवः। 'सकलहितकरणप्रवृत्त उत्साहसम्पदोपेतस्तदभिवृद्धये तत्प्रत्यूहापसिसारयिषया स्वविज्ञानक्रमोपारूढगुरुरूपब्रह्मसर्वाधिपतिपरमेश्वरविषयां स्मृत्यौत्सुक्यधृतिमत्यादिलक्षणां व्यभिचारसरणिं बाह्यकरणीयविषयं च जडतावहित्थप्रभृतिभावगणं पुरस्सरीकृत्य धर्मवीरानुप्रविष्टस्तदुचिताङ्गिकवाचिकानुभावप्रकटनपूर्वं स्वप्रवृत्तिप्रयोजनमेव निरूपयति, प्रयोजनस्यैव प्रवर्तकत्वात्। यदाहुः–'यमर्थमधिकृत्य प्रवर्त्तते तत् प्रयोजनम्' (न्या. सू. १-१-२४) इति।

तत्र नाट्यं नाम लौकिकपदार्थव्यतिरिक्तं तदनुकारप्रतिबिम्बालेख्यसादृश्यारोपाध्यवसायोत्प्रेक्षास्वप्नमायेन्द्रजालादिविलक्षणं तद्ग्राहकस्य सम्यग्ज्ञानभ्रान्तिसंशयानवधारणानध्यवसायविज्ञानभिन्नवृत्तान्तास्वादनरूपसंवेदनसंवेद्यं वस्तु रसस्वभावमिति वक्ष्यामः। तस्य शास्त्रं शासनं बाह्यभाण्डनाट्यादिवैलक्षण्येन सम्यक्ततत्स्वरूपावगमोपायं प्रकर्षेणाऽपरब्रह्मशिष्योदीरितानुपयोगिविकासावधानेन वक्ष्यामि। यद् वक्ष्यति–

य इमं शृणुयात् प्रोक्तं नाट्यवेदं स्वयम्भुवा।
कुर्यात् प्रयोगं यश्चैनं तथाऽधीयीत वा नरः ।।
या गतिर्वेदविदुषां या गतिर्यज्ञवेदिनाम्।
या गतिर्दानशीलानां तां गतिं प्राप्नुयात् तु सः ।।इति।।
(ना.शा.अ. ३६)

एतेन "कामजो दशको गणः" (मनु. ७-४७) इति वर्जनीयत्वेन नाट्यस्याऽनुपादेयतेति यत् केचिदाशशङ्किरे तदयुक्तीकृतम्, याज्ञवल्क्यस्मृतिपुराणादौ चाऽस्य प्रशंसाभूयस्त्वश्रवणात्। 'न चाऽऽगमाद् ऋते धर्मोऽनुमानगम्य'इति न्यायात्।

एतत्तु वृथैवाऽऽस्थानभीरून् प्रति शङ्काशमनार्थमभिधीयते नाम। तथा हि- नटानां तावदेतत् स्वधर्माम्नायरूपतयाऽनुष्ठेयमेव। न चाऽस्माकं तच्चेष्टितं विचार्यम्। सोमक्रयोपदेशिनो हि वाक्यस्य न तद्विक्रयिब्राह्मणान्तरगतकृत्याकृत्यविचारणोद्योगो युक्तः। न चाऽप्यस्योपदिश्यते 'गायेन्नृत्येत्' इति। किन्तु प्रथमनाट्यावसरक्रमप्रवृत्तविरिञ्चिवचनप्रवर्तकभरतमुनिशासनानुवर्तिशिष्यपरम्परापरिचयागताद्यतनकालावधिमहानटजनस्वकप्रवृत्तिविशेषोपदेशपरम्। अत एव तद्गतसिद्धसदुपायोपदेशनपरमिदं शास्त्रमिति।

नटस्य तावन्नाऽनेन किञ्चिदुपदिश्यते तं प्रत्युपकाराद् ऋते। कवेरपि स्वहृदयायतन-सततोदितप्रतिभाभिधानपरवाग्देवतानुग्रहोत्थितविचित्रापूर्वार्थनिर्माणशक्तिशालिनः प्रजापतेरिव कामजनितजगतः। परं प्रत्याशङ्का

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

यदि परमत्राऽवशिष्यते व्युत्पाद्योपकारः। तस्याऽपितु नेह 'गायेन्नृत्येद् वादयेत् तन्निरतो वा भवेत्' इत्युपदेशः क्रियते। अपि तु स्वरसत एव तावत् मनोज्ञविषयास्वादप्रवृत्तस्याऽत एव वेदशास्त्रपुराणादिभीरुहृदयस्य तन्मनोज्ञवस्तुमध्ये तादृगिदं वस्त्वनुप्रवेशितं यद्बलादेव पुमर्थोपायावगतिं करोतीति वक्ष्यामः। उत्पत्त्यादिप्रश्नास्तु ये भविष्यन्ति, ते नाट्याख्यवेदविषयाः, न तु नाट्यवेद-शास्त्रविषयाः। यतो 'नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्' (ना.शा. १-४) इत्यत्र नाट्यमेव वेद इति व्याख्यास्यामः।

एतच्च नाट्यशास्त्रं ब्रह्मणोदाहृतं मह्यमुक्तम्। यद् वक्ष्यते–"आज्ञापितो विदित्वाऽहं नाट्यवेदं पितामहात्। पुत्रानध्यापयामास" (ना.शा. १-२५) इति। अत्र तु 'नाट्यस्य वेदः शास्त्रमि'ति समासः। अन्यथाऽध्यापनासम्भवात्। तेन ब्रह्मप्रोक्तमेव मया यथापरिपाटि निरूप्यत इति यावत्।

नाट्यं च ब्रह्मणोद्धृत्योद्धृत्य वेदाङ्गान्याहृतमिति तद्विषयं शास्त्रमप्युदाहतमित्युक्तम्। यदि हि नाट्यस्य वेदः वेदनं सत्तालाभो विचारश्च यत्र तन्नाट्यवेदशब्देन नाट्याश्रयरूपं दशरूपकमित्युच्यते–यद् वक्ष्यति-"इतिहासो मया दृष्टः", (ना.शा. १-१९)इति। अत्र पक्षे ब्रह्मणोदाहृतं प्रदर्शितोदाहरणकृतनिदर्शनमित्यर्थः।

अन्ये तु नटनीयमनुकरणं दशरूपकमेव नाट्यम्, तस्येदं शास्त्रम्। दशरूपकलक्षणमेव हीदम् । एवं दशरूपकं कविना कार्यम्। एवं च नटनीयमिति ग्रन्थतात्पर्यात्, रसादीनां पदार्थानां तत्रैव पर्यवसानात्। तच्च ब्रह्मणोदाहृतं कृतनिदर्शनम्।

अन्ये तु ब्रह्मणा वेदाख्येन भगवता शब्दराशिनोदाहृतं निरूपितं त्याज्यानुष्ठेयरूपमायदागच्छत् व्युत्पाद्यतया स्वीकुर्वन्नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामीति प्रयोजनमनेनैव स्वीकृतमित्याहुः।

भट्टनायकस्तु 'ब्रह्मणा परमात्मना यदुदाहृतमविद्याविरचितनिस्सारभेदग्रहे यदुदाहरणीकृतं तन्नाट्यं तद् वक्ष्यामि। यथा हि कल्पनामात्रसारं तत एवाऽनवस्थितैकरूपं क्षणेन कल्पनाशतसहस्रसहं स्वप्नादिविलक्षणमपि सुष्ठुतरां हृदयग्रहनिदानमत्यक्तस्वालम्बनब्रह्मकल्पनटोपरचितं रामरावणादिचेष्टितमसत्यं कुतोऽप्यभूताद्भुतवृत्त्या भाति। तथा भासमानमपि च पुमर्थोपायतामेति। तथा तादृगेव विश्वमिदमसत्यनामरूपप्रपञ्चात्मकमथ च श्रवणमननादिवशेन परमपुमर्थप्रापकमिति लोकोत्तरपरमपुरुषार्थसूचनेन शान्तरसोपक्षेपोऽयं भविष्यति। 'स्वं स्वं निमित्तमादाय शान्तादुत्पद्यते रसः।' (ना.शा.६.) इति। तदनेन पारमार्थिकं प्रयोजनमुक्तम्' इति व्याख्यानं सहृदयदर्पणे पर्यग्रहीत्।

यदाह–

नमस्त्रैलोक्यनिर्माणकवये शम्भवे यतः ।
प्रतिक्षणं जगन्नाट्यप्रयोगरसिको जनः ।। इति।।

एवं नाट्यशास्त्रप्रवचनं प्रयोजनमुक्तम्। तत्प्रयोजनन्तु दर्शितमेव।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अभिधेयश्च नाट्यवेदः। व्युत्पाद्यव्युत्पादकभावलक्षणश्च सम्बन्धः। यच्च शास्त्रं यो जिज्ञासते, स तावत् तदवसरं तच्छास्त्रप्रणेतरि प्रसिद्धे सिद्धवदेव प्रामाण्यमभिमन्यत इति तद्वचनोक्ताय सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनाय तदैव निर्विशङ्कः प्रवर्तते। परस्त्वधिगतसकलशास्त्रार्थो बहु मन्यते न वेति तदिदमन्यत्। प्रथमं तावत् प्रवृत्तमादिवाक्यं प्रयुक्तमेवेति स्वानुभवप्रसिद्धम्। तेनाऽर्थसंशयतर्ककौतुकजनादिवाक्यं (न) प्रवर्तकमिति किमनेन।।१।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः– मैं भरतमुनि पितामह ब्रह्मदेव और महेश्वर को नतमस्तक हो वन्दन करते हुए उस नाट्यशास्त्र का निरूपण कर रहा हूँ, जिसका उपदेश ब्रह्मदेव ने सर्वप्रथम किया था।।१।।

व्याख्या : इस मङ्गलपद्य की अनेक विशेषताएँ हैं–

(१) इसका उद्देश्य सर्वप्रथम ब्रह्मदेव और महेश्वर की वन्दना है।

(२) उसके अनंतर ग्रन्थ का प्रयोजन स्पष्ट करना है। उक्त दोनों बातों को भरतमुनि अभिधावृत्ति से संकेतित कर रहे हैं।

(३) देवौ' इस विशेषण के द्वारा भरतमुनि गुरुपरंपरा को भी सूचित कर रहे हैं।

(४) साथ ही इसके माध्यम से अनुबन्ध-चतुष्टय का भी प्रतिपादन कर रहे हैं।

वन्दना का विचार–इस मंगल पद्य के पूर्वार्ध में वन्दना और उत्तरार्ध में प्रयोजन का प्रतिपादन है। भरतमुनि पितामह और महेश्वर की वन्दना कर रहे हैं। यहाँ **पितामह** का अर्थ पिता का पिता (दादा) नहीं है, उसी प्रकार का **महेश्वर** का अर्थ केवल मूर्धाभिषिक्त राजा नहीं है, यह उनके **देवौ** इस विशेषण से अवगत होता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर त्रिदेव के रूप में विख्यात हैं। उनमें पितामह ब्रह्मदेव विजयेच्छु और नाट्य के प्रवर्तक होने के कारण देव हैं। नटराज महेश्वर सदा आनन्दस्वरूप होने के कारण सायंकाल में क्रीडारत होकर नृत्य करते हैं। इस प्रकार नाट्य एवं नृत्य दोनों में परस्पर उपकार्य-उपकारकभाव है। ब्रह्मदेव एवं नटराज शिव देव-कोटि में भी हैं और गुरुकोटि में भी। अतः वे दोनों वन्दनीय हैं। 'त्रिदेव' के विष्णु इसलिए वन्दनीय नहीं हैं कि वे गुरुकोटि में नहीं आते।

प्रणम्य शिरसा देवौ इस प्रथम चरण से नमस्कार की विशेषता प्रकट होती है। यहां सामान्य वन्दना न होकर अभिनयपूर्वक वन्दना है। अभिनय त्रिविध होता है– आङ्गिक, वाचिक और मानसिक। अतः प्रथम सन्दर्भ में **प्रणम्य शिरसा** का अर्थ केवल नमस्कार न होकर 'सिर झुका कर प्रणाम करते हुए' यह अर्थ होता है। लोकोत्तर वर्णना निपुण कविकर्म(काव्य) के दो भेद होते हैं– दृश्य और श्रव्य। श्रव्य-काव्य में केवल वाचिक प्रदर्शन का महत्त्व होता है, जब कि, दृश्यकाव्य में तीनों का। नाट्यशास्त्र अभिनयप्रधान है, अतः 'शिरसा' के द्वारा आंगिक अभिनय को संकेतित किया गया है। **देवौ** विशेषण के द्वारा वाचिक अभिनय प्रकट किया गया है। मानसिक नम्रता वाचिक और आंगिक अभिनय से ही अभिव्यक्त होती है, अतः उसका पृथक् निरूपण नहीं है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि

इस चरण की व्याख्या में मतभेद हैं–

(१) **नाट्यस्य शास्त्रं नाट्यशास्त्रम्** इस षष्ठी-तत्पुरुष समास के अनुसार इस शब्द का अर्थ है नाट्य का शास्त्र, नट(अभिनेता) के वृत्त (चरित्र) को अनुशासित, मर्यादित करने वाला उपायस्वरूप ग्रन्थ। मैं भरतमुनि उसका प्रवचन कर रहा हूँ।

खण्डन–किन्तु यह व्याख्या समीचीन नहीं है, क्योंकि नाट्यशास्त्र और नाट्यवेद पर्यायवाची शब्द हैं। इन दोनों में नाट्यशास्त्र शब्द यहां ग्रन्थविशेष के अर्थ में प्रयुक्त है। भरतमुनि उसकी रचना कर रहे हैं, न कि उसका प्रवचनोपदेश। ग्रन्थ-रचना एवं प्रवचनोपदेश दोनों में अन्तर है–ग्रन्थ को लिपिबद्ध किया जाता है, जब कि प्रवचन कण्ठ से प्रकाशित वाणी का वैखरी-स्वरूप है। ग्रन्थ को नाट्यवेद से अभिन्न मानने पर उत्पत्ति आदि पंचविध लक्षण, जो ग्रन्थ के हैं, वे ही नाट्यवेद के होंगे। साथ ही उत्तरवर्ती ग्रन्थ का सम्बन्ध स्थापित नहीं है। जैसा कि आगे भरतमुनि कहते हैं–'दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्' (१/११) 'जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात्' (१/१७)। दृश्य, श्रव्य और पाठ्य ग्रन्थकोटि में नहीं आते।

(२) अतः यहां **नाट्यं च तत् शास्त्रं च नाट्यशास्त्रम्** यह कर्मधारय समास करना चाहिए। तदनुसार इसका अर्थ होगा–'मैं (भरतमुनि) नाट्य नामक वेद का लक्षणस्थापनपूर्वक व्याख्यान(निरूपण) कर रहा हूँ।'

खण्डन–किन्तु यह व्याख्या भी हृदयावर्जक नहीं है। क्योंकि नाट्य अभिनेय होता है, शब्दात्मक नहीं। अतः उसका प्रवचन संभव नहीं है। साथ ही जिस प्रकार प्रवचन में केवल निरूपण संभव है, उसी प्रकार ग्रन्थ में भी वह संभव है। साथ ही जो नाट्य (अभिनेय) है, उसके मात्र व्याख्यान से ही यदि उसका स्वरूप निर्धारित होता हो, तो वहां उससे सम्बद्ध शास्त्र शब्द का प्रयोग व्यर्थ होगा। जब कि उसकी सार्थकता है–'य इमं शृणुयात् प्रोक्तं नाट्यवेदम्' इस अग्रिम कारिका की संगति तभी होगी। क्योंकि शास्त्र ही शब्दस्वरूप होता है, जिसका प्रवचन और श्रवण संभव हैं। नाट्य (अभिनेय) का नहीं, क्योंकि वह मात्र दृश्य होता है।

(३) अतः मेरे (अभिनव गुप्तपाद के) गुरुजनों ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है–भरतमुनि समस्त कल्याणकारिणी प्रवृत्तियों में तत्पर हैं। अत एव (वीररस के स्थायी भाव) उत्साह सम्पत्ति से परिपूर्ण हैं। वे सम्पूर्ण विघ्नों को दूर करने की इच्छा रखते हैं।[1] धर्मवीर रस का आवेश त्रिविध वीर रस में प्रविष्ट होने के कारण वे उस व्यभिचारी भावों की परंपरा को आगे कर रहे हैं, जो वास्तव में पितामह, ब्रह्मदेव और महेश्वर का विषय है, किन्तु गुरु के रूप में उन दोनों देवों का साक्षात्कार कर उन्होंने उसका रहस्य अवगत कर लिया है। साथ ही भरतमुनि जडता, अवहित्था आदि भावों को भी प्रकट कर रहे हैं, जो बाह्य करणीय विषय हैं। धर्मवीर का आवेश रखते हुए महामुनि भरत आंगिक और वाचिक अनुभाव (चेष्टाओं अथवा

टिप्पणी–१.दानवीरं धर्मवीरं युद्धवीरं तथैव च। रसं वीरमपि प्राहुस्तज्ज्ञास्त्रिविधसम्मतम्।
(ना.शा.६/७९)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अभिनय) से अपने द्वारा प्रवृत्त प्रयोजन का ही निरूपण कर रहे हैं। जैसा कि महामुनि गौतम ने सूचित किया है–**यमर्थमधिकृत्य प्रवर्तते, तत् प्रयोजनम्** (ना.शा. १।१।२४)

अतः **नाट्यस्य शास्त्रं नाट्यशास्त्रम्** इस षष्ठी-तत्पुरुष समास का अवलंबन करते हुए इसकी व्याख्या करनी पड़ेगी। **नाट्य** वह वस्तु है, जो लौकिक पदार्थों से विलक्षण है। प्रतिविम्व, आलेख्य (चित्र), सादृश्य (उपमा), आरोप (रूपक), अध्यवसाय (अतिशयोक्ति), उत्प्रेक्षा (संभावना), स्वप्न, माया, इन्द्रजाल आदि उसका अनुकरण करतेवाले वस्तुओं से भी वह विलक्षण है। उसका संवेदन सम्यग् ज्ञान, भ्रम, संशय, अनवधारणा, अनध्यवसाय आदि संवदेन से भिन्न है और उसका स्वभाव एकमात्र रस है, जिसका निरुपण आगे करेंगे। भरतमुनि **नाट्यस्य शास्त्रं प्रवक्ष्यामि**–उस नाट्य-वस्तु का शास्त्र सम्यक् रूप से स्वरूप ज्ञान के उपाय को उस प्रकार निरूपित कर रहे हैं, जिसके द्वारा भाण्डनाट्य, भांडों द्वारा प्रदर्शित नाट्याभिनय आदि अन्य लोक-नाट्यों से उसकी विलक्षणता स्थापित की जा सके। साथ ही ब्रह्मदेव के अन्य शिष्यों द्वारा उपदिष्ट प्रवचन से भरतमुनि का नाट्यशास्त्र विलक्षण है। अन्य शास्त्रों में उन विषयों का निरूपण अधिक है, जो अनुपयुक्त हैं। भरतमुनि इसमें सावधानी वरत रहे हैं। क्योंकि यह नाट्यवेद है और ब्रह्मदेव द्वारा उपदिष्ट है। इसके सैद्धान्तिक और प्रायोगिक पक्ष पर प्रकाश डालने वाले को वही फल मिलता है, जो वेदवेत्ता, यज्ञवेत्ता और दानवीरों को मिलता है (द्रष्टव्य-नाट्यशास्त्र अ. ३६)।

कुछ लोग नाट्यवेद को अनुपादेय मानते हैं। इसके पक्ष में वे **कामजो दशको गणः** (मनु ७/४०) आदि वचन प्रमाणस्वरूप उपस्थित करते हैं। किन्तु यह मत अग्राह्य है। क्योंकि याज्ञवल्क्य, पुराण आदि में इसकी प्रशंसा की गयी है। साथ ही इसमें यह न्याय प्रभावी होता है कि **न चाऽऽगमाद् ऋते धर्मोऽनुमानगम्यः**, आगम को छोड़ कर कोई ऐसा धर्म नहीं है, जो अनुमान द्वारा गम्य हो। उसके लिए उसका प्रात्यक्षिक ज्ञान आवश्यक होता है।

वस्तुतः जो व्यर्थ ही भयभीत है, उनके प्रति नाट्यवेद की उपादेयता निरूपित है। जो नट जाति के हैं, जिनका धर्म ही अभिनय है, उनके लिए इस नाट्यशास्त्र का अनुष्ठान अवश्य कर्तव्य है। उनके लिए यह पंचम वेद है। हम उसका अनुष्ठान नहीं कर सकते और न उनके आचरण पर विचार कर सकते हैं। जो वेद-वाक्य सोमवल्ली के विक्रय का उपदेश देते हैं, वे केवल उसकी उपजीविका करने वाले ब्राह्मणों के लिए अनुष्ठेय हैं, अन्य ब्राह्मणों के लिए नहीं। उसी प्रकार नटों को कोई गायन एवं नृत्य का वृथा उपदेश नहीं देता। किन्तु यह नाट्यवेद उन महानटों को उपदेश दे रहा है, जो प्रथम बार अभिनय में प्रवृत्त ब्रह्मदेव के नाट्यसिद्धान्त के प्रवर्तक भरतमुनि के अनुयायी शिष्यपरम्परा से परिचित हैं और आजतक उस नाट्य परपरा का निर्वाह कर रहे हैं। प्रतिभा दो प्रकार की होती है उत्पादिका और व्युत्पादिका। नट और कवि में उत्पादिका प्रतिभा जन्मना होती है। नाट्यशास्त्र उनकी जन्मसिद्ध प्रतिभा का पोषण करता है, उसका प्रत्युपकार करता है। नवनवोन्मेषशालिनी वह प्रतिभा उसके हृदयमंदिर में सतत वास करती है, जो परा वाग्देवता ही है। उसके कृपाकटाक्ष

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

से नट गायन एवं नृत्य में स्वतः प्रवृत्त होता है और कवि उस अलौकिक जगत् की सृष्टि करता है, जो ब्रह्मदेव की सृष्टि से विलक्षण है। आचार्य मम्मट उसी वाग्देवता की वन्दना काव्यप्रकाश के आरंभ में इस प्रकार कर रहे हैं–

नियतिकृतनियमरहिता ह्लादैकमयीमनन्यपरतंत्राम् ।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ।।

वेद-शास्त्र-पुराण आदि पुरुषार्थ प्रवर्तक हैं, किन्तु जिसका हृदय रसमय होता है, वह इनसे भयभीत रहता है। नाट्यशास्त्र उनको पुरुषार्थ की ओर प्रवृत्त करता है। नाट्यवेद भिन्न है और नाट्यवेद का शास्त्र भिन्न है। उत्पत्ति आदि प्रश्न नाट्यवेद से सम्बद्ध हैं, उसके शास्त्र से नहीं। क्योंकि नाट्य ही वेदस्वरूप है और उसका शास्त्र भिन्न है।(द्रष्टव्य-नाट्यशास्त्र-१-४)

ब्रह्मणा यदुदाहृतम्–भरतमुनि ने इस नाट्यशास्त्र का उपदेश ब्रह्मदेव से ग्रहण किया था और उसका अध्यापन अपने पुत्रों को किया था। (द्रष्टव्यः नाट्यशास्त्र १-२५)। वहां पर नाट्यवेद शब्द का प्रयोग नाट्यशास्त्र अर्थ में है और वहां उसका समास इस प्रकार होगा–नाट्यस्य वेदः शास्त्रम् नाट्यवेदः। इस प्रकार भरतमुनि का नाट्यशास्त्र ब्रह्मदेव द्वारा प्रवर्तित शास्त्र है, यह सिद्ध है। ब्रह्मदेव ने वेदांगों से चयन कर नाट्यवेद और उसके शास्त्र की सृष्टि की और उसका उपदेश भरतमुनि को दिया यह युक्तियुक्त है।

नाट्यस्य वेदः वेदनं सत्तालाभो विचारश्च यत्र सः नाट्यवेदः दशरूपकाणि-इस व्युत्पत्ति का आश्रय लेने पर इसका अर्थ होगा नाट्यवेद की सत्ता और विचार दोनों जहां रहते हैं, उस नाट्यवेद का आश्रय लेनेवाले रूपक की दस विधाएँ भी 'नाट्यवेद कहलाती हैं (द्रष्टव्य नाट्यशास्त्र-१-१९)। यह अर्थ करने पर इस श्लोकांश का अर्थ होगा– ब्रह्मदेव ने उदाहरण देकर जिसको उपदेश दिया था।

कतिपय लोगों के अनुसार रूप की दस विधाएं अनुकरण अथवा अभिनयस्वरूप होने के कारण 'नाट्य' नाम से संबोधित हैं। उसके लक्षणादि का निर्धारण शास्त्र है। 'नाट्य' नटों द्वारा अभिनीत होता है और कवि उसके स्वरूप का निर्धारण करता है। ब्रह्मदेव भरतमुनि को उदाहरणपूर्वक इसका उपदेश दे रहे हैं। कुछ लोग 'ब्रह्मणा' का अर्थ शब्दराशिस्वरूप भगवान् वेद करते हैं। उसके द्वारा निरूपित यह शास्त्र है। इसमें कुछ विधिवाक्य हैं और कुछ निषेधवाक्य हैं। उसी के शास्त्र का निरूपण भरतमुनि का मुख्य प्रयोजन है ।

भट्टनायक द्वारा प्रणीत सहृदय दर्पण में इस की व्याख्या इस प्रकार है– 'ब्रह्मदेव द्वारा अविद्या से कल्पित सारहीन भेदप्रतिपादन में जो उदाहरण प्रस्तुत हैं, मैं (भरतमुनि) उसी के सैद्धान्तिक पक्ष की व्याख्या कर रहा हूँ। राम-रावण आदि का अनुकृतिस्वरूप वह नाट्य केवल कल्पना से सृष्ट और असत्य होता है। उसका एक स्वरूप स्थिर नहीं रहता। क्षणभर में सैकड़ों-हजारों कल्पनाएं उसमें प्रविष्ट होती हैं। स्वप्न आदि से विलक्षण होने पर भी वह अत्यन्त हृदयग्राही होता है। वह नट उस नाट्य की सृष्टि करता है, जो अपने आलम्वनविभाव का परित्याग नहीं करता और ब्रह्मदेव के समान होता है। वह नाट्य अभूतपूर्व अद्भुत रस से अत्यन्त चमत्कारशाली

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

होता है। प्रातिभासिक सत्ता होने पर भी उसकी क्षमता पुरुषार्थप्रद होती है। वह शान्तरस की सृष्टि से नामरूपात्मक जगत् की सत्ता को मिथ्या सिद्ध करते हुए परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्रदान करता है। जैसी कि उक्ति है–

स्वं स्वं निमित्तमादाय शान्तादुत्पद्यते रसः (ना.शा.६)

इस मंगलपद्य के द्वारा नाट्यशास्त्रप्रवचन की प्रतिज्ञा करते हुए भरतमुनि ने इसका प्रधान प्रयोजन परम पुरुषार्थ मोक्षप्राप्ति निरूपित किया है। अत एव दृश्यकाव्य-प्रवर्तक नटराज की वन्दना अग्रिम मंगल पद्य में की गयी है, जिससे लोक प्रतिपल जगत् में चलनेवाले नाट्यरस का आस्वाद-ग्रहण करते हैं–

नमस्त्रैलोक्यनिर्माणकवये शम्भवे यतः ।
प्रतिक्षणं जगन्नाट्यप्रयोगरसिको जनः ।।

अनुबन्धचतुष्टय– 'अनुबध्नंति जिज्ञासून् इति अनुबन्धाः, तेषां चतुष्टयम् अनुबन्ध-चतुष्टयम्। जो जिज्ञासुओं को अपनी ओर बांध रखते हैं, वे अनुबन्ध कहलाते हैं। वे चार हैं–(१) प्रयोजन, (२) अभिधेय, (३) सम्बन्ध और (४) अधिकारी। इनमें (१) नाट्यशास्त्रप्रवचन प्रयोजन है और उसका प्रयोजन है परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति। (२) अभिधेय–नाट्यवेद इसका विषय अथवा अभिधेय है। (३) वेदशास्त्र, पुराण आदि से भयभीत समस्त जन इसके अधिकारी हैं। (४) नाट्यवेद रचनाकार और प्रेक्षकवर्ग दोनों की प्रतिभा को विकसित करता है। अतः दोनों में व्युत्पाद्य-व्युत्पादकभाव सम्बन्ध है।

अलंकारसमीक्षा–महेश्वर-पितामहौ इस क्रम को न रखते हुए पितामह-महेश्वरौ इस क्रम से द्वंद्वसमास प्रधान पद का प्रयोग छेकानुप्रास की सृष्टि करता है। यह अलंकार सृष्टि वाचिक अभिनय का प्रदर्शन और उससे देवता की प्रसन्नता अभिव्यंजित करती है।।१।।

मुनीनां प्रश्नकरणम्

समाप्तजप्यं व्रतिनं स्वसुतैः परिवारितम् ।
अनध्याये कदाचित्तु[1] भरतं नाट्यकोविदम् ।।२।।
मुनयः पर्युपास्यैनमात्रेयप्रमुखाः पुरा ।
पप्रच्छुस्ते महात्मानो नियतेन्द्रियबुद्धयः ।।३।।

अन्वयः–पुरा महात्मानः नियतेन्द्रियबुध्दयः आत्रेयप्रमुखाः ते मुनयः तु कदाचित् अनध्याये समाप्तजप्यं व्रतिनं स्वसुतैः परिवारितं नाट्यकोविदम् एनं भरतं पर्युपास्य पप्रच्छुः।।२।।३।।

अभिनव-भारती

अथ मुनिरात्मानमेव परत्वेन कल्पयन् ब्रह्मणा यदुदाहृतमित्यतदेव पुराकल्पप्रदर्शनेन निश्चाययति-समाप्तजप्यमित्यादिना श्लोकद्वयेन। अनुरागित्वं नाट्यवेदयोग्यता नाट्यस्याऽदुष्टता विनोदहेतुता सुज्ञानत्वं प्रश्नावसरलाभयोगः प्रसिद्धत्वं चाऽऽचार्ययोग्यता शिष्टप्रामाणिकत्वं नियमपूर्वकशास्त्रग्रहणं प्रसिद्धादरणानुमेयोपादेयत्वप्रकटनमनिदम्प्राथम्यप्रवृत्तता शिष्याणामूहा-

१. तं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

पोहपाटवं ग्रहणयोग्यता चेति क्रमेण पदानां तात्पर्यमपुनरुक्तम् ।।२।।३।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ—प्राचीनकाल में अपने इन्द्रिय और बुद्धि पर नियन्त्रण रखनेवाले आत्रेय (अत्रिपुत्र) आदि प्रमुख महात्मा मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने किसी समय जब पाठ बन्द था, उस समय अपना जपादि अनुष्ठान सम्पन्न करके अपने पुत्रों (शिष्यों) के साथ बैठे हुए नाट्यवेद के मर्मज्ञ इस भरतमुनि की सेवा करते हुए अग्रिम प्रश्न उपस्थित किये।।२।।३।।

व्याख्या—ब्रह्मणा यदुदाहृतम् इसी का ऐतिहासिक निष्कर्ष इन दो श्लोकों में है। इसके लिए भरतमुनि स्वयं को अन्य के रूप में प्रस्तुत कर प्राचीन इतिहास प्रस्तुत कर रहे हैं। इनमें प्रयुक्त प्रत्येक पद का तात्पर्य भिन्न-भिन्न है और उसकी पुनरुक्ति नहीं हुई है। अभिनव गुप्तपाद ने यथाक्रम इन पदों का तात्पर्य स्पष्ट किया है। इनमें प्रथमार्द्ध में तीन विशेषण भरतमुनि के हैं, जो यथाक्रम उनकी (१) अनुरागशालिता, (२) नाट्यवेद की योग्यता और (३) नाट्य की निर्दुष्टता के द्योतक हैं। **अनध्याये कदाचित् तु** कालसूचक यह प्रयोग उनकी विनोदहेतुता का परिचायक है, जिससे यह ज्ञात होता है कि वे कभी-कभी शिष्यों को विनोद (मनोरंजन) का अवसर देते थे। **नाट्यकोविदम्** यह विशेषण उनकी सम्यक् ज्ञानशीलता का परिचायक है। इस प्रकार द्वितीय श्लोक का उत्तरार्ध पुत्रकल्प शिष्यों को प्रश्न को अवसर प्रदान करते हुए, उनकी प्रसिद्धि और आचार्य पद की योग्यता द्योतिल कर रहा है। तृतीय श्लोकवर्ती पदों से शिष्ट प्रामाणिकता, नियमपूर्वक शास्त्रग्रहण, आदर-प्रदर्शन, नाट्यशास्त्र की उपादेयता की अभिव्यक्ति, इसमें सर्वप्रथम उनकी प्रवृत्ति, शिष्यों की ऊहापोह-कुशलता और विषय की अवधारण-क्षमता प्रदर्शित होती है।।२।।३।।

नाट्यजिज्ञासा

योऽयं भगवता सम्यग् ग्रथितो वेदसम्मितः ।
नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य वा कृते ।।४।।
कत्यङ्गः किंप्रमाणश्च प्रयोगश्चाऽस्य कीदृशः ।
सर्वमेतद् यथातत्त्वं भगवन् वक्तुमर्हसि ।।५।।

अन्वयः—ब्रह्मन् ! भगवता वेदसम्मितः योऽयं नाट्यवेदः सम्यग् ग्रथितः, (सः) कथं कस्य वा कृते कत्यङ्गः किम्प्रमाणश्च उत्पन्नः? अस्य प्रयोगश्च कीदृशः? भगवन्! एतत् सर्वं यथातत्त्वं वक्तुम् अर्हसि।।४।।५।।

अभिनव-भारती

किं पप्रच्छुरिति दर्शयति— योऽयमिति। भगवता तत्रभवता गुरुणेति भरतमुनिरेवैवमुक्तः। तेन भरतमुनिना यो ग्रथितः सुन्दरतमवस्तुसमाहरणयोजनया गुम्फितः कोऽप्ययं वस्तुविशेषः स तावत्प्रयोगसमयेऽस्माभिर्दृष्ट इति प्रत्यक्षत्वेन अयमिति परामर्शः। अविदितान्तस्सारतया चास्माकं प्रत्यक्षोऽप्यप्रत्यक्षकल्प इति यच्छब्देनाऽनिर्वाच्यविशेषत्वमुक्तम्। अत एव न तच्छब्दसङ्गतिरत्र मृग्यते यथा यत्किञ्चिद् वदतीति। स चाऽयं परीक्षणीयतत्त्वो यतो वेदैः सम्मितः तुल्यः।

तथा हि—धीरोदात्त-धीरललित-धीरोद्धत-धीरप्रशान्तानां पूर्णोपाय-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

प्रवृत्तत्वेन नायकानामतादृगुपायाश्रयेण प्रतिनायकानां च चरितं सफलत्वाफलत्वेन साक्षात् क्रियमाणं वीराद्भुताभ्यां वीरशृङ्गारहास्यैः वीररौद्रभयानककरुणैः वीरबीभत्सशान्तैश्च प्रतिनायकगतरसान्तरसान्तरतया सातिशयचमत्कारगोचरीभूतैर्हृदयानुप्रवेशं विदधद्धर्मादिचतुष्कोपायोपादेयधियमधर्मादिभ्यश्च निवृत्तिं निर्विशङ्कं विधत्त इत्यस्माकमधिगतश्रुतितत्त्वानामपि प्रत्यक्षसिद्धमेवैतत्। प्रसिद्धा चाऽस्य नाट्यवेदसंज्ञा विदिता। अत एवोपदेशहेतुत्त्वाद् वेदः। एवं च जिज्ञास्यतत्त्व एवाऽयम्।

स कथमुत्पन्नः? केन प्रयोजनप्रकारेणोत्पन्नः? तत्प्रयोजनस्य वेदेभ्य एव सिद्धेः। उत्पन्न इति यदि पूर्वमेव वेदवदधिगतपदार्थः स्यात्तत्कथं नामायं पर्यनुयुज्येत। श्रुतिचतुष्टयवदेवेत्यर्थः। अथ यस्य वेदेभ्यो नोपदेशः सिद्धः, स कस्तादृगित्याह- कस्याधिकारिणः। कृते प्रयोजनकरणाय। किं वेदाधिकृत एवाऽत्राधिकारी उत तदन्योऽपीत्यधिकारिविषयोऽयं प्रश्नः। पूर्वस्तु सिद्धसाध्यतया निष्प्रयोजनत्वेनाक्षेपाय प्रश्नः। कत्यङ्ग इति। यद्यस्य सुबहून्यङ्गानि तद्दुरवधारतयाऽशक्यनिर्णयः। तथा परिदृश्यमानगीतातोद्याभिनयादिमध्ये कत्यस्याऽङ्गानि? किञ्च तदङ्गिरूपमुताङ्गसमुदायमात्रं नाट्यमिति तृतीयः प्रश्नः।

किंप्रमाणश्चेति। ननु प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धत्वं तावन्नाट्यस्य। यद्वक्ष्यति– 'दृश्यं श्रव्यं च यत्' (ना.शा. १-११) इति। श्रेयःप्राप्त्युपायज्ञापकत्वमपि मुनीनां स्वसंवदेनसिद्धम्। अन्यथा तु विचार्यत्वमेवाऽस्य न स्यादित्युक्तम्। तत्कोऽयं प्रश्नः? सत्यम्। किन्तु यान्यङ्गानि कानिचित्तानि यदि विज्ञेयानि, केन प्रमाणेन किमङ्गता ज्ञायते? तेन किंप्रमाणाङ्ग इति। तथा केन प्रमाणेनाऽङ्गाङ्गिभावनियमोऽत्र ज्ञेयः? प्रमाणमत्र निश्चयजनकम्।

अन्ये तु नाट्यगतानां रूपकादीनां पाठ्याभिनयरसगीतानां च किं प्रमाणं का सङ्ख्येति विभागविषयोऽयं प्रश्न इत्याचक्षते।

अस्येति नाट्यस्य कीदृक् प्रयोगः। यदि युगपदङ्गानि प्रयुज्यन्ते तद्भिन्नाक्षग्राह्येषु युगपत् संवेदनाभावात् कथमेकं नाट्यमिति प्रतिपत्तिः। क्रमप्रयोगेऽपि नि (न) तराम्। तस्मात् कथं प्रयोग इति। तथा किं नियतेनैवाऽङ्गाङ्गिभावेन प्रयोग उताऽनियतेनेति नाट्याङ्गप्रयोगद्वारेण सामान्याभिनयचित्राभिनयनाटकादिरूपवैचित्र्यविषयः प्रश्नः पञ्चमः। एवं प्रश्नपञ्चकात् कविप्रयोक्त्रोरुपदेशपरं शास्त्रमिति लक्ष्यते। तेन यदिह 'तस्मात् कर्तुर्द्रष्टुः प्रयोक्तुरुपदेशपरमिदं शास्त्रम्' इति, तत्र द्रष्टुरित्यसत्। न ह्यनेन सामाजिको विनीयते, अयोग्यत्वात्। श्रुतिस्मृतीतिहासादिष्विवाऽत्रापि न च तदुपदेशोऽत्र श्रूयते। द्रष्टा तु यदि प्रेक्षाप्रवर्तक उच्यते तदा तस्यापि न प्रबन्धेनोपदेशः। अपि तु क्वचिदेव 'नर्तकोऽर्थपतिर्वा' इत्यादौ। एवं चोपदेश्यत्वे स्थपतिमालाकारप्रभृति विश्वमपीहोपदेश्यं स्यादित्यलमनेन।

यथातत्त्वमिति। नाऽत्र क्रमं प्रति भरोऽस्माकम्, नाऽपीयत्तां प्रति। अज्ञा हि वयमत्र प्रष्टारः। अत एवोपेयपरत्वेनैव मुख्यतया प्रश्नः। यथा बालक आह–

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

'दुःखं मे शमय' इति। तज्ज्ञस्तूपायं प्रश्नयति- 'कुतोऽन्नं लभ्यत' इति। तेनोपेय-मुखेन प्रवृत्तमिदं शास्त्रमुत्तरदानोपनतवस्त्वन्तरोपेयप्रश्नक्रमेण तदुपेयो-पायादिप्रबन्धेन स्थितमिति मन्तव्यम्। तेन यादृशा क्रमेण रूपणयोग्यं तथाप्यप्र-(थाऽप्र) श्नितमपि यदि किञ्चिदस्ति तदपि स्वयमेव निरूपयेति। तत्त्वानतिक्रमेण तत्त्वयोग्यं तत्त्वं च निरूपणीयम्। एतदिति लक्षणपरीक्षापर्यन्तमेतत् ।।४।।५।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ :– ब्रह्मन्! आपने वेद भगवान् के समान (पुरुषार्थप्रद) जिस नाट्यवेद को ग्रथित (कारिकाबद्ध) किया है, वह कैसे और किसके लिए अवतरित हुआ है? उसके कितने अङ्ग हैं? उसका प्रमाण कितना है? उसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है? भगवन्! इन सब प्रश्नों का वस्तुपरक समाधान आप ही कर सकते हैं।।४।।५।।

व्याख्या–इन दो पद्यों में प्रश्नों का आकार प्रदर्शित है। 'भगवता' यह प्रयोग शिष्यों द्वारा भरतमुनि के प्रति आदर प्रदर्शनार्थ है। 'योऽयं ग्रथितः' इस प्रयोग का तात्पर्य यह है कि जिसे कारिकाओं में गुम्फित किया गया है, शिष्यों ने उस सुन्दरतम अभिनय को प्रत्यक्ष किया है। इस प्रकार भरतमुनि प्रयोगिक-पक्ष को ही इन कारिकाओं में सिद्धान्तित किया है, जिसके विषय में शिष्यों की जिज्ञासा है।

इसके विषय में जिज्ञासा इसलिए है कि यह नाट्यशास्त्र 'वेदसम्मित' है। इसमें चार प्रकार के नायकों का समावेश है–(१) धीरोदात्त, (२) धीरललित, (३) धीरोद्धत और (४) धीरप्रशान्त। ये चारों नायक अपने पूर्ण साधनों से अपनी उद्देश्य-पूर्ति में लगे रहते हैं। नाट्यवस्तु में प्रतिनायकों का चरित्र भी दर्शक देखते हैं, उनके उपाय वैसे नहीं रहते, जैसे नायकों के रहते हैं। अतः नायक अपने उद्देश्य में सफल होते हैं और प्रतिनायक अथवा खलनायक उसमें विफल होते हैं। जिस नाट्यवस्तु में धीरोदात्त नायक होता है, उसमें वीर और अद्भुत रस का समावेश रहता है। उसी प्रकार धीर-ललित-प्रधान नाट्यवस्तु में वीर, शृंगार और हास्य रस का, धीरोदात्त-प्रधान नाट्यवस्तु में वीर, रौद्र, भयानक और करुण रस का तथा धीरप्रशान्त-प्रधान नाट्यवस्तु में वीर, बीभत्स और शान्त रस का समावेश होता है। इनमें धीरोदात्त और धीरोद्धत नायकप्रधान रूपकों में वीर रस अथवा शृंगार रस प्रधान होते हैं, अन्य रस उनके अंग होते हैं। धीरललित नायक प्रधान रूपकों में शृंगार रस प्रधान होता है, धीरप्रशान्त नायक प्रधान रूपकों में शान्त रस प्रधान होता है। प्रतिनायक के आधार पर अन्य रस उसके अंग होते हैं। इन रूपकों का प्रधान उद्देश्य रहता है धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष–चतुर्विध पुरुषार्थों में दर्शकों की प्रवृत्ति और अधर्मादि से निवृत्ति। और यही प्रयोजन श्रुति एवं उसका उसका उपबृंहण करने वाले स्मृति-पुराणादि का भी होता है। उपदेश हेतु होने के कारण ही यह वेदसम्मित और नाट्यवेद है। अत एव इसके तत्त्वों के संबंध में प्रश्न उठना स्वाभाविक है। किन्तु काव्य-नाटकों का उपदेश 'कान्तासम्मित' होता है, क्योंकि वह रसाप्लुत होता है, जब कि श्रुतियों की आज्ञा प्रभुसम्मित होती है और पुराणादि का उपदेश सुहृत्सम्मित। रसाभिमुखता इसका वैलक्षण्य है और पुरुषार्थ-प्रवर्तक होने के कारण ही इसे नाट्य कहते हैं। इसीलिए 'काव्यप्रकाश' कार आचार्य मम्मट इसके प्रयोजनों को संकेतित करते हुए कहते हैं–

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

काव्यं

सद्यः परनिर्वृत्तये कालासम्मिततयोपदेशयुजे ।।

'कला के लिए कला' यह पाश्चात्य-दृष्टि है, जब कि भारतीय कला सोद्देश्य होती है। यद्यपि वेदादि का भी नहीं प्रयोजन है, अतः इसके प्रादुर्भाव की क्या आवश्यकता थी– 'कथमुत्पन्ना?' यह प्रश्न स्वाभाविक है। आचार्य मम्मट इसका समाधान यह करते हैं कि कला मात्र कला के लिए नहीं होती, वह सोद्देश्य होती है और वह उपदेश कांता के उपदेश के समान हृदयग्राही होता है। अनुभूति चरम आह्लाद की साथ ही साथ होती है। अत एव नाट्यरस को ब्रह्मानन्दसहोदर कहा गया है। इसमें श्रुति काव्य से प्रमाण है– 'रसो वै सः!'

'कस्य वा कृते उत्पन्नाः' यह प्रश्न अधिकारी से सवद्ध है। वह यह है कि क्या नाट्यवेद का भी वही अधिकारी है जो वेदों के लिए अधिकृत है अथवा वह उससे भिन्न है? प्रथम विकल्प मात्र आक्षेपार्थ है, क्योंकि वेदाध्ययन से ही उसका प्रयोजन सिद्ध होता है। उससे भिन्न ही इसका अधिकारी है यह निश्चित है।

कत्यङ्गः नाट्यवेदः यह तृतीय प्रश्न है। नाट्यवेद के कितने अंग हैं? अनन्त अङ्ग होने पर उसकी अवधारणा कठिन होगी। 'तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्' अमरकोषप्रोक्त इस परिभाषा के अनुसार 'तौर्यत्रिक' वह नाट्य है, जिसमें नृत्य, गीत, वाद्य, अभिनय आदि अनेक भेद होते हैं। इनमें नाट्य के कितने अंग हैं? क्या वे सभी अङ्गी, प्रधान हैं अथवा अङ्ग हैं? यही तृतीय जिज्ञासा का आशय है।

किं प्रमाणः नाट्यवेदः यह चतुर्थ प्रश्न है। 'दृश्यं श्रव्यं च यत् (ना.शा. १।११) काव्य द्विविध होता है– दृश्य, जो चाक्षुषप्रत्यक्षप्रमाण से सिद्ध है और 'श्रव्य', जो श्रावणप्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है। ऐसी स्थिति में प्रमाण से संबंध यह प्रश्न निरर्थक है इस प्रकार का यदि कोई तर्क करे, तो वह ठीक है। क्योंकि मंत्र-द्रष्टा ऋषियों के उपाय भी अनुभवों पर आधारित एवं प्रत्यक्षसिद्ध होते हैं। किन्तु यहां किस प्रमाण के द्वारा कौन प्रधान है और कौन अप्रधान इसका ज्ञान होगा, यही प्रश्नकर्त्ता का आशय है। इस प्रकार 'प्रमाण' शब्द का अर्थ यहां निश्चयज्ञापक है। कुछ लोग इसका अर्थ रूपकों में अवस्थित पाठ्य, रस, अभिनय और गीतों का प्रमाणसंख्या क्या है यह करते हैं।

प्रयोगश्चास्य कीदृशः? यह पांचवा प्रश्न है। इसका मर्म यह है कि नृत्य-गीत आदि का एक साथ प्रयोग कैसे किया जाय? भिन्न-भिन्न इन्द्रियों द्वारा उसका एक साथ प्रत्यक्ष प्रयोग संभव नहीं है और क्रमिक प्रयोग होने पर भी एक साथ उसका रसास्वादन असम्भव है। ऐसी स्थिति में क्या उनका निश्चित क्रम से अगांगीभाव सम्बन्ध स्थापित करके प्रयोग करना चाहिए अथवा बिना क्रम के ही? इस प्रकार नाट्य के अङ्गों के प्रयोगों द्वारा सामान्य अभिनय, चित्र-विचित्र अभिनय, नाटक आदि रूपकों की विविध विधाओं से संबंधित यह पांचवा प्रश्न है। उक्त पांच प्रश्नों से यह लक्षित होता है कि नाट्यशास्त्र एक ओर कवि को उपदेश दे रहा है और दूसरी ओर उसके प्रयोगकर्मी अथवा रंगकर्मी को। इस शास्त्र से प्रेक्षक अथवा सामाजिक शिक्षित नहीं होता। यही भरतमुनि की सम्मति है।

यथातत्त्वम् – कुछ लोग तज्ज्ञ होते हैं और कुछ अज्ञ। तज्ज्ञ (जानकार) जो प्रश्न

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

करते हैं उनके प्रश्न उपायों से सम्बद्ध होते हैं कि इसे कैसे प्राप्त करना चाहिए? अज्ञ लोगों के प्रश्न उपेय से संवंधित होते हैं। पुत्रकल्प शिष्य अज्ञ है, अतः उनके प्रश्न उपेय से संवद्ध हैं। अतः उनका समाधान भी प्रश्नक्रम से ही होना चाहिए। यद्यपि उस क्रम के प्रति शिष्यों का कोई आग्रह नहीं होगा। जिज्ञासु केवल यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, चाहे जिस क्रम से इन प्रश्नों का उत्तर मिले। अतः वे अपने गुरु से उसके समाधान का आग्रह कर रहे हैं।।४।।५।।

भरतमुनेः उत्तरोपक्रमः

तेषां तु[1] वचनं श्रुत्वा मुनीनां भरतो मुनिः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं नाट्यवेदकथां प्रति ।।६।।

अन्वयः–भरतो मुनिः तेषां मुनीनां तु वचनं श्रुत्वा ततः नाट्यवेदकथां प्रति वाक्यं प्रत्युवाच।।६।।

अभिनव-भारती

यदि त एवं पप्रच्छुः, भरतमुनिः किमकार्षीदित्याह–तेषामिति। तुरवधारणे। श्रुत्वैव न तु विलम्ब्येति। पौर्वकाल्यमात्रे क्त्वाल्यपोर्विधानात् ।

तत इति। यतः स तत्त्वविन्मुनिः ते च तदुपदेशयोग्याः तस्माद्धेतोः। कथाग्रहणं यथातत्त्वमित्येतस्यैवार्थं स्फुटीकरोति।

यत्तु प्रयोगप्रश्ने प्रत्यक्षेण प्रयोगप्रकटनमुत्तरं स्यादित्याशङ्कां परिहर्तुं कथाग्रहणमिति तत्त्वसत् । वक्तुमर्हसीत्युक्ते तस्याः कोऽवसरः? एवं भरतमुनिः परवदात्मानं प्रकल्प्येयन्तं ग्रन्थमभिहितवान् । अन्ये त्वियन्तं ग्रन्थं कश्चिच्छिष्यो व्यरीरचत् तत्र ब्रह्मणेति भरतमुनिः प्रथमश्लोके निर्दिष्टः। कथं ब्रह्मन्नुत्पन्न इत्येतदेवमेकवाक्यत्वेन निर्वहति। तदनन्तरन्तु भवद्भिः शुचिभिरित्यादिर्भरतमुनिरचितो ग्रन्थः। मध्येऽत्र षट्त्रिंशदध्याय्यां यानि प्रश्नप्रतिवचनयोजनवचनानि तानि तच्छिष्यवचनान्येवेत्याहुः।

तच्चासत्। एकस्य ग्रन्थस्याऽनेकवक्तृवचनसन्दर्भमयत्वे प्रमाणाभावात् स्वपरव्यवहारेण पूर्वपक्षोत्तरपक्षादीनां श्रुतिस्मृतिव्याकरणतर्कादिशास्त्रेष्वेकविरचितेष्वपि दर्शनात्।

एतेन सदाशिवब्रह्मभरतमतत्रयविवेचनेन ब्रह्ममतसारताप्रतिपादनाय मतत्रयीसारासारविवेचनं तद्ग्रन्थखण्डप्रक्षेपेण विहितमिदं शास्त्रम्। न तु मुनिविरचितमिति यदाहुर्नास्तिकधुर्योपाध्यायास्तत्प्रत्युक्तम्। सर्वानपह्नवनीयाबाधितशब्दलोकप्रसिद्धिविरोधाच्च।

अत्र केचिदाहुः–प्रश्नपञ्चकमत्रैवाऽध्याये तावन्निर्णीयते। उद्देशस्थित्या तद्विभागलक्षणपरीक्षापराणि चाऽध्यायान्तराणीति। अन्ये त्वाहुः- पञ्चभिरध्यायैः पूर्वरङ्गविधानपर्यन्तैः प्रश्नद्वयं निर्णीतम्। सामान्याभिनयचित्राभिनयान्तैः शिष्टैस्तु प्रश्नत्रयमिति।

वयं तु ब्रूमः–नाऽत्र क्रमः कश्चित्। अपि तु यथावसरं महावाक्यात्मना षट्साहस्रीरूपेण प्रधानतया प्रश्नपञ्चकनिरूपणपरेण शास्त्रेण तत्त्वं निर्णीयते।

१. तद् ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

न तु क्रमः कश्चित्। एतच्च ग्रन्थव्याख्यानप्रसङ्ग एव स्फुटीकरिष्यामः।।६।।

तात्पर्यदीपिका

भावार्थः— भरतमुनि नें उन ऋषियों के पांच प्रश्नवाक्य सुनकर तत्काल उस नाट्यवेद की कथा से सम्बद्ध उत्तर वाक्यों को इस प्रकार प्रस्तुत किया।।६।।

व्याख्याः— 'श्रुत्वा तु' इस प्रकार के प्रयोग में 'क्त्वा' और 'ल्यप्' प्रत्यय का विधान केवल पूर्वकाल का द्योतन करने के लिए और 'तु' का प्रयोग अवधारण के अर्थ में किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे ही भरतमुनि ने उन प्रश्नों को सुना, वैसे ही बिना विलम्ब के तत्काल उसका उत्तर दिया। यतः भरतमुनि तत्त्ववेत्ता हैं और प्रश्नकर्त्ता मुनि उपदेश के योग्य हैं इस हेतु की ओर ततः प्रयोग संकेत कर रहा है।

नाट्यवेदकथां प्रति—इस में कथा शब्द का प्रयोग यथार्थ-कथन का द्योतक है। कुछ लोग इसका अर्थ अभिनयपूर्वक उत्तर करते हैं, जो ठीक नहीं है। क्योंकि भरतमुनि सम्पूर्ण उत्तर दान में समर्थ हैं, यह शिष्यों को विश्वास है—वक्तुमर्हसि ऐसा शिष्य कहते हैं। इस ग्रन्थ की रचनाशैली यह है कि भरतमुनि ने अपने को स्वयं से भिन्न रखकर सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना की है। कुछ लोगों का मत है कि किसी शिष्य ने नाट्यशास्त्र की रचना की है। प्रथम श्लोक में **ब्रह्मणा** यह प्रयोग भरतमुनि के लिए है। **भवद्भिः शुचिभिर्भूत्वा** इत्यादि वाक्य भरतमुनिप्रोक्त हैं। बीच के छत्तीस (३६), अध्याय भरतमुनि के किसी शिष्य द्वारा प्रणीत हैं, जिनमें प्रश्न, उत्तर, प्रयोजनकथन आदि की शैली अपनायी गयी है। इस ग्रन्थ में सदाशिव, ब्रह्मदेव एवं भरतमुनि इन तीन मतों का प्रतिपादन किया गया है, जिसमें ब्रह्मदेव के मत का सारसंक्षेप प्रस्तुत करना प्रधान लक्ष्य है। यह भरतमुनि की रचना नहीं है, किंतु यह मत असत्य और अग्राह्य है। इसमें कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अपने लिए 'स्व' और 'पर' का व्यवहार पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की स्थापना के लिए होता है। एककर्ता द्वारा श्रुति-स्मृति-व्याकरणशास्त्र-न्यायशास्त्र आदि विषयों के ग्रन्थ भी इसी शैली से निबद्ध हैं। पांच प्रश्नों के विषय में कुछ लोगों का कथन है कि इसी अध्याय में इनका निर्णय किया गया है। अन्य मत के अनुसार पांच अध्यायों में इनका समाधान है—पूर्वरंग तक पहले दो प्रश्नों का और सामान्य अभिनय एवं चित्राभिनय तक अवशिष्ट तीन प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। अभिनवगुप्तपादाचार्य के मत में इसका कोई क्रम-निर्धारण नहीं है। भरत-नाट्यशास्त्र छः हजार श्लोकों का महावाक्य है, जिसमें पांचों प्रश्नों का समाधान उपलब्ध है।।६।।

भवद्भिः शुचिभिर्भूत्वा तथाऽवहितमानसैः।
श्रूयतां नाट्यवेदस्य सम्भवो ब्रह्मनिर्मितः।।७।।

अन्वयः—भवद्भिः शुचिभिः तथा अवहितमानसैः भूत्वा ब्रह्मनिर्मितः नाट्यवेदस्य सम्भवः श्रूयताम्।।७।।

अभिनव-भारती

तत्र कथं कस्य वा इत्यमुमर्थं निर्णिनीषुराह—भवद्भिरित्यादि। घटादीनामुत्पत्तिर्व्यवहारसिद्धैव, कुलालादिभिरनुगम्यत इति घटः क्रियत इति

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

युक्तम्। न त्वेवं नाट्यस्य। तस्य तूत्पत्तिरेव विरिञ्चोपज्ञतया स्थितेति सम्भवो ब्रह्मनिर्मित इत्युक्तम्। केचिदत्राऽनादित्वं वेदवन्नाट्यस्याऽऽचक्षाणाः उत्पत्त्यादिशब्दान् स्मरणाभिव्यञ्जनादावुपचरन्ति।।७।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः–(भरतमुनि ने ऋषियों से कहा–शिष्यों!) आप लोग सर्वप्रथम पवित्र आचरणशील सावधान चित्त हों और ब्रह्मदेव द्वारा निर्मित नाट्यवेद की उत्पत्तिकथा का श्रवण करें।।७।।

व्याख्याः–

नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य वा कृते (ना.शा.१।४)

इस प्रश्न के समाधान का उपक्रम इस कारिका से है। 'सम्भवो ब्रह्मनिर्मितः' इस चतुर्थ चरण का अभिप्राय यह है कि घट आदि की उत्पत्ति व्यवहार द्वारा सिद्ध है, जिसका अनुगमन कुम्हार आदि करते हैं, अतः कुम्हार घट बनाता है (घटः क्रियते) यह प्रयोग समुचित है। नाट्यवेद की उत्पत्ति उस प्रकार नहीं है। ब्रह्मदेव द्वारा प्रथम बार उसकी उत्पत्ति, उसका प्रयोग किया गया। वे उसके आदिज्ञाता (उपज्ञ) थे। इसलिए सम्भवो ब्रह्मनिर्मितः यह प्रयोग किया गया है। ब्रह्मदेव द्वारा जिसका साक्षात्कार किया गया था, यह संकेत उसी नाट्यवेद की ओर है। कुछ लोग इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि जिस प्रकार वेद अनादि हैं, उसी प्रकार नाट्यवेद भी अनादि है। अतः उत्पत्ति शब्द का अर्थ यहां जन्म नहीं है, अपितु उसका लक्ष्यार्थ स्मरण है।।७।।

देवानां ब्रह्माणं प्रति क्रीडनीयकसृष्टेः प्रार्थना–

पूर्वं कृतयुगे विप्रा! वृत्ते स्वायम्भुवेऽन्तरे।
त्रेतायुगेऽथ सम्प्राप्ते[1] मनोर्वैवस्वतस्य तु[2] ।।८।।
ग्राम्यधर्मे प्रवृत्ते[3] तु कामलोभवशं गते।
ईर्ष्याक्रोधादिसंमूढे लोके सुखितदुःखिते ।।९।।
देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगैः[4] ।
जम्बूद्वीपे समाक्रान्ते लोकपालप्रतिष्ठिते ।।१०।।
महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत् ।।११।।
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात् सृजाऽपरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ।।१२।।

अन्वयः–विप्राः! पूर्वं कृतयुगे स्वायम्भुवे अन्तरे वृत्ते (सति) अथ त्रेतायुगे वैवस्वतस्य मनोः अन्तरे सम्प्राप्ते (सति) लोके तु ग्राम्यधर्मप्रवृत्ते कामलोभवशं गते ईर्ष्याक्रोधदिसंमूढे सुखितदुःखिते(सति) लोकपालप्रतिष्ठिते जम्बूद्वीपे देव-दानव-

१. सम्प्रवृत्ते-पा.।
२. च-पा.।
३. धर्मे प्रवृत्ते-पा.।
४. देवदानवगन्धर्वे रक्षोयक्षमहोरगैः-पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

गन्धर्व-यक्षरक्षोमहोरगैः समाक्रान्ते (सति) पितामहः महेन्द्रप्रमुखैः देवैः उक्तः किल– "(वयं) क्रीडनीयकम् इच्छामः, यत दृश्यं श्रव्यं च भवेत्। अयं वेदव्यवहारः शूद्रजातिषु न संश्राव्यः। तस्मात् अपरं सार्ववर्णिकं पञ्चमं वेदं सृज।।८-१२।।

अभिनव-भारती

तत्र सम्भूतेः कारणमुखेनाऽभिधाने कर्तव्ये कालस्य सर्वत्र पूर्वकारणत्वादुचितकालपरिग्रहेण तद्विद्याधिकारिविषयतां दर्शयितुमाह-पूर्वमित्यादिना श्लोकपञ्चकेन। अस्मिन्नवसरे पितामहो देवैरिदमुक्त इति महावाक्यस्य सङ्गतिः। कस्मिन्नवसरे पूर्वमिति। नाऽस्मिन्नेव कल्पेऽपि तु पूर्वकल्पेष्वपीत्यर्थः। मन्वन्तराणि चतुर्दश, तावत्कल्पो यत्तद् ब्राह्मं दिनम्। तत्र स्वायम्भुवं नाम यत् कल्पस्य प्रथमं मन्वन्तरम्। वैवस्वतमन्वन्तरन्तु सप्तमम्, यत्राऽद्य वर्तामहे। तत्र सर्वेष्वेव मन्वन्तरेषु त्रेतावसरे ब्रह्मणा नाट्यवेदः प्रवर्तितः, कृतयुगे तु नेति तात्पर्यम्। योजना तु स्वायम्भुवे आद्ये मन्वन्तरे यत् कृतयुगं तस्मिन् वृत्ते सति यत् त्रेतायुगं तस्मिन् सम्यक् सन्ध्यतिक्रमेण स्फुटतरं प्रवृत्ते, न केवलं तत्रैव मन्वन्तरे। तु शब्दो यावच्छब्दार्थे। यावद् वैवस्वतस्य मनोरन्तरे समये यत् त्रेतायुगं तस्मिन् प्रवृत्तेऽपि। तेनाऽऽद्यन्तनिरूपणेन सर्वेषां मध्यममन्वन्तराणां सङ्ग्रहः। तेन सर्वेषु त्रेतायुगेषु नाट्यप्रवृत्तिरित्युक्तं भवति।

अस्मिन्नवसरे किमसावुक्तः? आह–जम्बूद्वीपे कर्मभूमिस्थाने यो लोकः सुखितो दुःखितश्च तद्विषयं क्रीडनीयकम्-क्रीड्यते चित्तं विक्षिप्यते विह्रियते येन तदिच्छामः। करणे कृत्यो बाहुलकात्। चित्तं च इतोऽमुतश्च नीयमानं मार्गेऽपि नियोज्यते। यदि वा क्रीडनाय हितं क्रीडनीयकम्। उभयत्राऽज्ञाताद्यर्थे कः। इदस्माकं गुडप्रच्छन्नकटुकौषधकल्पं चित्तविक्षेपमात्रफलमिति यन्न ज्ञायते। तच्च क्रीडनीयकं सुखितदुःखित एव भवति। न ह्येकान्तसुखिते काले देशे वा क्रीडया किञ्चित्। नाऽप्येकान्तदुःखिते। तेन कृतयुगे कलिप्रान्ते वा इलावृतादिनिवासिनि जने नारके वा न क्रीडोपपत्तिः। उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः दुःखस्य बाहुल्यमाह। कथं ज्ञायते सुखितदुःखितो लोक इति। यत ईर्ष्याक्रोधादिभिः संमूढोऽधिवासितहृदयः। आदिग्रहणादनुरागतृष्णादिभिः। तत्र क्रमेण कारणमाह-कामवशगतत्वादीर्ष्यादयो राज्यलोभादिना क्रोधादयः। घिमित्यधिकौ कामलोभौ। यतः सुखितदुःखितत्वस्य कारणं कामादीनां हेतुः ग्राम्यधर्म-प्रवृत्तत्वम्। ग्राम्योऽश्रुतशास्त्रार्थजनाकीर्णदेशोचितो धर्मः स्वधर्माननुपालन-लक्षणः। तद्विषये यतोऽसौ लोकः प्रवृत्तः।

नन्वेवं सत्यधर्मबाहुल्यात् सुखमेषां कुत इत्याह-देवैः श्रीमद्विजयाविमुक्तादिरुद्रावतारैः तथा राजसतामसहृदयजनकल्यमानसपर्याकैर्दानवादिभिराक्रान्ते जम्बूद्वीपे, देवादिभिश्चाक्रान्ते स्ववशीक्रियमाणे। नन्वेवं सत्स्वपि विशुद्धव्यामिश्रधर्मसाधनेषु कथं धर्मः? तेषां तत्राऽप्रवर्तमानत्वात्। सत्यम्। किन्तु लोकपालैः लोकपालांशसंविभागसमुत्पादितैः नरपतिभिः। प्रतिष्ठिते स्वधर्मसाधनं प्रति नियोजिते लोके। दृश्यं श्रव्यं चेति। द्रष्टुं श्रोतुं चाऽर्हम्। न धर्मसाधनम्। शक्यं च। न तु दुर्भगपरुषप्रायम्। लोक इत्येकवचनेन

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

सर्वसाधारणतयैव यद्योग्यं तच्च स्पृश्यादिरूपं न भवति। दृश्यश्रव्ययोस्तु बहुतरसाधारण्योपपत्तिः। असाधारणे चेर्ष्याक्रोधादय एव प्रवर्तन्ते।

एतदुक्तं भवति–कृतयुगे सत्त्वप्रधाने स्वधर्ममात्रनिष्ठो लोको न सुखदुःखे प्रति हेयोपादेयधिया प्रयस्यति। त्रेतायान्तु राजसत्वाद्दुःखं जिहासति। सुखं च प्रेप्सति, रजसश्चलत्वात्। तदाऽसौ शास्त्रीयेषु राजनियन्त्रणया प्रवर्त्यते। तत्र च तादृगुपायो निरूप्यो येन स्वयमेषां भवति प्रवृत्तिः। तच्च नाट्यमेवेति।

चकारेणेदमाह-तादृशा केनचिदुपायेन सम्बन्धस्तकुरुते (स्तु कृतः) येन भिन्नेन्द्रियग्राह्ये अपि दृश्यश्रव्ये एकानुसन्धानविषयत्वं न विजहीत इति सामान्याभिनयकालप्राणत्वं प्रयोगस्य सूचितम्। दृश्यमिति हृद्यं श्रव्यमिति व्युत्पत्तिप्रदमिति प्रीतिव्युत्पत्तिदमित्यर्थ इति। अनेन त्वि (नन्वि) न्द्रादीनां क एतावता स्वार्थः? आह। लोकपालप्रतिष्ठिते जम्बूद्वीपे गता ये लोकाः, ते हि स्वधर्मावस्थिता इज्यादिना नाकमाप्याययन्ति। अत एवेच्छाम इति सर्वेषामैकमत्यमाह। अतोऽन्योन्योपकारवृत्त्या च दैवमानुषसर्गौ निरुपितौ विन्ध्यवासिप्रभृतिभिः। अन्ये तु स्वप्रयोजनमेव क्रीडा महेन्द्रादीनांमित्याहुः। त्रेतायुगे प्रवृत्ते एवम्भूते च लोक इत्यनेनेदमुक्तं भवति-स्वर्गेऽपि हि तदा तदा मानुषगतराजसधर्माभिसम्बन्धचित्रितयागादियोगसरजसीकृतहृदयत्वाद्देवा अपि क्रीडनीयकमभिलेषुरिति।

एवं शास्त्राधिकृतोऽपि जनः नाट्येन सुखं विनीयत इति प्रयोजनमुक्त्वा प्रयोजनान्तरमप्याह–**न वेदव्यवहार** इत्यादिना। कृतयुगे सत्त्वोत्कर्षवलादेव सर्वः स्वधर्ममनुपालयति। अद्यत्वे तु राजसत्वात् शूद्रप्रकाराः करणादिजातीयाः सर्वेऽखर्वगर्वाक्रान्ता वर्णत्रयानुवृत्तिं न विदधते। शास्त्रं भवद्भ्य एवमादिशतीति च ते वचनमात्रेण नाऽऽद्रियन्ते। न च ते वेदशास्त्रोपदेशयोग्याः। अत एवमाह– सम्यगिह स्थाने। श्रुत्या भवतामेतदुपदिष्टमिति ना(न) श्राव्याः। सार्ववर्णिकमिति। अधिकृतानामनधिकृतानामपि सुकुमाराणां व्युत्पत्ति-दायीत्यर्थः। सर्वे वर्णाः प्रयोजनं विनयत्वेन यस्येत्यनेन पूर्वोक्तस्याऽधुनोक्तस्य च समस्तस्योपसंहारः।

अन्ये तु पौनरुक्त्यं परिहर्तुमाहुः–'सर्वेषां वर्णानां सरससुकुमारेण नयेन स्वकर्तव्यनिरूपणं यत्र काव्ये तस्मिन् भवं तदाश्रितम्। येन सर्वो जनः सरस-सुकुमारानुरज्यदाशयः तदुपभोगनान्तरीयकतयैव कार्याकार्यज्ञानमप्युपयुङ्क्ते क्षीरमध्यावस्थितौषधोपयोगवत्। तेनाऽधिकृतानामनधिकृतानामपि सुकुमाराणां व्युत्पत्तिदायि नाट्यम्। अश्रुतशास्त्राणामपि संवादादविचलकार्या-कार्यविवेकसिद्धिरिति।।८-१२।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः– ब्राह्मणों ! प्राचीनकाल में सत्ययुग का स्वायम्भुव मन्वन्तर जब बीत गया, तत्पश्चात् जब द्वापर युग आ गया, जब वैवस्वत मन्वन्तर में लोग ग्राम्य धर्म का आचरण करने लगे, वे जब काम-लोभ-ईर्ष्या-क्रोध-मोह आदि विकारों से ग्रस्त होकर सुख-दुःख के चक्र में पड़ गए, जब जम्बू द्वीप देव-दानव-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-महानाग आदि

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

प्राणियों से आक्रान्त हो गया, जब उस द्वीप पर इन्द्र आदि लोकपालों ने अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की, उस समय देवराज इन्द्र आदि देवताओं ने पितामह ब्रह्मदेव से अनुरोध किया–'पितामह! हमलोग मनोरंजन का ऐसा साधन, खिलौना चाहते हैं, जो दृश्य और श्रव्य हो, जिसका आनन्द हमलोग दृष्टि और कानों द्वारा ले सकें।

यतः शूद्र जाति को वेद नहीं सुनाना चाहिए, अतः आप ऐसे पांचवें वेद की सृष्टि करें, जो सब वर्णों के लिए उपयोगी हो।।८-१२।।

व्याख्याः– नाट्य-वेद की उत्पत्ति का कारण क्या है? उसका सर्वप्रथम निरूपण कर्तव्य कोटि में है। काल ही सर्वत्र प्रथम कारण होता है। अतः सर्वप्रथम कालगणना की गयी है। तदनन्तर उस देश की, वहां रहनेवाले जातियों की और उन लोकपालों की चर्चा है, जिनके द्वारा वहां स्थिरता प्रतिष्ठित की गयी। अनन्तर पितामह से नाट्यवेद की सृष्टि की प्रार्थना की गयी है, जिससे वह सर्वजनसुलभ हो। यह समस्त निरूपण इन पांच श्लोकों में है।

काल गणना–चार युग होते हैं–(१) कृत अथवा सत्ययुग, (२) त्रेतायुग, (३) द्वापरयुग और (४) कलियुग। इसको 'चतुर्युगी' कहते हैं। ब्रह्मदेव का एक दिन हजार 'चतुर्युगी' का होता है। इसी प्रमाण से, उसके हिसाब से पितामह ब्रह्मदेव की आयु सौ वर्षों की है।

पितामह ब्रह्मदेव के हजार वर्षों का काल विष्णु की एक घटी, घड़ी होती है। विष्णु के बारह लाख वर्षों का समय रुद्र की अर्द्धकला होती है। रुद्र के अरब वर्षों का काल एक ब्रह्माक्षर कहलाता है। जैसा कि प्रमाणवचन है–

चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
निजेनैव तु मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम् ।।
पितामहसहस्रेण विष्णोश्च घटिका स्मृता ।
विष्णोर्द्वादशवर्षांनि कलार्द्धं रौद्रमुच्यते ।।
रुद्रस्याऽर्बुदसंख्याभिस्ततो ब्रह्माक्षरं भवेत् ।।

चतुर्युगी का विवरण इस प्रकार है–

(१) सत्ययुग की उत्पत्ति कार्तिक शुक्ल नवमी के प्रथम प्रहर में श्रवण नक्षत्र के वृद्धियोग में हुई है। इसका प्रमाण १७,२८,००० वर्ष है।

(२) त्रेतायुग की उत्पत्ति वैशाख शुक्ल तृतीया चन्द्र के रोहिणी नक्षत्र में प्रवेश करने पर द्वितीय प्रहर में शोभन योग में हुई है। इसका काल प्रमाण १२,९६,००० सौर वर्ष है।

(३) द्वापर युग की उत्पत्ति माघ कृष्ण अमावस्या के तृतीय याम में शुक्रवार को हुई है। इसका काल-प्रमाण ८,६४,००० सौर वर्ष है।

(४) कलियुग की उत्पत्ति भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी रविवार को अर्द्धरात्रि में हुई है। इसका कालमान ४,३२,००० सौर वर्ष है।

'अमरकोष' के अनुसार मनुष्यों का एक मास का काल पितरों का एक दिन होता है। मनुष्यों के एक वर्ष का समय दिव्य दिन (देवताओं का एक दिन) होता है। एक दिव्य वर्ष में ३६० दिव्य दिन होते हैं। दो हजार दिव्य वर्षों का काल ब्रह्मा के एक

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

दिन के बराबर होता है। बारह हजार दिव्य वर्षों की अवधि एक मानव चतुर्युगी होती है। हजार दिव्ययुग में ब्रह्मदेव का एक दिन और हजार दिव्य युग की ब्रह्मदेव की एक रात होती है। मानव कालगणना के अनुसार वे दो(२) 'कल्प' होते हैं, जिनमें यथाक्रम प्राणियों की स्थिति और संहार होता है।

एकहत्तर(७१) दिव्ययुगों का एक(१) मन्वन्तर होता है, जो ब्रह्मदेव के एक दिन का चौदहवा भाग है। 'अमरकोष' के वचन इसमें प्रमाण है-

मासेन स्यादहोरात्रः पैत्रो वर्षेण दैवतः ।
दैवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्मः कल्पौ तु नृणाम् ।
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ।।

(अमर. १।४।२१-२२)

चौदह मन्वन्तर इस प्रकार हैं-(१) स्वायंभुव, (२) स्वारोचिष, (३)औत्तमि, (४) तामस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैवस्वत, (८) दक्षसावर्णि, (९) सावर्णि, (१०) ब्रह्मसावर्णि, (११) धर्मसावर्णि, (१२) रुद्रसावर्णि, (१३) रौच्यसावर्णि और (१४) इन्द्रसावर्णि।

आठवें श्लोक में जिस काल का उल्लेख किया गया है, पितामह ने उस काल में ऋषियों के प्रश्न का समाधान किया था, उसके पूर्व कल्पों में भी सत्ययुग को छोड़कर स्वायंभुव मन्वन्तर से लेकर वैवस्वत मन्वन्तर के बीच सभी त्रेतायुगों में ब्रह्मदेव द्वारा नाट्यवेद का प्रवर्तन किया गया था।

देश की स्थिति—नवम और दशम श्लोक में उस देश की स्थिति चित्रित है, जिसमें लोक अज्ञानान्धकार में पड़ गये थे। सप्तद्वीपा वसुन्धरा में (१) शाक, (२) क्रौञ्च, (३) कुश, (४) जम्बू, (५) प्लक्ष, (६) शाल्मली और (७) पुष्कर ये सात द्वीप परिगणित हैं। पितामह ने जम्बूद्वीप में ऋषियों को नाट्यवेद का उपदेश दिया है। 'विष्णुपुराण' के अनुसार सुवर्णाद्रि सुमेरु पर्वत के दक्षिण की ओर गन्धमादन पर्वत है, जिस पर उगनेवाले जंबूवृक्ष जंबूद्वीप के नाम को सार्थक करते हैं। उसके विशाल फल बड़े-बड़े हाथी के आकार के होते हैं। वे जब पहाड़ पर गिरते हैं, तब उनकी रसधारा जम्बूनदी बन जाती है। उस रसधारा का आस्वाद करनेवालों को न तो दुर्गन्धि आती है और न पसीना। उन्हें बुढ़ापा छूता तक नहीं। उनकी इन्द्रियां स्वस्थ रहती हैं। वहां की तटवर्त्तिनी रसधारा जब हवा लगने पर सूख जाती है, तब वह 'जांबूनद' नामक सोना बन जाती है। सिद्ध जाति के लोग उसके अलंकार पहनते हैं।

(द्रष्टव्य-विष्णुपुराण ११।२)

उस जम्बूद्वीप का ही एक खण्ड भरतखण्ड है, जहां हमारा भारतवर्ष है। जिस समय पितामह ब्रह्मदेव ऋषियों को नाट्यवेद का उपदेश दे रहे थे उस समय देवों से लेकर महानाग तक सभी योनियों के जीव उस पर निवास कर रहे थे।

इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैऋतो वरुणो मरुत् ।
कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात् ।।

(१) इन्द्र (पूर्व), (२) अग्नि (पूर्व-दक्षिण कोण), (३) यम (दक्षिण), (४) नैर्ऋत (दक्षिण-पश्चिम कोण), (५) वरुण (पश्चिम), मरुत् (पश्चिमोत्तर कोण), (७) कुबेर (उत्तर) और (८) ईश (शिव) (उत्तरपूर्व कोण) ये आठ लोकपाल हैं। जिनके अंशों से राजा की उत्पत्ति मानी जाती है-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अष्टाभिर्लोकपालानां मात्राभिर्निर्मितो नृपः।

उस समय जम्बूद्वीप के शासक यह देख रहे थे कि लोग ग्राम्य धर्म में प्रवृत्त हैं, वे नागर धर्म भूल गए हैं। क्योंकि ग्राम्य धर्म वही प्रवृत्त होता है, जहां वेद-शास्त्रों के अध्ययनाध्यापन का ह्रास होता है, अतः वे वैदिक धर्म में प्रवृत्त नहीं होते। फलतः वे स्वैराचार, अर्थलिप्सा, ईर्ष्या, क्रोध, मोह आदि विकारों से ग्रस्त होते हैं। सत्ययुग में ऐसी स्थिति ही नहीं थी, तब यह प्रश्न ही नहीं उठा था। जम्बूद्वीप में भ्रष्टाचार बढ़ने से सभी शूद्रतुल्य हो गए थे। वेदों के अध्ययनाध्यापन का अधिकार केवल त्रिवर्ण (ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य) को था। उस समय वहां के लोग सुखी इसलिए थे कि श्रीमान्, विजय, अविमुक्त आदि रुद्रावतारों से जम्बूद्वीप आक्रान्त था। इसी का संकेत 'देव' शब्द से किया गया है। लोग दुःखी इसलिए थे कि दानव भी वहां थे, जिनकी सेवा-शुश्रुषा राजस और तामस प्रवृत्ति के लोग कर रहे थे। तथापि वहां धर्म इसलिए बचा था क्योंकि वहां उन लोकपालों (राजाओं) का शासन था, जिनमें इन्द्रादि लोकपालों का अंश विद्यमान था। महेन्द्र आदि देवों को वहां के निवासियों के उद्धार की चिन्ता थी, अतः उन्होंने ब्रह्मदेव से एक क्रीडनीयक की सृष्टि की प्रार्थना की जिससे उनका मनोरञ्जन हो, चित्त के दुःख का अन्त हो। वह सभी वर्णों के लोगों के लिए उपयोगी हो। सार्ववर्णिक का यह आशय भी है कि अत्यन्त कोमल सरणी को अपना कर दृश्य अथवा नाट्य एवं श्रव्य अथवा काव्य लोगों को सन्मार्ग की और अभिमुख करता है। यही नाट्यशास्त्र की विशेषता है। जो उसे पंचम वेद के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करती है।।८-१२।।

ब्रह्मणः चतुर्वेदस्मरणम्

एवमस्त्विति तानुक्त्वा देवराजं विसृज्य च।
सस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित्।।१३।।
(नेमे वेदा यतः श्राव्याः स्त्रीशूद्राद्यासु जातिषु।
वेदमन्यत् ततो स्रक्ष्ये सर्वश्राव्यं तु पञ्चमम्।।)

अन्वयः – तत्त्ववित् 'एवम् अस्तु' इति तान् उक्त्वा देवराजं च विसृज्य योगम् आस्थाय चतुरः वेदान् सस्मार। (यतः इमे वेदाः स्त्रीशूद्राद्यासु जातिषु न श्राव्याः, ततः सर्वश्राव्यम् अन्यत् पञ्चमं वेदं तु स्रक्ष्ये।)।।१३।।

अभिनव-भारती

एवमस्त्विति तानिति। देवराजमिति। तानुक्त्वा तान् विसृज्य। देवराजं विसृज्येति प्राधान्यादुपादानम्। योगमिति। येन सर्ववेदानां युगपदवभासो भवति। तत्त्वविदिति समस्तलोकवेदज्ञ इत्यर्थः।।१३।।

तात्पर्यदीपिका

भावार्थः– तत्त्ववेत्ता ब्रह्मदेव ने 'ठीक है, ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर देवराज इन्द्र को बिदा किया और समाधिस्थ होकर चारों वेदों का स्मरण किया।।१३।।

(यतः स्त्री-शूद्र आदि जातियों को वेद-श्रवण का भी अधिकार नहीं है, अतः मैं सभी जातियां जिसके श्रवण के अधिकारी हो सकती हैं, उस पञ्चम वेद की सृष्टि करूंगा।)

व्याख्याः– देवताओं के प्रतिनिधि देवराज इन्द्र थे, अतः 'देवराजं विसृज्य' यह प्रधान रूप से वाक्य प्रयोग है। **योगम्**– उन्होंने समाधि इसलिए लगायी, जिससे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

चारों वेदों का एक साथ साक्षात्कार हो सके। **तत्त्ववित्** –पितामह ब्रह्मदेव जिस प्रकार वेद-वेदाङ्ग आदि चतुर्दश अथवा अष्टादश विद्याओं के मर्मवेत्तार्थ, उसी प्रकार लोक व्यवहार के भी मर्मज्ञ थे। अत एव उन्होंने उस पञ्चम नाट्यवेद की सृष्टि की, जो रस का सागर है और कान्तासम्मित उपदेश से ओतप्रोत भी है। लोक उससे विमुख हो ही नहीं सकते, अपितु उसमें स्वतः उसकी ओर अभिमुख होने का सामर्थ्य है। यही उनकी लोकज्ञता है।।१३।।

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेश्यं[1] ससङ्ग्रहम्।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम्।।१४।।
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रवर्तकम्[2]।
नाट्याख्यं पञ्चमं वेदं[3] सेतिहासं करोम्यहम्।।१५।।
एवं सङ्कल्प्य भगवान्[4] सर्ववेदान[5]नुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्।।१६।।

अन्वयः–"अहं धर्म्यम् अर्थ्यं यशस्यं सोपदेश्यं ससङ्ग्रहं च, भविष्यतः लोकस्य च सर्वकर्मानुदर्शकं सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रवर्तकं सेतिहासं नाट्याख्यं पञ्चमं वेदं करोमि"–भगवान् एवं सङ्कल्प्य सर्ववेदान् अनुस्मरन् ततः चतुर्वेदाङ्गसम्भवं नाट्यवेदं चक्रे।।१४-१६।।

अभिनव-भारती

ततः किं चकारेत्याह श्लोकत्रयेण धर्म्यमित्यादिना। **एवमिति** (११-६) धर्म्यमित्यादियुगलोक्तमर्थं सङ्कल्प्य। चतुर्वेदस्मरणेन हेतुना तत इति। चतुर्भ्यो नाट्यवेदं चक्रे। हेतौ शता। धर्म्यमिति। धर्मे साधूपदेशाय। एवमर्थेऽपि। अन्ये तु धर्मार्थाभ्यामनपेतं यशः प्रयोजनमस्येति। अत्र व्याख्यानद्वयेऽपर-पुरुषार्थासङ्ग्रहः स्यात्। नाट्योत्पत्तिगर्भाधानकल्पे चाऽस्मिन् सङ्कल्पे यत् त्यक्तं तत् त्यक्तमेव। यशसश्च धर्मफलत्वात् पृथगुपादानं किमर्थम्? सोपदेशमित्यादेश्च पौनरुक्त्यम्। तस्मादयमत्राऽर्थः–धर्मशब्देन चत्वारोऽपि पुरुषार्थाः। तेषु साधु साधकम्। ननु किं साक्षात्? नेत्याह। सोपदेश्यं सहोपदिश्य-मानैरुपायैर्यद् वर्तते, चतुर्वर्गोपायप्रदर्शकमित्यर्थः। ननु वेदादयोऽप्येवम्। नैतत्। सम्यग्ग्रहणं सङ्ग्रहः। यतः परं निर्विशङ्कप्रीत्यर्थं प्रमाणान्तरं नाऽभ्यर्थ्यते। तच्च साक्षात्काररूपमेव। यदाहुः–**सर्वा च प्रमा प्रत्यक्षपरा** इति। तेन सहेति ससङ्ग्रहम्। एवमपि प्रत्यक्षेण सदाचारयज्ञादिदर्शनात् कोऽस्य भेदः? आह–सर्वेषां कर्मणां क्रियमाणानामनु पश्चादचिरेणैव कालेन दर्शकं पञ्चषादिभिरेव दिवसैः शुभाशुभकर्मतत्फलसम्बन्धसाक्षात्कारो यत्रेत्यर्थः। कस्येत्याह–यो यः कश्चिदस्मात् क्षणादूर्ध्वं भविष्यति लोकस्तस्योपदेश्यस्येत्यर्थः।

अनुकार्याभिप्रायेणाऽत्र भविष्यत इति व्याख्यातम्। च शब्देन भूतवर्तमान-

१. सोपदेशम्-पा.।
२. प्रदर्शकम्-पा.।
३. नाट्यसंज्ञमिमं वेदं-पा.।
४. सङ्कल्प्य भगवानेवं-पा.।
५. सर्वान् वेदान्-पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

ग्रहणमित्यधरोत्तरीभूतम्। वृत्तराजर्षिवंशकीर्तनादेर्हि प्रधानतया स्वकण्ठेनाऽभिधानं युक्तम्। न तु भविष्यत इत्यास्तामेतत्।

तस्मात् व्युत्पाद्याभिप्रायेणैव लोकस्येति व्याख्येयम्।

एवमपि तत्रैव केन प्रवर्त्यत इत्याह-अर्थ्यम्। हृद्यतया सर्वजनानामपि नानाधिकारत्वेनाऽभिलषणीयमित्यर्थः। ननु प्रथममज्ञातपरमार्थे कथमभिलषणम्? आह-यशस्यम्, सर्वत्र हृद्यतया प्रथितम्।

न केवलं प्रधानपुरुषार्थोपायदर्शकं यावत् सर्वेषां शास्त्राणां कलाप्रधानानां येऽर्था गीतनृत्तवाद्यादयस्तैः सम्पन्नं युक्तम्। तथा सर्वाणि शिल्पानि चित्रपुस्तादीनि प्रवर्तयति स्वोपयोगत्वेनाऽऽक्षिपतीत्येवमेकेन यत्नेन समस्तवस्तुसिद्धिर्यतो भवति तन्नाट्यमित्युक्तं भवति। तच्च सेतिहासम्। इतिहासोपदेशकरूपं सप्रभेदम्। इतिरेवमर्थे प्रत्यक्षनिर्देशं द्योतयति। हः इहशब्द आगमः। आसनमासः। एवंप्रकाराः प्रत्यक्षपरिदृश्यमाना आगमिकार्थाः कर्मफलसम्बन्धस्वभावा यत्राऽऽसते तेनेतिहासेन सहेतिपाठे मत्वर्थीयोऽकारः। इतिः ज्ञानम्, तस्य हासो हर्षपूर्वको विकासो यत इति केचित्। इतिहासश्चतल्लक्षणमित्थं किलासनं यत्र रूपकभेदानां भण्यते। उपदेशशब्देन च दशरूपकं तदुपयोगवदेव (वद्देश) द्विहस्तादिलक्षणनाट्यवेदशास्त्रम्। तत्सहितस्यैव करणीयत्वेन सङ्कल्पः। अन्यथा बुद्ध्या कल्पितस्याऽपि नाट्यस्य कथमन्यत्र सङ्क्रमणम्? तेन च विना कथं प्रयोगः? पञ्चममिति। य एकोऽपि चतुरो वेदानतिशेत इत्यर्थः। अहमिति यस्य सर्वलोककृत्योद्वहनमेव परं कृत्यम्।

एवं सङ्कल्प्येति। सङ्कल्पव्यापार एवाऽयं बुद्ध्या वेदाङ्गैकीकारलक्षणो ब्रह्मणो नाट्यवेदोत्पादनम्। ननु वेदस्मरणेन तत्र कथं हेतुता लब्धा? आहचतुर्वेदाङ्गसम्भवमिति। चत्वारो वेदाः। अङ्गानां पाठ्यादीनां सम्भवो यस्य। सम्भवत्यस्मादिति सम्भवः। अत एवं वेदचतुष्टयमपि यत्राऽङ्गानि प्रत्युपकरणीभूतमिति (स तथोक्तः)।।१४-१६।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः—"मैं उस नाट्यवेद की सृष्टि करूंगा, जो धर्म-अर्थ कीर्ति और उपदेश देने में समर्थ हो, जिसमें वेद-वेदाङ्ग सहित सभी-विद्याओं और लोकवृत्त का संग्रह हो, जो चराचर जगत् की भावी पीढ़ी को सत्कर्म की ओर प्रवृत्त करने में मार्गदर्शन कर सके, जिसमें सभी शास्त्रों का गूढ़ तत्त्व निहित हो और जो सभी शिल्पों का प्रवर्तक और ऐतिहासिक हो।" पितामह ब्रह्मदेव ने इस प्रकार का संकल्प किया और समाधिस्थ होकर एकाग्रचित्त से सभी वेदों का स्मरण करते हुए चारों वेदों और वेदाङ्गों को उपजीव्य बनाकर नाट्यवेद की सृष्टि की।।१४-१६।।

व्याख्याः—क्षेपक एवं चौदहवें-पन्द्रहवें श्लोकों में पितामह ब्रह्मदेव द्वारा मानससंकल्प के आकार का चित्रण है। संकल्प के पश्चात् उन्होंने वेदों का स्मरण किया जो नाट्यवेद की सृष्टि में हेतु है—ततः।

धर्म्यम् अर्थ्यं यशस्यं च—इस चरण में नाट्यवेद की सृष्टि के प्रयोजन की ओर संकेत निहित है। कतिपय विद्वानों के अनुसार इसका अर्थ यह है कि नाट्यवेद की

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

सृष्टि का प्रयोजन धर्म एवं अर्थ की शिक्षा-दीक्षा के साथ ख्याति प्राप्त करना है। किन्तु ऐसा अर्थ करने पर संकल्प में तृतीय एवं चतुर्थ पुरुषार्थ-काम और मोक्ष का संग्रह नहीं होगा। साथ ही 'यश' तो धर्म का फल है, फिर उसका पृथक् उपादान व्यर्थ होगा, और 'सोपदेश्यं' इत्यादि विशेषणों की भी द्विरुक्ति होगी। अतः 'धर्म्यम्' में प्रयुक्त 'धर्म' शब्द से चारों पुरुषार्थों का ग्रहण किया गया है। **'धर्मे साधु, धर्म्यम्'** नाट्यवेद चतुर्विध पुरुषार्थ की सम्यक् शिक्षा-दीक्षा देता है, वह पुरुषार्थों की शिक्षा-दीक्षा साक्षात् नहीं देता, अपितु उनकी प्राप्ति के उपायों का मार्गदर्शन करता है- 'सोपदेश्यम्'। वह चारों वेदों से विलक्षण है- 'ससङ्ग्रहम्' । 'सम्यग् ग्रहणं सङ्ग्रहः, तेन सह वर्तते इति तम्।' उस में सभी विद्याओं और कलाओं, जिनमें लोक-कला भी समाविष्ट है, अच्छी प्रकार संग्रह किया गया है। वह प्रत्यक्ष-प्रमाण पर आधारित है, उसे अन्य प्रमाणों की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि वह 'दृश्य' और 'अनुकार्य' है। नट अनुकरण द्वारा दर्शकों को सभी विद्याओं और कलाओं का साक्षात्कार कराता है। सभी ज्ञान (प्रमा) प्रत्यक्ष पर आधारित्त होता है- **सर्वा च प्रमा प्रत्यक्षपरा**। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वेद भी सदाचार और यज्ञादि का साक्षात्कार कराते हैं। फिर उनमें और नाट्यवेद में अन्तर क्या है? उसका उत्तर है-**भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम्**। **सर्वकर्मानुदर्शकम्**' पद का समास-विग्रह इस प्रकार होगा-**सर्वेषां कर्मणाम् अनु पश्चाद् अचिरेणैव कालेन दर्शकम्**। जब नट अनुकरण करता है, तब तत्काल पांच छः दिनों के भीतर ही, लोक शुभ-अशुभ कर्म और उनके फल का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करते हैं, जो वेदों द्वारा विलम्ब से प्राप्त किया जाता है। अनुकार्य की दृष्टि से **भविष्यतश्च लोकस्य** यह प्रयोग किया गया है। कुछ लोग 'च' शब्द से 'भविष्यकाल' के साथ भूतकाल और वर्तमान काल का संग्रह करते हुए इसकी यह व्याख्या करते हैं कि नाट्यवेद कालत्रय में सभी लोकों का मार्गदर्शन करते हैं, जो ठीक नहीं है। क्योंकि राजर्षि आदि के भूतकालिक चरित्रों का वर्णन तो कण्ठ से ही संभव है, भविष्यकाल का सम्भव नहीं है। अतः जिन्हें शिक्षा-दीक्षा देनी है, उनके लिए **भविष्यतश्च लोकस्य** यह प्रयोग किया गया है। क्योंकि नट अनुकरण द्वारा उन्हें अविलम्ब लोकयात्रा की सम्यग् शिक्षा प्रदान करता है। वेदों द्वारा वह शिक्षा विलम्ब से प्राप्त होनी है, यही नाट्यवेद की विलक्षणता है। **अर्थ्यम्**-इस पद का अभिप्राय अर्थ-पुरुषार्थ का शिक्षोपदेशक न होकर मनोहारी अथवा हृदयावर्जक होने के कारण नाट्य विविध अधिकार भेद के अनुसार वाञ्छित होता है यह है। **यशस्यम्**-अत एव उसकी सर्वत्र ख्याति होती है। **सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नम्**-कलाप्रधान जितने शास्त्र हैं, उनके अर्थ (विषय) गीत, नृत्य, वाद्य आदि होते हैं। वे सभी विषय नाट्यवेद में समाविष्ट हैं। **सर्वशिल्पप्रवर्तकम्** चित्रकला, शिल्पकला आदि का उपदेश भी नाट्यवेद द्वारा प्राप्त होता है। **सेतिहासम्**- 'इति', 'ह' और 'आस' शब्दों से 'इतिहास' शब्द निष्पन्न है, जिसका यथाक्रम अर्थ होगा-'इस प्रकार यही था।' भूतकालिक घटित घटनाओं को अनुकरण द्वारा प्रत्यक्ष कराना नाट्यवेद का अन्यतम लक्ष्य है-**इतिहासेन सह वर्तत इति सेतिहासम्**। कुछ लोग 'इतिहास' शब्द की निष्पत्ति 'इति' और 'हास' दो शब्दों से मानते हैं और उसका समासविग्रह इस प्रकार करते हैं-**इतेः ज्ञानस्य हासः हर्षपूर्वकः विकासः यस्मात् सः इतिहासः**। जिसके द्वारा ज्ञान का आल्हादपूर्वक विकास होता है, वह इतिहास है। 'नाट्य' (दृश्य) के दस रूपक और उतने ही उपरूपक हैं। उनके द्वारा वह विकास परिलक्षित होने से नाट्यवेद

CC-0. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

सेतिहास है। पञ्चमं वेदम्– चारों वेदों से विलक्षणता ही नाट्यवेद को पञ्चम वेद पद पर प्रतिष्ठित करती है। इतना ही नहीं, वह चतुर्वेदाङ्गसम्भव भी है। ऋग्वेद आदि चार वेदों से नाट्यवेद के पाठ्य आदि चार अङ्गों की उत्पत्ति हुई है, जो नाट्यवेद को पञ्चमवेद की कोटि में प्रतिष्ठित करते हैं।।१४-१६।।

पञ्चमवेदस्य वेदाङ्गसंग्रहः

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ।।१७।।
वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना ।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्ववेदिना[1] ।।१८।।

अन्वयः–(भगवान्) ऋग्वेदात् पाठ्यं जग्राह, सामभ्यः गीतम् एव च (जग्राह), यजुर्वेदात् अभिनयान् (जग्राह), आथर्वणात् अपि रसान् जग्राह। एवं सर्ववेदिना महात्मना भगवता ब्रह्मणा वेदोपवेदैः सम्बद्धः नाट्यवेदः सृष्टः।।१७।।१८।।

अभिनव-भारती

कुत्राङ्गे कस्य वेदस्योपयोग इति दर्शयति–**जग्राह पाठ्यमृग्वेदादिति**। इह पठ व्यक्तायां वाचीत्युक्तं व्यक्तत्वं विवक्षाविशिष्टस्वार्थार्पणक्षमत्वम्। तच्च काक्वध्यायवक्ष्यमाणस्वरालङ्कारादिसामग्रीयोजनेन भवतीति तयोपस्कृतं पाठ्यमुच्यते। तच्च प्राधान्यात् प्रथममुपात्तम्।

तथा हि वक्ष्यति–

वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्यैषा तनूः स्मृता ।
अङ्गनैपथ्यसत्त्वानि वाक्यार्थं व्यञ्जयन्ति हि ।। इति(१५-२)

अत एवाऽभिनयान्तर्भूतत्वेऽपि पृथगुपात्तम्। तदृग्वेदाद् गृहीतम्। तस्य त्रैस्वर्यप्रधानस्य स्तोत्रशब्द (स्त्र) द्वारेण यागोपकारित्वात्। पाठ्यमपि च त्रैस्वर्योपेतम्। ऐकस्वर्ये काक्वभावाभ्यां च स्वस्वादौ (चैकस्वभावाच्च स्वरादौ) गीतरूपापत्तेरिति हि वक्ष्यामः। (ना.शा. १७)

पाठ्यगतस्वरप्रसंगात् तदनन्तरं **सामभ्यो गीतं जग्राहेत्युक्तम्**। उपरञ्जकत्वेन हि पश्चत् तस्यामिधानं न्याय्यमिति् केचित्। **गीतं प्राणाः प्रयोगस्य** इति वक्ष्यमाण्त्वात्, तदायत्तत्वाद् रसचर्वणायाः समुचितमस्याऽत्रैवाऽभिधानमित्यस्मदुपाध्यायाः। चकारेणैतत्तुल्यकक्ष्यतामाह। एवकारेण गीतमात्रं ततो गृहीतं **गीतिषु सामाख्या** (जैमिनि. २-१-३६) इति न्यायात्। तदाधारध्रुवापदयोजनमृग्वेदादेवेति दर्शयति। तत एव ध्रुवाध्याये वचनादत्रैव सङ्गृहीतम् (?)।

घनावनद्धरूपिसामगानक्रियाप्राणभूतकालसाम्यात्मकतालसामान्यस्वीकृतमत्रैव प्रविष्टम्। आध्वर्यवकर्मप्रधाने तु यजुवेदेऽङ्गकर्मणां प्रदक्षिणगमनादिक्रम एव प्रथमं पठिष्यति या **ऋचः पाणिका** (३२-२) इत्यादि। ततसुषिरात्मकं चाप्यातोद्यं स्वरप्राधान्यात्।

आथर्वणवेदे तु शान्तिकमारणादिकर्मसु नटस्येव तस्यर्त्विजः प्राड्डुदवैषुण्णाद्यनुभावानां प्रजाशत्रुप्रभृतिनाऽवधानग्रहणादिना लोहितोष्णीषादेर्नेपथ्यस्य तेषु तेषु च कर्मसु विशिष्टप्रयत्नपुरुसम्पाद्यमनोवष्टम्भात्मनः सत्त्वस्य सम्भवात्

१. ललितात्मकम्–पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

ततोऽभिनयानामग्रहणम्। वाचिकस्त्वभिनयः पूर्वमेवोक्तः। प्राधान्यवि (न्यात् वि) भावानां धृतिप्रमोदादिव्यभिचारिणां च परमार्थसतां समाहरणं प्रधानमिति विभावादिसामग्रीरूपरसात्मकचर्वणासम्भव इति ततस्तद्ग्रहणमुक्तमिति न तटस्था एवैते। अत एव रस्यन्ते। तत्रैव च रस्यन्त इति हि वक्ष्यामः।

तदेवं नाट्यादिरूपकोपक्रमं गीतातोद्यप्राणाभिनयवर्गपरिपुष्यद्रसचर्वणात्मकं परप्रीतिमयमेव नाट्यम्। ततस्तद्व्युत्पत्तिरिति नाट्यमेव वेद इति क्रमेण प्रदर्शितम्। तेनाऽऽक्रम्य योजनात्मकनियोगात्मकशासनप्राणशास्त्रवैलक्षण्येन स्वयमुपारूढज्ञानाभिधानविदः प्राणवेदरूपता नाट्यस्यैवेति सिद्धम्।

एतदुपसंहरति–वेदोपवेदैरित्यादि। वेदा व्याख्याताः। वेदार्थानामुपकारकोऽर्थो वेद्यते येन स उपवेदात्मा। तद्यथा ऋग्वेदस्य मन्त्रार्थवादादिव्याख्यानोपनयनप्रजारक्षणप्रदर्शक आयुर्वेदः। यतो महात्मा ततः सर्ववेदी। सर्ववित्त्वाच्च तथाविधसृटिशक्तः। एवमित्युपसंहरन् प्रश्नत्रयं कृतोत्तरमिति दर्शयति। प्रयोजनस्याऽधिकारिणामङ्गाङ्गिभावस्य च निर्णीतत्वात्।।१७।।१८।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः– भगवान् ब्रह्मदेव ने (चार वेदों के अन्तर्गत) ऋग्वेद से पाठ्य का, सामवेद से गीत का, यजुर्वेद से अभिनय का और अथर्ववेद से सभी रसों का संकलन किया। इस प्रकार महात्मा चतुर्वेदी अथवा सर्वज्ञ भगवान् ब्रह्मदेव ने पूर्वोक्त संहिताओं (आयुर्वेद-धनुर्वेद-गान्धर्ववेद और स्थापत्यवेद इन) उपवेदों से सम्बद्ध (पञ्चमवेदस्वरूप) नाट्यवेद की सृष्टि की।।१७।।१८।।

व्याख्या– 'जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात्'– जिस प्रकार चार वेदों के शिक्षा-कल्प आदि छः अंग हैं, उसी प्रकार पञ्चम वेद नाट्यवेद के पाठ्य आदि चार अङ्ग हैं। चारों वेदों से इनका संकलन किया गया है. इनमें ऋग्वेद से 'पाठ्य' का संकलन किया गया है। 'पाठ्य' शब्द 'पठ्' धातु से निष्पन्न है। धातुपाठ में वह इस प्रकार पठित है– 'पठ् व्यक्तायां वाचि।' अभिव्यक्त अर्थात् अभिव्यक्तिप्रधान स्पष्ट वाणी के अर्थ में पठ् धातु का प्रयोग किया जाता है। यहां अभिव्यक्ति से तात्पर्य यह है कि जो अर्थ विवक्षित हो, वाणी की तदनुकूल अभिव्यक्तिक्षमता। दो प्रकार का अभिनय होता है– आङ्गिक और वाचिक। इनमें वाचिक अभिनय स्वर और व्यञ्जनों के उच्चारण पर आधारित होता है। इसके विषय में भरतमुनि पन्द्रहवें अध्याय में स्पष्ट कहते हैं–

वाचि यत्नसु कर्तव्यो नाट्यस्यैषा तनुः स्मृता ।
अङ्गनेपथ्यसत्त्वानि वाक्यार्थं व्यञ्जयन्ति हि ।।
वाङ्मयानीह शास्त्राणि वाङ्निष्ठानि तथैव च ।
तस्माद् वाचः परं नास्ति वाक् हि सर्वस्य कारणम् ।।

(ना.शा. १५।२-३)

भरतमुनि वाणी से सम्बद्ध अभिनय पर जोर दे रहे हैं। क्योंकि वह नाट्य का शरीर है। वाणी ही समस्त शास्त्रों का शरीर है, वे वाणी पर ही आश्रित है। वाणी ही सबका कारण है। आंगिक, नेपथ्यप्रधान और सात्त्विक अभिनय उसी वाणी के अर्थ (विषय) को अभिव्यक्त करते है। वाचिक अभिनय पाठ्य पर आधारित होता

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

है, जो दो प्रकार का है–संस्कृत और प्राकृत।

द्विविधं हि स्मृतं पाठ्यं संस्कृतं प्राकृतं तथा
(ना.शा. १५।५)

पाठ्य का अभिनय स्वरों के उतार-चढ़ाव पर आधारित है। उस ध्वनि-विकार को 'काकु' कहते हैं। 'अमरकोष' में उसका लक्षण इस प्रकार है–

काकुः स्त्रियां विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः

स्त्रीलिङ्गी 'काकु' शब्द का अर्थ वह ध्वनि-विकार है, जो शोक, भय इत्यादि स्थायी भावों से जन्म लेता है। यतः वाक्य के दो भेद होते हैं– साकांक्ष और निराकांक्ष, अतः भरत मुनि के अनुसार उस 'काकु' के भी दो भेद हैं–साकांक्ष और निराकांक्ष। भरतमुनि के अनुसार पाठ्य के गुणों में संगीत के सात स्वर, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और कम्पित में चार स्वर, उरस् , कण्ठ और शिर ये तीन स्थान, उच्च, दीप्त, मन्द्र, नीच, द्रुत और विलम्बित ये छः स्वरालंकार; तथा विच्छेद, अर्पण, विसर्ग, अनुवन्ध, दीपन और प्रशमन ये छः अङ्ग परिगणित हैं। भाषा-विधान आदि को जान लेने पर ही पाठ्य का वाचिक अभिनय सम्भव है। नाट्यवेदों के अङ्गों में वह प्रधान है, जिसका ऋग्वेद से संकलन किया गया है। जिस प्रकार ऋग्वेद में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों की प्रधानता है, उसी प्रकार पाठ्याभिनय में भी उक्त स्वरों की ही प्रधानता है। एक स्वर में काकु ध्वनि का अभाव रहता है, उसमें गीत का स्वरूप ही स्थिर नहीं हो सकता। अतः पाठ्याभिनय में 'काकु' ध्वनि का महत्त्व है, पाठ्य गुणों में इन्हीं का समावेश है। अत एव भरतमुनि कहते हैं–

एवं भाषाविधानादि ज्ञात्वा सर्वमशेषतः ।
ततः पाठ्यं प्रयुञ्जीत षडलंकारसंयुतम् ।।
(ना.शा. १९।३७)

यह समस्त वर्णन भारतीय नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत वाचिक एवं आङ्गिक अभिनय के सन्दर्भ में काकुस्वरव्यञ्जन नामक उन्नीसवें (१९) अध्याय में उपलब्ध है।

सामभ्यो गीतमेव च– 'पाठ्य' के अन्तर्गत षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषध (निषाद) इन गान्धर्ववेदीय सात स्वरों का समावेश होने के कारण पाठ्य के पश्चात् गीत के संकलन का निरूपण है, जिसका संग्रह सामवेद से किया गया है। उपरञ्जकता ही इसका वीज है ऐसा कुछ लोगों का मत है। भरतमुनि के पूज्य गुरुपाद भट्टतौत के अनुसार अभिनय प्रयोग का प्राण गीत है– **गीतं प्राणाः प्रयोगस्य।** उसके अधीन ही रस का आस्वाद किया जा सकता है। 'एव च' इन दोनों अव्ययों का प्रयोग भी सार्थक है। समुच्चय वाचक चकार 'पाठ्य' और 'गीत' दोनों को समान कक्षा में प्रतिष्ठित कर रहा है। 'एव' कार का तात्पर्य यह है कि सामवेद से केवल 'गीति' का ग्रहण किया गया है, जैसा कि प्रमाणस्वरूप जैमिनिसूत्र है–**गीतिषु सामाख्या** (२-१-३६)। पाठ्य के अन्तर्गत सप्त स्वरों का समावेश होता है, जो गीतों का आधार है। सामवेद गीतिप्रधान वेद है, जिसका आधार लय और ताल होता है। झांझ आदि घनवाद्य और मृदंग आदि अवनद्ध वाद्य तालवाद्य हैं, जो सामप्रधान गीतों के प्राण हैं। ताल के ठेके काल पर आश्रित होते हैं। अतः इनका संग्रह भी इसी में है। (द्र० तालव्यंजनाध्याय ३१)इसी प्रकार वीणा आदि तन्त्रीप्रधान 'तत' वाद्य और बांसुरी आदि वंशवाद्यों की वादनविधि इसी में संकलन है। (द्र.अ. २८-२९-३०) संक्षेप में गीतों का गान और वाद्य वादन दोनों का संकलन सामवेद से किया गया है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

विशेषतः गीत के स्वरों का आधार होता है ध्रुवा ताल। देवर्षि नारद आदि द्विजों ने इसका विस्तार से चित्रण किया है और नाट्यशास्त्र के ध्रुवातालविधान नामक बत्तीसवें अध्याय में इसका निरूपण है। इन तालों का जन्म भी ऋग्वेद से हुआ है। जैसा कि वचन है–या ऋचः पाणिका (३२-२) इत्यादि।

यजुर्वेदात् अभिनयान्–भरतमुनि ने यजुर्वेद से अभिनयों का संकलन किया। यजुर्वेद में अध्वर्यु कर्म की प्रधानता होती है। 'अध्वानं सत्पथं राति इति अध्वरः।' जो सन्मार्ग की ओर ले जाता है, उसे 'अध्वर' कहते हैं। 'अध्वरम् इच्छति, याति यौति वा इति अध्वर्युः।' जो यज्ञ की कामना करता है अथवा यज्ञ में जाता है उसे 'अध्वर्यु' कहते हैं। यतः यजुर्वेद में अध्वर्यु के अङ्गभूत कर्म प्रधान होते हैं, जिनके अन्तर्गत प्रदक्षिणा, आना जाना आदि मुख्य होता है। यज्ञ-प्रक्रिया के अन्तर्गत विधिनिषेध-प्रधान कर्म ही आंगिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य इन चतुर्विध अभिनयों की प्रेरणा देते हैं।

'अभि' उपसर्गपूर्वक प्रापणार्थक 'नीञ्' धातु से निष्पन्न 'अभिनय' शब्द की परिभाषा इस प्रकार है–जिस अनुकरण के द्वारा सम्मुख उपस्थित विषयों का निर्णय सुकरता से किया जाता है, उसे **'अभिनय'** कहते हैं। **आंगिक अभिनय** तीन प्रकार का होता है–(१) दृष्टि का अभिनय, (२) मुख का अभिनय और (३) शिर, हाथ, कटि, वक्ष, पार्श्व और पाद संबंधी शारीरिक अभिनय। **वाचिक अभिनय** वाणी के स्वरों के उतार चढ़ाव पर आधारित होता है, इसका संकेत पाठ्य के विवेचन-संदर्भ में किया गया है। **सात्त्विक अभिनय** सात्त्विक भावों का अभिनय है। 'सत्त्व' का जन्म मन की प्रेरणा से होता है। स्तम्भ, स्वेद (पसीना), रोमांच, स्वरभंग, कम्प, विवर्णता और अश्रुवर्षा ये आठ सात्त्विक भाव हैं, इनका अभिनय मन की समाधिदशा से ही सम्भव है। **आहार्य अभिनय** का तात्पर्य नेपथ्य-विधि से है, जिसके अन्तर्गत नाट्योचित पात्रों की अनुकूल वेशभूषा समाविष्ट है। इसे आज 'मेकअप' कहते हैं। इसका विशद निरूपण नाट्यशास्त्र के तेईसवें अध्याय में है।

रसानाथर्वणादपि–भरतमुनि ने अथर्ववेद से रसों का संग्रह किया। अथर्ववेद शान्तिपुष्टि-मारण आदि कर्मप्रधान हैं। व्यभिचारी और स्थायी भावों की अभिव्यक्ति नट की चेष्टाओं (अनुभावो) द्वारा होती है। हम रसचर्वणा के समय नट का साक्षात्कार आलम्बन विभाव के रूप में करते हैं। अथर्ववेद के प्रयोग में ऋत्विग् लोहित उष्णीष आदि धारण करता है। मन की एकाग्रता से उसमें सात्त्विक भाव उदित होते हैं। ऋत्विक् द्वारा तदनुकूलन अनुभावों (चेष्टाओं) से उन उन भावों की अभिव्यक्ति होती है। अतः अथर्ववेद से **'नाट्यरस'** की सृष्टि मानी गयी है। भरत मुनि के मत में वे आठ हैं–शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्‌भुत। 'रस्यंते इति रसाः' इस निर्वचन के अनुसार विभावादि सामग्री की चर्वणा कराने के कारण ही उक्त आठ नाट्यरसों का 'रसत्व' सार्थक है। नाट्यवेद पञ्चम वेद है, क्योंकि वह 'सरस' है, अत एव यह प्राणवेद है।

वेदोपवेदैः सम्बद्धः नाट्यवेदः–ऋग्वेद और उसका उपवेद आयुर्वेद दोनों से नाट्यवेद सम्बद्ध है। ऋग्वेद से पाठ्य का ग्रहण किया गया है। स्वर-परिवर्तन पाठ्य की विशेषता है, जिसकी रक्षा आयुर्वेद से संभव है। सामवेद से गीति का संग्रह किया गया है, गान्धर्व वेद उसी गीति शास्त्र से सम्बद्ध है। यजुर्वेद से अभिनयों का संग्रह किया गया

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

है। इसका उपवेद धनुर्वेद है। इसके द्वारा युद्धकलादि प्रदर्शन वीररसोचित अभिनय में उपयोगी है। अथर्ववेद से रसों का संकलन किया गया है, जिसका उपवेद स्थापत्यवेद है। नाट्यशाला आदि का निर्माण स्थापत्यवेद से ही सम्भव है। इस प्रकार चारों वेदों के उपवेद भी नाट्यवेदोपयोगी हैं। अभिनवगुप्तपादाचार्य कहते हैं– 'वेदार्थानामुपकारकोऽर्थो वेद्यते येन स उपवेदात्मा'। इस दृष्टि से सभी उपवेद वैदिक अर्थों के परिपोषक हैं। ब्रह्मदेव की सर्ववेतृत्ता ही विलक्षण नाट्यवेद की सृष्टि रचना का कारण हुई।

इस प्रकार भरतमुनि को मुनियों द्वारा पूछे गये तीन प्रश्नों –(१) कथम् उत्पन्नः?, (२) कस्य वा कृते उत्पन्नः? और (३) 'कत्यङ्गः' इन तीन प्रश्नों का समुचित उत्तर दिया गया है–'एवं भगवता सृष्टः' का 'एवम्' अव्यय इसी का परिचायक है।।१७।।१८।।

पितामहेन पृष्टे सति देवेन्द्रेण नाट्यानुशीलने देवानामक्षमत्वज्ञापनम्–

उत्पाद्य नाट्यवेदं तु ब्रह्मोवाच सुरेश्वरम्।
इतिहासो मया सृष्टः[1] स सुरेषु नियुज्यताम्।।१९।।
कुशला ये विदग्धाश्च प्रगल्भाश्च जितश्रमाः।
तेष्वयं नाट्यसंज्ञो हि वेदः संक्राम्यतां त्वया।।२०।।
तच्छ्रुत्वा वचनं [2]शक्रो ब्रह्मणा यदुदाहृतम्।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रत्युवाच पितामहम्।।२१।।
ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयोगे चास्य सत्तम।
अशक्ता भगवन्! देवा अयोग्या नाट्यकर्मणि[3]।।२२।।

अन्वयः–ब्रह्मा नाट्यवेदं तु उत्पाद्य सुरेश्वरम् उवाच–'मया इतिहासः सृष्टः, सः सुरेषु नियुज्यताम्। ये कुशलाः विदग्धाश्च प्रगल्भाश्च जितश्रमाः, त्वया हि तेषु नाट्यसंज्ञः अयं वेदः संक्राम्यताम्।' शक्रः ब्रह्मणा यत् उदाहृतम्, तत् वचनं श्रुत्वा, प्राञ्जलिः प्रणतः भूत्वा पितामहं प्रोवाच–'सत्तम भगवन्! देवाः अस्य ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयोगे च अशक्ताः नाट्यकर्मणि अयोग्याः'।।१९-२२।।

अभिनव-भारती

एवं पितामहसदृशेन सर्वदा नाट्यवेदशरीररूपकनिर्माणे कविना भाव्यमिति प्रदर्श्य तत्र विभवयुक्तो विधेयनटजनश्च राजा प्रयोजयिता, भरतमुनिसदृशश्च सम्पन्नपरिवारः सर्ववित् प्रयोक्ता, प्रयोजकमहोत्सवप्रायः प्रयोगकालः, क्रीडाप्रस्तावव्याजोपदेशकाः विगतरागद्वेषा मध्यस्थवृत्तयः निर्मलहृदयमुकुरे सति तन्मयीभवनयोग्यतोपेता आहितरसास्वादाः सामाजिका इत्येतत् पुराकल्पमुखेन दर्शयत्यध्यापन (अध्यायान्त) ग्रन्थेन–उत्पाद्य नाट्यवेदं त्वित्यादिना। राजैव प्रयोजयितुं शक्त इति तु शब्दः। इतिहासो दशरूपकम्। कुशलाः ग्रहणधारणयोग्याः। विदग्धाः ऊहापोहसमर्थाः। प्रगल्भाः परिषद्यभीरवः। जितश्रमाः योग्याः समुचितदेहा अखिन्नकायाश्च। ग्रहण इति।

१. दृष्टः–पा.।
२. भगवान्–पा.।
३. न यांग्या नाट्यकर्मसु–पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

पूर्वं गुरुमुखाद् ग्रहणम्। तस्याऽविस्मरणं धारणम्। ज्ञानमूहापोहविचारः। प्रयोगः पर्षदि प्रकटीकरणम्। चकारेण च तदुपयोगिगुणनिका व्यायामाभ्यासादिः। देवाः सुखभूयिष्ठत्वात्। स्वाम्यादेशात् कथमपि यदि प्रवर्तेरन् तत्पूर्णपर्यवसानत्वं दुर्लभमेतैरित्यर्थः। ।।१९-२२।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ—ब्रह्मदेव ने नाट्यवेद की सृष्टि कर देवराज इन्द्र से कहा—'मैंने इतिहास की रचना की है। उस धरोहर को स्थापित करें। जो कुशल, परिपक्व, प्रगल्भ और परिश्रमी हों उन्हें नाट्यवेद की प्रायोगिक शिक्षा दें।' ब्रह्मदेव ने जो कहा उस वचन को सुनकर देवराज इन्द्र ने करबद्ध और नतमस्तक हो पितामह ब्रह्मदेव को प्रत्युत्तर दिया—'भगवन् ! देवगण इस नाट्यवेद के ग्रहण, धारण, समीक्षा और प्रयोग में असमर्थ हैं। अतः वे नाट्यकर्म के योग्य नहीं हैं।।१९-२२।।

व्याख्या—भरतमुनि ने इस प्रकार सर्वप्रथम यह प्रदर्शित किया कि पितामह ब्रह्मदेव के समान क्रान्तदर्शी कवि द्वारा भी सदा-सर्वदा उन रूपकों की सृष्टि करनी चाहिए, जिनका शरीर नाट्यवेद-प्रधान हो। अब उस ऐतिहासिक घटना की ओर संकेत किया गया है,जिसमें ऐश्वर्यसम्पन्न किसी राजा ने किसी ऐतिहासिक नाटक का प्रयोग कराया था और आज्ञाकारी नटों ने उसको सम्पादित किया था। भरतमुनि जैसे सर्वज्ञ नाट्याचार्य प्रयोगकर्ता थे, जिनका भरा-पूरा परिवार था। प्रयोग के समय का वातावरण महोत्सव जैसा था। उसके दर्शक भी वे सामाजिक थे, जो खेल-खेल के वहाने उपदेश ग्रहण करते थे। उनमें राग और द्वेष का अभाव था। उनकी चित्तवृत्ति मध्यस्थ की थी। वे अपने निर्मल हृदय-दर्पण में तन्मय होने की योग्यता रखते थे। अत एव वे साधारणीकरण व्यापार से तन्मय होकर ब्रह्मास्वाद-सहोदर रस का आस्वाद ले सकते थे। इस प्रकार ऐतिहासिक घटना का आश्रय लेकर अध्याय-समाप्ति तक विषयों का निरूपण है। 'तु'—इस अव्यय का प्रयोग यह सूचित करने के लिए है कि केवल राजा-महाराजा ही नाट्यवेद का प्रयोग करा सकते हैं।

इतिहासो मया सृष्टः—'अभिनवभारती' कार अभिनवगुप्त के मतानुसार यहां 'इतिहास' शब्द का अर्थ भूतकालिक घटना न होकर रूपक और उपरूपक के प्रकार हैं।

धर्माऽर्थकाम-मोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
इतिवृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ।।

इस परिभाषा के अनुसार मात्र रसहीन इतिवृत्त इतिहास नहीं होता, अपितु पुरुषार्थों का उपदेश जिसमें निहित हो, वह ऐतिहासिक सरस कृति 'इतिहास' के अन्तर्गत आती है। दश रूपकों में यह गुण होता है। ब्रह्मदेव ने उस इतिहास की रचना की थी।

कुशला ये विदग्धाश्च प्रगल्भाश्च जितश्रमाः

कुशलाः— नाट्यवेद को 'ग्रहण' और 'धारण' करने की योग्यता होनी चाहिए। **विदग्धाः**—उसका उहापोह करने में वे समर्थ हों। **प्रगल्भाः**—मञ्च पर, सभा में निर्भीक होना होने चाहिए। **जितश्रमाः**—उनमें परिश्रम पर विजय प्राप्त करने की योग्यता

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

होनी चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब उनकी शरीरयष्टि उसके अनुरूप हो और वे थकते न हो'।

ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयोगे च—नाट्यवेद के सन्दर्भ में **'ग्रहण'** का अर्थ है प्रथम उसे गुरुमुख से ग्रहण करना। धारण का तात्पर्य है उसको स्मरण रखना, न भूलना। 'ज्ञान' का भाव है ऊहापोहपूर्वक विचार और प्रयोग का अर्थ है रंगशाला में सामाजिकों के सम्मुख अभिनय द्वारा उसका प्रदर्शन। समुच्चयवाचक 'च'कार उसके उपयुक्त व्यायाम-अभ्यास आदि का भी संकलन करता है। देवता नाट्यवेद के ग्रहणादि में असमर्थ थे, क्योंकि वे सुखवस्तु थे। यदि राजाज्ञा से उसमें प्रवृत्त भी होते, तो अन्त तक उसका निर्वाह उनके लिए कठिन था।।१९-२२।।

ऋषीणां नाट्यधारणयोग्यता

य इमे वेदगुह्यज्ञा ऋषयः[१] संशि[२]तव्रताः ।
एतेऽस्य ग्रहणे शक्ताः प्रयोगे धारणे तथा ।।२३।।

अन्वयः–वेदगुह्यज्ञाः ये इमे ऋषयः संशितव्रताः, एते अस्य ग्रहणे प्रयोगे तथा धारणे शक्ताः।।२३।।

अभिनव-भारती

तर्हि किं क्रियतामित्याह–**य इम इति**। **वेदज्ञा इति** ग्रहणधारणसामर्थ्यम्। गुह्यज्ञत्वेनाऽध्यात्मोपनिषदर्थवेदनधारणकौशलेन रसाद्युपयोगिसात्त्विकसम्पादितसामर्थ्यम्। यद्वक्ष्यति–**'सत्त्वं मनःप्रयत्ननिर्वर्त्यम्'** इत्यादि। तेन–

न्यस्येत् प्राणं भ्रुवोर्मध्ये स्तम्भो वाष्पश्च चाक्षुषः ।
स्वेदो हृदि गुदे कम्पः पुलको मूर्ध्नि वक्त्रतः ।।
वैवर्ण्यं स्वरितं कण्ठे प्रलयो नासिकान्तरे ।।

इत्यादियोग्यत्वं तेषाम्। अत एवाऽनुषङ्गतो नटस्याऽपि परमपुरुषार्थलाभो धारणादिवशात्। **ऋषय इति**। दर्शा(र्शना)द् ऋषिरिति। ऊहापोहयोग्याः। **संशितव्रता इति**। अभ्यासे शक्ताः। **तथेति**। ग्रहणादीनामार्थक्रमः प्रदर्शनीय इत्यर्थः। **इम इति** प्रत्यक्षेणैव दृष्टमेषां तदिति दर्शयति।।२३।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः– **जो ये वेद के रहस्यज्ञाता व्रतनिष्ठ क्रान्तदर्शी ऋषि हैं, वे ही इस नाट्यवेद के ग्रहण (गुरुमुख से अध्ययन), उसके प्रयोग (प्रदर्शन) और धारण (अविस्मरण) में समर्थ हैं।।२३।।**

व्याख्याः– वेदगुह्यज्ञाः–मन्त्रद्रष्टा ऋषि वेदों का साक्षात्कार करते हैं, अत एव वे नाट्यवेद के ग्रहण और धारण में समर्थ होते हैं। यतः वे उसके गुह्य-उपनिषदों में प्रतिपादित गूढ़ार्थ के मर्मज्ञ होते हैं, अत एव वे रसादि के उपयुक्त सात्त्विक भावों का अभिनय कर सकते हैं।

सात्त्विक भावों का अभिनय मानसिक प्रयत्न से ही सम्भव है–**सत्त्वं मनःप्रयत्ननिर्वर्त्यम्**। जब नट दोनों भौवों के बीच में प्राणों को ले जाता है, तब उसे स्तम्भ होता है, शरीर निश्चल होता है और नेत्रों से अश्रुपात होता है। हृदय में प्राणवायु का

१.मुनयः–पा.।
२. संश्रित–पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

संक्रमण करने पर स्वेद (पसीना) आता है। गुदा में प्राण (अपान) वायु को रोकने पर कम्प होता है। मस्तक तक प्राणवायु ले जाने पर पुलक (रोमाञ्च) होता है। मुख तक उसे ले जाने पर वह विवर्ण होता है, उसका रंग उड़ने लगता है। कण्ठ में प्राणवायु ले जाने पर स्वरभंग होता है। और नासिका के बीच में प्राणवायु ले जाने पर वे प्रलय (मृत्यु) का सात्त्विक अनुभव कर सकते हैं। यह सब तभी सम्भव है, जब नट को उपनिषदों का गूढ़ार्थ ज्ञात हो। यह विवेचन न्यसेत् प्राणं भ्रुवोर्मध्ये से लेकर प्रलये नासिकान्तरे की डेढ़ कारिकाओं किया गया है। वेदमंत्रों का साक्षात्कार करने से उनका 'ऋषि' पद सार्थक है। व्रतनिष्ठ होने के कारण ही ऋषिगण नाट्यवेद का अभ्यास कर सकते हैं। वे देवराज इन्द्र के साथ थे, अत एव वे पितामह को 'इमे' इस सर्वनाम से उनकी ओर संकेतित करते हुए कहते हैं कि 'ये ऋषिगण ही नाट्यवेद के पात्र हैं, देवता नहीं।'॥२३॥

ब्रह्मणः आज्ञया भरतमुनेः पुत्रशताध्यापनम्–

श्रुत्वा तु शक्रवचनं मामाहाऽम्बुजसम्भवः ।
त्वं पुत्रशतसंयुक्तः प्रयोक्ताऽस्य भवाऽनघ ॥२४॥
आज्ञापितो विदित्वाऽहं नाट्यवेदं पितामहात् ।
पुत्रानध्यापयामास[1] प्रयोगं चाऽपि[2] तत्त्वतः ॥२५॥

अन्वयः–अम्बुजसम्भवः शक्रवचनं तु श्रुत्वा माम् आह–'अनघ! त्वं पुत्रशतसंयुक्तः (सन्) अस्य प्रयोक्ता भव।' (एवं) आज्ञापितः अहं पितामहात् नाट्यवेदं विदित्वा पुत्रान् (तं) त्तत्वतः प्रयोगं चाऽपि अध्यापयामास्॥२४॥२५॥

अभिनव-भारती

श्रुत्वा त्विति। मां त्विति तु शब्देन ऋषिभ्योऽप्यन्येभ्योऽस्य विशेषमाह। ब्रह्मैव मामाहेत्यादरातिशयः। पुत्रशतयोगाद्य(द) न्योन्यप्रवर्तितबहुतरपरिवारयोगः। अनघेत्यध्येषणया सोत्साहपरिषदा कृतसम्मानस्य सम्यक् प्रयोगनिष्पत्तिरिति सूचितम्। आज्ञापित इत्यतुल्लङ्घनीयवचनताऽस्योक्ता। पितामहादित्यनाचार्योषितत्वाशङ्कां व्युदस्यति। प्रयुज्यत इति प्रयोगो दशरूपकम्। प्रयुज्यते निर्वर्त्यतेऽनेनेति प्रयोगः। नाट्यलक्षणशास्त्रम् । तदहं पुत्रान् पाठयाञ्चकार। प्रयुक्तिश्च प्रयोगः। तमध्यवसायपर्यन्तमहं पुत्रानध्यापयामास। तथाऽहं चकार यथा प्रयुक्तिं ते पुत्राः सम्यक् प्राप्तवन्त इत्यर्थः। चापिशब्दाभ्यां सूचिते द्वे द्वे आवृत्ती। मुनिसमुचितकर्तव्यान्तरव्यासङ्गोऽपि लिटा सूचितः। तत्त्वत इति नाट्याचार्यस्य सम्यगाप्तत्वं गम्यते॥२४॥२५॥

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः– भरतमुनि कहते हैं– 'कमल योनि ब्रह्मदेव में देवराज इन्द्र की बात सुनकर मुझसे कहा– 'निष्पाप भरत! तुम अपने सौ पुत्रों (शिष्यों) के साथ इस नाट्यवेद के प्रयोगकर्ता बन जाओ।' इस प्रकार उनसे आज्ञा प्राप्त कर और उनसे ही उस नाट्यवेद का ज्ञान अर्पित कर अपने पुत्र अथवा पुत्रकल्प शिष्यों को उसके सैद्धान्तिक पक्ष की शिक्षा-दीक्षा देते हुए उसके प्रायोगिक पक्ष का भी सोदाहरण साक्षात्कार कराया।॥२५॥२६॥

व्याख्या–'मां तु' इस प्रयोग में 'तु' अव्यय का प्रयोग इसका सूचक है कि ब्रह्मदेव

१. पुत्रानध्यापयं योग्यान्–पा.।
२. चास्य–पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

ने विशेष रूप से भरतमुनि को उपयुक्त समझा। यह उनके लिए अत्यन्त आदर को प्रकट कर रहा है। पुत्रशत के अन्तर्गत शत संख्या भरतमुनि के शिष्य-परिवार की वृद्धि सूचित कर रही है। आज्ञापितः प्रयोग यह सूचित कर रहा है कि इसका उल्लघंन संभव नहीं है। पितामह शब्द यह संकेतित कर रहा है कि, भरतमुनि सर्वज्ञ ब्रह्मदेव के शिष्य थे। आचार्य की यांग्यता जिसमें नहीं थी, उसकी शरण उन्होंने नहीं ली। प्रयुज्यते इति प्रयोगः। जिनका प्रयोग सतत होता आ रहा है, उन्हें प्रयोग कहते हैं। प्रयोग का अर्थ है नाट्यशास्त्र के लक्षणों का निरूपण, जिसमें दशरूपक समाविष्ट हैं। 'प्रयुज्यते इति प्रयोगः' इस निर्वचन के अनुसार दशरूपकों का मञ्चन भी 'प्रयोग' कहलाता है। 'च' और 'अपि' ये दो अव्यय दशरूपकों के अध्यापन की दो वार आवृत्ति के सूचक हैं-(१) सैद्धान्तिक पक्ष और (२) प्रायोगिक पक्ष। जव तक उन शिष्यों में अध्यवसाय (उत्साह) था, तव तक भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र का अध्यापन किया। भूतकालिक लिट् लकार यह सूचित कर रहा है कि भरतमुनि को नाट्यशास्त्राध्यापन के अतिरिक्त अन्य कर्तव्यों का भी निर्वाह करना था। 'तत्त्वतः' यह प्रयोग नाट्याचार्य का यथार्थ-प्रवक्तृस्व सूचित कर रहा है।।२४।।२५।।

पुत्रशतनामानि—

शाण्डिल्यं चैव[1] वात्स्यं च कोहलं[2] दत्तिलं तथा।
जटिला[3]म्बष्टकौ चैव तण्डु[4]मग्निशिखं तथा।।२६।।
सैन्धवं सपुलोमानं शाड्वलिं विपुलं तथा।
कपिञ्जलिं बादिरं[5] च यमधूम्रायणौ तथा।।२७।।
जम्बुध्वजं काकजङ्घं स्वर्णकं तापसं तथा।
कैदारिं[6] शालिकर्णं च दीर्घगात्रं च शालिकम्।।२८।।
कौत्सं ताण्डायनिं चैव पिङ्गलं चित्रकं[7] तथा।
बन्धुलं भल्लकं चैव मुष्ठिकं[8] सैन्धवायनम्।।२९।।
तैतिलं भार्गवं चैव शुचिं बहुलमेव च।
अबुधं बुधसेनं च पाण्डुकर्णं सुकेरलम्[9]।।३०।।
ऋजुकं मण्डकं चैव शम्बरं वञ्जुलं तथा।
मागधं सरलं चैव कर्तारं चोग्रमेव च।।३१।।
तुषारं पार्षदं चैव गौतमं बादरायणम्[10]।
विशालं शबलं चैव सुनाभं[11] मेषमेव च।।३२।।

---

१. चापि।
२. केहावं दन्तितं।
३. जटुलं।
४. ताण्डुं।
५. वादरिं।
६. केदारिं।
७. छत्रकं।
८. मुष्टीकं।
९. सकेरलम्।
१०. बादरायणिम्।
११. सुनालीं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

कालियं भ्रमरं चैव तथा पीठमुखं मुनिम् ।
नखकुट्टा[1]श्मकुट्टौ च षट्पदं सोत्तमं तथा ।।३३।।
पादुकोपानहौ चैव श्रुतिं[2] चाषस्वरं[3] तथा ।
अग्निकुण्डाज्यकुण्डौ च वितण्ड्यं[4] ताण्ड्यमेव च ।।३४।।
कर्तराक्षं हिरण्याक्षं कुशलं दुस्सहं तथा ।
लाजं भयानकं चैव वीभत्सं सविचक्षणम् ।।३५।।
पुण्ड्राक्षं[5] पुण्ड्र[6]नासं चा[7]प्यसितं सितमेव च ।
विद्युज्जिह्वं महाजिह्वं शालङ्कायनमेव च ।।३६।।
श्यामायनं[8] माठरं च लोहिताङ्गं तथैव च ।
संवर्तकं पञ्चशिखं त्रिशिखं शिखमेव च ।।३७।।
शङ्खवर्णमुखं षण्डं शङ्कुकर्णमथापि च ।
शक्रनेमिं गभस्तिं चाप्यंशुमालिं शठं तथा ।।३८।।
विद्युतं शातजङ्घं च रौद्रं वीरमथाऽपि च ।
पितामहाज्ञयाऽस्माभिर्लोकस्य च गुणेप्सया ।।३९।।
प्रयोजितं पुत्रशतं यथाभूमिविभागशः ।
यो यस्मिन् कर्मणि यथा[9] योग्यस्तस्मिन् स योजितः ।।४०।।

अन्वयः–अस्माभिः पितामहाज्ञया लोकस्य च गुणेप्सया शाण्डिल्यम् आरभ्य वीरं यावत् पुत्रशतं यथाभूमिविभागशः प्रयोजितम् , यः यस्मिन् कर्मणि योग्यः, सः तस्मिन् योजितः।।२६-४०।।

अभिनव-भारती

पुत्रान् नामभिर्दर्शयति–शाण्डिल्यमित्यादिना। अत्र प्रसिद्धत्वं नटानामादरकारणमिति तावन्मुख्यं नामग्रहणे प्रयोजनम्। आनुषङ्गिकं त्वन्यदपि। तद् यथा-विदूषकतापसादिनाम्नां तलाकमीनां (तथाकर्मिणां) निर्वचनलब्धार्थयुक्त्या भूमिकाविशेषोपयोग इति। अन्यस्त्वाह–शतमेवेह पठितम्। कञ्चना (तच्चा) भिनेयानां स्थाय्युत्पादनरसनवकतद्गतव्यभिचारित्रयस्त्रिंशत्सात्त्विकाष्टकानुरूपाणां पञ्चाशतोऽर्थानां न्याय्यान्याय्यभेदेन नायकप्रतिनायकविषयतया प्राधान्याभिप्रायेणेति। तत्र तु कैशिक्यपि प्रयुक्ता स्यात् इत्युत्तरग्रन्थावकाशाभाव इत्यलमाभिरसहृदयाभिनिवेशव्याख्याभिः। यस्मिन्निति। उत्तमप्रकृतिविचेष्टितादौ। यथेति। कश्चित् तदीयहृदयहर्षप्रदर्शनप्रकारेण योग्योऽन्यस्तदीयशोकप्रकटीकरणेनेति।।२६-४०।।

---

१. तरुकुट्टात्मकुट्टौ।
२. श्रुतिकं।
३. षट्स्वरं।
४. विताण्ड्यं।
५. पुण्ड्राक्षं।
६. पूर्णनासं।
७. च असितं।
८. त्यामायनं।
९. तथा।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ—हम ने पितामह ब्रह्मदेव की आज्ञा और लोक (जनता) की गुणानुरागिता से, जो जिस भूमिका के उपयुक्त था, तदनुरूप विभाजन करते हुए अपने सौ पुत्रों को सैद्धान्तिक और प्रायोगिक दृष्टि से प्रशिक्षित किया और उन्हें उसके लिए अधिकृत किया। जो जिस काम के उपयुक्त था, उसे उस काम पर नियुक्त किया। उन सौ पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) शाण्डिल्य,(२) वात्स्य, (३) कोहल (केहाल), (४) दनिल (दन्तिन), (५) जटिल (जटुल), (६) अम्बष्टक, (७) तण्डु (ताण्डु), (८) अग्निशिख, (९) सैन्धव, (१०) सपुलोमा, (११) शाड्वलि, (१२) विपुल, (१३) कपिञ्जलि, (१४) वादिर (वादरि), (१५) यम, (१६) धूम्रायण, (१७) जम्बुध्वज, (१८) काकजंघ, (१९) स्वर्णक, (२०) तापस, (२१) कैदारि (केदार या केदारि), (२२) शालिकर्ण, (२३) दीर्घगात्र, (२४) शालिक, (२५) कौत्स, (२६) ताण्डायनि, (२७) पिङ्गल, (२८) चित्रक, (२९) वन्धुल, (३०) भल्लक, (३१) मुष्टीक या मुष्टिक, (३२) सैन्धवायन, (३३) तैतिल, (३४) भार्गव, (३५) शुचि, (३६) वहुल, (३७) अबुध, (३८) बुधसेन, (३९) पाण्डुकर्ण, (४०) सुकेरल, (४१) ऋजुक, (४२) मण्डक, (४३) शम्बर, (४४) वञ्जुल, (४५) मागध, (४६) सरल, (४७) कर्ता, (४८) उग्र, (४९) तुषार, (५०) पार्षद, (५१) गौतम, (५२) वादरायण, (५३) विशाल, (५४) शवल, (५५) सुनाभ, (५६) मेष, (५७) कालिय, (५८) भ्रमर, (५९) पीठमुख,(६०) मुनि, (६१) नखकुट्ट, (६२) अश्मकुट्ट, (६३) षट्पद, (६४) उत्तम, (६५) पादुक, (६६) उपानह, (६७) श्रुति, (६८) चाषस्वर, (६९) अग्निकुण्ड, (७०) आज्यकुण्ड, (७१) वितण्ड्य, (७२) ताण्ड्य, (७३) कर्तराक्ष, (७४) हिरण्याक्ष, (७५) कुशल, (७६) दुस्सह, (७७) लाज, (७८) भयानक, (७९) वीभत्स, (८०) विचक्षण, (८१) पुण्ड्राक्ष, (८२) पुण्ड्रनास, (८३) असित, (८४) सित, (८५) विद्युज्जिह्व, (८६) महाजिह्व ,(८७) शालकायन, (८८) श्यामायन, (८९) माठर, (९०) लोहिताङ्ग, (९१) संवर्तक, (९२) पंचशिख, (९३) त्रिशिख, (९४) शिख, (९५) शङ्खवर्णमुख, (९६) षण्ड, (९७) शंकुकर्ण, (९८) शक्रनेमि, (९९) गभस्ति, (१००) अंशुमाली, (१०१) शठ, (१०२) विद्युत्, (१०३) शातजंघ, (१०४) रौद्र और (१०५) वीर।।२६-४०।।

व्याख्या—यह संख्या सौ को पार कर गयी है, अतः 'पुत्रशत' का अर्थ सैकड़ों पुत्र या पुत्रकल्प शिष्य यह करना चाहिए। इन नामों के उल्लेख का मुख्य प्रयोजन उन नटों की ख्याति है, जो उनका सादर स्मरण करा रही है। इनसे सम्वद्ध प्रयोजन इसमे भिन्न भी है। जैसे विदूषक, तापस आदि नाम से प्रसिद्ध पात्रों का नाम-निर्वचनानुसार विभिन्न भूमिकाओं में रंगमंच पर उतरना। अन्य के मतानुसार भरतमुनि के शिष्य अगणित हैं, जिनमें यहां केवल सौ की ही गणना की गयी है। नौ रसों के नौ स्थायी भाव, तैंतीस व्यभिचारी भाव और आठ सात्त्विक भाव होते हैं। सम्मिलित रूप से भाव पचास हैं और इनमें कुछ भाव न्यायोचित हैं जिनका अभिनय नायक करते हैं और अन्य भावों का अभिनय प्रतिनायक करते हैं। उनकी प्रधानता को ध्यान में रखकर ही भरतमुनि के केवल सौ शिष्यों का नामोल्लेख है। किन्तु यह व्याख्यादृष्टि समीचीन नहीं है। क्योंकि आगे चलकर कैशिक्यपि प्रवृत्ता स्यात् इस प्रकार आगे जो विवेचन है, वह निरर्थक होगा। अतः हृदयहीन लोगों द्वारा किया गया इस प्रकार का व्याख्यान उपेक्षणीय है। यो यस्मिन् कर्मणि—कुछ उत्तम प्रकृति के, कुछ मध्यम

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

प्रकृति के और कुछ अधम प्रकृति के पात्र होते हैं। उनकी चेष्टाओं-हावभावों के अनुरूप ही पात्रचयन करना चाहिए। कुछ लोग अपनी चेष्टाओं से हर्ष का और कतिपय लोग दुःख का प्रदर्शन करते हैं। उनकी चेष्टाओं को देखकर तदनुकूल पात्र-चयन का संकेत इन कारिकाओं में है।।२६-४०।।

नाट्यप्रयोगाय वृत्तित्रयीसमाश्रयः–

भारतीं सात्वतीं चैव वृत्तिमारभटीं तथा।
समाश्रितः प्रयोगस्तु प्रयुक्तो वै मया[1] द्विजाः ।।४१।।

अन्वयः–द्विजाः! मया भारतीं सात्वतीं चैव तथा आरभटीं समाश्रितः प्रयोगः तु वै प्रयुक्तः।।४१।।

अभिनव-भारती

अथ सकलप्रयोगप्राणभूतकैशिक्युपयुज्यमानोपकरणान्तरसंहरणायोपक्रमं दर्शयति भारतीमित्यादि। वृत्तिमिति। धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टये साध्ये वागङ्गसत्त्व-चेष्टासामान्यम्। तच्च संक्षिप्तेनाऽवान्तरभेदेन चतुर्धा। यद्यत्किल कर्माऽऽरभ्यते तत्र वाङ्मनःकायव्यापारस्तावदस्ति। तत्र कस्यचिल्लालित्यवैचित्र्यक्रम-स्याऽनुप्रवेशः। यत उत्तमप्रकृतीनां सौष्ठवमय एव सर्वो व्यापारः। तदेव तद्वृत्तिचतुष्टयम्। भारती वाग्वृत्तिः। मनोव्यापाररूपा सात्त्विकी सात्त्वती। सदिति प्रख्यारूपं संवेदनम्। तद्यत्रास्ति तत्सत्त्वं मनः। तस्येयमिति। 'इयर्ति इत्यरा' भटाः सोत्साहा अनलसाः। तेषामियमारभटी कायवृत्तिः।

केशाः किञ्चिदप्यर्थक्रियाजातमकुर्वन्तो देहशोभोपयोगिनः। तद्वत्सौन्दर्योपयोगी व्यापारः कैशिकी वृत्तिरिति तावन्मुख्यः क्रमः। अन्यस्य तु यस्तद्व्यपदेशः स तत्प्रधानत्वादनेकरसप्रधानं पानकरीत्या कैशिकीत्यादि मधुरव्यपदेशवत्। एतच्च प्राग्रे वितनिष्यामः। एवं यत्किञ्चिल्लालित्यं तत्सवं कैशिकीविजृम्भितम्। सा च तैः प्रयोक्तुमशक्येति तुशब्देनोक्तम्। तेन दशरूपं सर्वं वैचित्र्यशून्यं तान्प्रति योजितम्। अत एव तादृशे प्रयोगेऽवज्ञां वै शब्देन द्योतयति। प्रयुक्त इति। तेषामभ्यासभूमौ योजित इत्यर्थः।।४१।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–ब्राह्मणों! मैंने (भरतमुनि ने) भारती, सात्वती और आरभटी वृत्ति पर आधारित नाटकों का प्रयोग किया।।४१।।

व्याख्या–कैशिकी वृत्ति सम्पूर्ण नाट्य-प्रयोगों का प्राण है। उसके उपयुक्त अन्य उपकरण हैं, जिनमें भारती आदि वृत्तियों का भी समावेश है। इनमें वृत्ति का अर्थ वे सामान्य चेष्टाएं हैं, जो साध्यस्वरूप धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की साधनस्वरूपा हैं। वे चेष्टाएं वाचिक, आंगिक सत्वप्रधान होती हैं। वे चार हैं– भारती, सात्वती, आरभटी और कैशिकी। हमारा जो भी काम होना है, उसमें वाणी-मन और शरीर का व्यापार, उसकी चेष्टाएं अवश्य होती हैं। उसमें कहीं लालित्य और वैचित्र्य का क्रम दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि उत्तम प्रकृति के पात्रों की सभी चेष्टाएं सौष्ठवपूर्ण होती हैं। वे ही चार वृत्तियों का आकार लेती हैं। इनमें भारती वृत्ति वाणी से सम्बद्ध है। सात्वती वृत्ति मानसिक चेष्टाओं पर आश्रित है, जो

१. महा।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

सात्विकी–सत्त्व से सम्बन्धित है। सत्त्व मन को कहते हैं, क्योंकि उसमें सत्= संवेदन होता है, उस संवेदन का नामातर 'प्रख्या' भी है। सत्वस्य इयं सात्वती। सत्त्व (मनोव्यापार) से सम्बद्ध होने से इस वृत्ति को सात्वती कहते हैं। आरभटी वृत्ति शारीरिक चेष्टा को कहते हैं। इसका निर्वचन इस प्रकार है–इयर्ति इति अराभटाः, अराणां भटानाम् इयम् आरभटी। जो उत्साहशील और आलस्यमुक्त होते हैं, वे अरभट कहलाते हैं। उनकी वृत्ति 'आरभटी' होती है। वे ही शारीरिक क्रिया-कलाप कर सकते हैं, जो उत्साहशील और आलस्यमुक्त हों।

कैशिकी वृत्ति–शरीर पर रहने वाले केश कुछ भी कार्य नहीं करते हैं। वे केवल शरीर की शोभा वृद्धि करते हैं। उसी प्रकार सौन्दर्य के लिए उपादेय सभी चेष्टाएँ कैशिकी वृत्ति में समाविष्ट हैं, यह मुख्य क्रम है। साथ ही अन्य जो व्यवहार होता है, उसे कैशिकी इसलिए कहते हैं कि जिस प्रकार सरवत इत्यादि में मधुर (मीठा) इत्यादि व्यवहार किया जाता है, उसी प्रकार रसों की प्रधानता से सौन्दर्य को देखकर वहां भी कैशिकी नाम दिया जाता है। यह समस्त विवेचन अग्रिम पद्यों में द्रष्टव्य है। इस प्रकार जो कुछ लालित्यपूर्ण है, वह सम्पूर्ण कैशिकी वृत्ति का ही विलास है। इस पद्य में 'तु' और 'वै' दो अव्यय हैं। कैशिकी वृत्ति का प्रदर्शन ऋषिगण नहीं कर सकते, इसे 'तु' अव्यय सूचित कर रहा है। 'वै' अव्यव का प्रयोग कैशिकी वृत्ति की अवज्ञा का द्योतक है। अतः इस पद्य में ऋषियों द्वारा केवल तीन वृत्तियों के प्रयोग को ही संकेतित किया गया है। 'प्रयुक्तः' का तात्पर्य यह है कि भरतमुनि ने अपने सैकड़ों पुत्रों या पुत्र-कल्प शिष्यों को उन वृत्तियों के अभ्यास (रिहर्सल) में लगाया।।४१।।

परिगृह्य प्रणम्याऽथ ब्रह्मा विज्ञापितो मया।
अथाऽऽह मां सुरगुरुः कैशिकीमपि योजय।।४२।।
यच्च तस्याः[1] क्षमं द्रव्यं तद् ब्रूहि द्विजसत्तम।
एवं तेनाऽस्म्य[2]भिहितः प्रयुक्तश्च मया प्रभुः।।४३।।

अन्वयः–मया परिगृह्य अथ प्रणम्य ब्रह्मा विज्ञापितः। अथ सुरगुरुः मां प्राह–'द्विजसत्तम! कैशिकीम् अपि योजय। यत् च तस्याः क्षमं द्रव्यम्, तत् ब्रूहि। एवं तेन अभिहितः अस्मि, मया च प्रभुः प्रत्युक्तः।।४२।।४३।।

अभिनव-भारती

क्षममिति। प्रयोगसमर्थं सादरविचित्रं प्रयुङ्क्ते। अत एवाऽऽह–द्रव्यम्। सुन्दरम्। यतः सौन्दर्यप्राणैव सा। एवमिति। बुद्धिकौशलं मदीयं ज्ञातुं तेनाऽहमेतत्पृष्टः। चकारेण प्रत्युत्पन्नमतिभानत्वं दर्शयति। अनेन झटिति कविहृदयग्रहणयोग्यत्वं नाट्याचार्यगुण इति सूचयति।।४२-४३।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः (इस प्रकार भारती, सात्वती और आरभटी वृत्ति का अभ्यास कराने के अनन्तर) मैनें परिग्रह और प्रणामपूर्वक ब्रह्मदेव को इसकी सूचना दी। अनन्तर देवगुरु वृहस्पति ने मुझसे कहा–'ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम कैशिकी वृत्ति को भी मञ्चस्थ करो और इसके लिए जिस द्रव्य की, सामग्री की आवश्यकता हो मुझसे कहो।' मैनें प्रभु से पुनश्च यह

१. तस्याक्षमं।
२. तेनाभ्यभिहितः।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

कहा।।४२।।४३।।

व्याख्या–अभिनवगुप्तपादाचार्य ने तिरालीसवें पद्य में चार शब्दों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है–यहां द्रव्य शब्द मात्र अचेतन सामग्री का नहीं, अपितु लालित्यपूर्ण सचेतन पात्र का संकेत कर रहा है। क्योंकि कैशिकी वृत्ति का प्राण ही सौन्दर्य (लालित्य) होता है। साथ ही वह क्षम, प्रयोग-समर्थ भी होना चाहिए, केवल सुन्दर नहीं। एवं का प्रयोग भरतमुनि का बुद्धिकौशल जानने के लिए है। और 'च'कार का प्रयोग अविलम्ब उत्तरक्षमता का द्योतक है। नाट्याचार्य में कविहृदय होना चाहिए, जो तत्काल उत्तर देने में समर्थ हो।।४२।।४३।।

दीयतां भगवन्! द्रव्यं कैशिक्याः सम्प्रयोजकम् ।
नृत्ता[१]ङ्गहारसम्पन्ना रसभावक्रियात्मिका ।।४४।।
दृष्टा मया भगवतो नीलकण्ठस्य नृत्यतः।
कैशिकी श्लक्ष्णनैपथ्या शृंगाररससम्भवा ।।४५।।
अशक्या पुरुषैः सा [२]तु प्रयोक्तुं स्त्रीजनाद् ऋते ।
ततोऽसृजन्महातेजा मनसाऽप्सरसो विभुः ।।४६।।

अन्वयः–"भगवन्! (भवता) कैशिक्याः सम्प्रयोजकं द्रव्यं दीयताम्। मया नृत्यतः भगवतः नीलकण्ठस्य नृत्ताङ्गहारसम्पन्ना रसभावक्रियात्मिका श्लक्ष्णनेपथ्या शृङ्गाररससम्भवा कैशिकी दृष्टा, सा तु स्त्रीजनात् ऋते पुरुषैः प्रयोक्तुम् अशक्या।" ततः महातेजाः विभुः मनसा अप्सरसः असृजत्।।४४-४६।।

अभिनवभारती

न चाऽत्यन्तापरिदृष्टे वस्तुनि उपकरणमुन्नेतुं शक्यम् । ब्रह्मणा तूपदेशसमये वचनमात्रेणोक्तमेतन्मध्ये हृदयहारि वैचित्र्यं योजनीयमिति। अनेनाऽभिप्रायेण कैशिकीसाक्षात्करणं वर्णयति नृत्ताङ्गहारेत्यादिना युगलकेन। नर्तनं नृत्तम्। गात्राणामङ्गोपाङ्गानां विलासेन क्षेपः। न तु केनचित् कर्तव्यांशेन। लोकोऽप्येवंविधे विषये एवमेवाह– 'नृत्यतीव गच्छति' इत्यादि। तत्र येऽङ्गहारा अङ्गानां हरणानीति अत्रुटितरूपतया समुचितस्थानप्राप्तिः। तैः सम्पन्ना। शङ्करस्यैव भगवतः परिपूर्णानन्दनिर्भरीभूतदेहोच्चलदान्तरनिर्वार-सुन्दराकारस्य अत एव नृत्यतः इतिकर्तव्यान्तरवैकल्यादानन्दनृत्तमात्रस्थितस्य। प्रयोज्यत्वेन मया दृष्टा।

ननु सा नाट्योपयोगिनी कथम्? आह। सैव यदि श्लक्ष्णेन श्लिष्यतोचितेन नेपथ्येन सहिता भवति। यद् वक्ष्यति–"शृङ्गार उज्ज्वलवेषात्मक" (ना.शा.६-५०) इति तन्नाट्योक्तशृङ्गाररसः सम्भवति, नान्यथा। लेपथ्यग्रहणं सुकुमार-स्याऽऽङ्गिकादेरप्युपलक्षणम्। तेन शृङ्गाराभिव्यक्तिहेतौ सुकुमारे चतुर्विधे-ऽप्यभिनये योजिते मधुरमन्थरवलनावर्तनाभ्रूक्षेपकटाक्षादिना विना शृङ्गार-रसास्वादस्य नामाऽपि न भवति।

किमत्रैव सोपयोगेत्याह–रसभावक्रियात्मिकेति। रसानां भावो भावना कविनटसामाजिकहृदयव्याप्तिः। तस्या या क्रिया इतिकर्तव्यता सैवाऽऽत्मा

१. मृद्वङ्गहारसंयुक्ता।
२.साधु।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

स्वभावो यस्याः। एतदुक्तं भवति–रौद्रादिरसाभिव्यक्तावपि कर्त्तव्यायां योऽभिनय उपादीयते सोऽप्यनुप्रासवलनावर्तनाद्यात्मकसुन्दरवैचित्र्यस्याऽमिश्रणया दुःश्लिष्टोऽश्लिष्ट एव वा न रसाभिव्यक्तिहेतुर्भवतीति सर्वत्रैव कैशिकी प्राणाः। यद् वक्ष्यति–

अस्य शाखा च नृत्तं च वस्तून्यभिनयस्य च (ना.शा. ८-१५) इति शृङ्गाररसस्य तु नामग्रहणमपि न तथा विना शक्यम्। **स्त्रीजनादृत** इति। अयं भावः–यावन्निजहृदयरसविलसद्विकस्वरनिर्वारचमत्कारपवित्रता न जाता भगवत इव, तावच्छिक्षाशतैरपि वैचित्र्यमनाहार्यम्।मुनीनां च निसर्गविषयविमुखचित्तवृत्तीनां को निर्वृतिचमत्कारः? योऽपि वा ससमाधिजः, सोऽपि देहपर्यन्ततां न भजति। प्रत्युत ततः पलायमानाः (नः)। अतः स्त्रीणां तादृगस्ति वैचित्र्यम्। तत्सम्पर्कसम्भवदार्द्रभावास्तु कदाचिच्छक्नुयुरपि।

ये त्वाहुः–'न भगवतः कैशिकीप्रयोगसामर्थ्यम्। तेन **दृष्टोमयेति** पाठे उमया सह भगवतो नृत्यतो भगवन्तमप्यनादृत्य भगवत्या प्रयुज्यमाना मया दृष्टा' इति–त उक्तनीत्या पराकृताः। तथा–

विचित्रैरङ्गहारैस्तु देवो लीलासमन्वितैः ।
बवन्ध यः शिखापाशं कैशिकी तत्र निर्मिता ।।
(ना.शा.२०-१३)

इति भगवतो विष्णोः कैशिकीनिर्माणमनुचितं स्यादित्यलं वहुना। **जन**शब्देन रागिताशङ्कां परिहरति। **ततोऽसृजदि**ति। **मनसे**ति। यथारुचि विनिर्मिता इत्यर्थः।।४४-४६।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–"भगवन्! आप कैशिकी वृत्ति को मञ्चस्थ करने में कुशल द्रव्य (सुन्दर-चेतन-प्राणी) को मुझे दें। मैंने नृत्य में लीन नटराज शिव की उस कैशिकी वृत्ति का साक्षात्कार किया है, जिसमें ललित नृत्य और अंग-हार (अंग-प्रक्षेपों) का प्रयोग होता है। जिसमें रस-भाव आदि को अभिव्यक्त करनेवाले क्रियाकलाप (अनुभाव) होते हैं। जिसमें कोमल वेशभूषा होती है और जो शृंगार रस को जन्म देती है। स्त्रियों को छोड़कर उस वृत्ति का प्रयोग करना पुरुषों द्वारा असम्भव है।" इस प्रार्थना के अनन्तर महातेजस्वी प्रभु ब्रह्मा ने अप्सराओं की मानसी सृष्टि की।।४४-४६।।

व्याख्या–जिस वस्तु को कभी देखा नहीं गया हो, उसमें आकर्षकता लाना असंभव है, जब कि ब्रह्मदेव ने अपने आदेश में हृदयावर्जक चमत्कार लाने की बात कही है। इसी दृष्टि से अग्रिम दो पद्यों में नटराज शिव द्वारा प्रस्तुत कैशिकी वृत्ति का साक्षात्कार वर्णित है। कैशिकी वृत्ति में नृत्त के अङ्गहारों का प्रयोग होता है, जो बत्तीस हैं। देवराज इन्द्र की आज्ञा से तण्डु मुनि ने उनकी गणना की थी। इनकी निष्पत्ति करणों (इन्द्रियों) से होती है। इनका विशद वर्णन चतुर्थाध्याय में है। कैशिकी वृत्ति प्रधान रूप से शृंगार रस की अभिव्यञ्जना करती है, जिसमें उज्ज्वल वेष और कोमल आंगिक आदि अभिनय भी समाविष्ट हैं। जैसा कि कहा गया है–**शृंगार उज्ज्वलवेषात्मकः** (ना.शा.६।५०)। **रसभावक्रियात्मिका** का अर्थ यह है कि रौद्र रस आदि की अभिव्यक्ति में जो अभिनय किया जाता है, उसका प्राण भी कैशिकी

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

वृत्ति होती है। "अस्य शाखा च नृत्तं च वस्तून्यभिनयस्य च" (ना.शा.८।१५)। 'स्त्री-जनाद् ऋते'–स्त्रियों को छोड़कर पुरुष इसका अभिनय नहीं कर सकते। केवल शंकर ही ऐसे हैं, जो सर्वसमर्थ हैं। उन्होंने अकेले ही कैशिकी वृत्ति का आश्रय लेकर ताण्डवनृत्य किया था, जैसा कि बीसवें अध्याय में वर्णित है–

विचित्रैरङ्गहारैस्तु देवो लीलासमन्वितैः ।
बबन्ध च शिखापाशं कैशिकी तत्र निर्मिता ।।
(ना.शा.२०।१३)

कुछ लोग दृष्टोमया भगवतो इस प्रकार पाठ-भेद की कल्पना कर उभया सह नृत्यतः भगवतो नीलकण्ठस्य कैशिकी वृत्तिः दृष्टा यह अन्वय करते हुए पार्वती के साथ शंकर द्वारा कैशिकी वृत्ति की प्रस्तुति निरूपित करते हैं, जो ठीक नहीं है। पूर्वोक्त पद्य भगवान् शंकर ही कैशिकी वृत्ति के एकाकी प्रयोग की सूचना दे रहा है। साथ ही शिव ने ही इसका प्रयोग किया, विष्णु ने नहीं, यह भी समझना चाहिए। विष्णु ने अप्सराओं की मानसी सृष्टि की, इसका तात्पर्य यह है कि रुचिपूर्वक मन लगाकर अप्सराओं की सृष्टि की।।४४-४६।।

नाट्यालङ्कारचतुराः प्रादान्मह्यं प्रयोगतः ।
मञ्जुकेशीं सुकेशीं च मिश्रकेशीं सुलोचनाम् ।।४७।।
सौदामिनीं देवदत्तां देवसेनां मनोरमाम् ।
सुदतीं सुन्दरीं चैव विदग्धां विपुलां[1] तथा ।।४८।।
सुमालां सन्ततिं चैव सुनन्दां सुमुखीं तथा ।
मागधीमर्जुनीं चैव सरलां केरलां धृतिम्[2] ।।४९।।
नन्दां सपुष्कलां[3] चैव कलमां[4] चैव मे ददौ ।
स्वातिर्भाण्ड[5]नियुक्तस्तु सह शिष्यैः स्वयम्भुवा ।।५०।।
नारदाद्याश्च गन्धर्वा [6]गानयोगे नियोजिताः ।
एवं [7]नाट्यमिदं सम्यग् बुद्ध्वा सर्वैः सुतैः सह ।।५१।।
स्वातिनारदसंयुक्तो वेदवेदाङ्गकारणम् ।
उपस्थितोऽहं ब्रह्माणं प्रयोगार्थं कृताञ्जलिः ।।५२।।

अन्वयः–(विभुः) नाट्यलङ्कारचतुराः (अप्सरसः) मह्यं प्रयोगतः प्रादात् । मञ्जुकेशीम् (आरभ्य) कलमां (यावत्) मे ददौ। स्वयम्भुवा तु स्वातिः शिष्यैः सह भाण्डनियुक्तः, नारदाद्याः च गन्धर्वाः गानयोगे नियोजिताः। एवम् अहं सर्वैः सुतैः सह वेदवेदाङ्गकारणम् इदं नाट्यं सम्यक् बुद्ध्वा स्वातिनारदसंयुक्तः कृताञ्जलिः (सन्) प्रयोगार्थं ब्रह्माणम् उपस्थितः।।४०-५२।।

---

१. विबुधां,विविधां।
२. केरलान्ध्रतीम्।
३. सुपुष्पमालाम् ।
४. कलभां।
५. स्वातिभाण्डो नियुक्तस्तु।
६. नाट्य।
७. भावनाट्य
८. लोकेशं

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अभिनव-भारती

नाट्यस्य योऽलङ्कारो वैचित्र्यहेतुः कैशिकी, तत्र चतुराः। अन्ये तु नाट्यालङ्कारा सामान्याभिनये (अ-२२) वक्ष्यमाणाः स्वभावजा लीला विलास इत्याद्या दश शोभा कान्तिः इत्याद्याश्च सप्त यत्नजा इति। अनेन मुनिकन्यानामत्राऽयोग्यत्वं तावदुक्तम् । तासां नामग्रहणे पूर्ववत् प्रयोजनं निरूप्यम्। मे ददाविति। नाट्याचार्यपरवशत्वमुपकरणसम्भारस्य दर्शयति–ददाविति। ताश्च मया यथोचितं शिक्षादानेन प्रतिगृहीता इति सूचयन् कैशिकीमप्यहं योजितवानिति दर्शयति। एवं वृत्तिचतुष्टयसम्पूर्णं नाट्यं गुणनिकायामभ्यस्तमिति प्रदर्श्य गीतातोद्याभ्यामुपरञ्जकाभ्यां योगं दर्शयति–स्वातिरित्यादि। येन जलधरसमयनिपतत्सलिलधारावैचित्र्याभिहन्यमानपुष्करदलविलसितरचितविचित्रवर्णानुहरणयोजनया यथास्वं वृत्तिनियमेन पुष्करवाद्यनिर्माणं कृतमित्यर्थः। सह शिष्यैरिति। त्रिपुष्करस्य वाद्यस्यापूरकपणवमृदङ्गझल्लर्याद्युपयोगेन पक्षातोद्यपरिग्रह उक्तः। भाण्डस्याऽत्र पूर्वमुपादानं वृत्ति (त्ते) र्येन तस्यैव परिक्रमणादौ सति सोपयोगात्। कैशिकी चाऽत्र मध्ये नियोजितेत्युक्तम्। न (तेन) तत्प्रधानमेतत्। गानयोग इति। गानशब्देन ततसुषिरपरिग्रहः। गानशब्देन गान्धर्वस्याऽत्रानुपयोगमाह। नियुक्तो नियोजित इत्यनेन वादकगायकादीनां नाट्याचार्यायत्ततां दर्शयति। नृत्तगीतातोद्याभिनयानां साम्यसिद्ध्यर्थमेकीभावेन सम्मेलनं प्रकृत्य प्रयोगः कार्य इति दर्शयति श्लोकद्वयेन–एवं नाट्यमित्यादिना। एवं मेलनिकायां नाट्यमिदम् इत्येकबुद्धिग्राह्यं सम्मिलितं सम्यक् सम्पन्नमिति बुद्ध्वा ज्ञात्वा। पुत्रैः स्वातिनारदाभ्यां च सह ब्रह्माणमुपस्थितः उपनिमन्त्रणार्थं ब्रह्मणोऽग्रे स्थित इत्यर्थः।।४७-५२।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–ब्रह्मदेव ने नाट्य की अलंकारस्वरूपा कैशिकी वृत्ति अथवा सामान्य अभिनय में प्रयुक्त होनेवाले नाट्यालंकारों के अभिनय में निपुण अप्सराओं को रूपकों का प्रयोग (मंचन) करने के लिए मुझे(भरतमुनि को) सौंपा। उनके नाम इस प्रकार हैं–(१) मञ्जुकेशी, (२) सुकेशी, (३) मिश्रकेशी, (४) सुलोचना, (५) सौदामिनी, (६) देवदत्ता, (७) देवसेना, (८) मनोरमा, (९) सुदती, (१०) सुन्दरी, (११) विदग्धा, (१२) विपुला, (१३) सुमाला, (१४) सन्तति, (१५) सुनन्दा, (१६) सुमुखी, (१७) मागधी, (१८) अर्जुनी, (१९) सरला, (२०) केरला, (२१) धृति, (२२) नन्दा, (२३) सपुष्कला और (२४) कलमा। ब्रह्मदेव ने स्वाति मुनि को शिष्यों के साथ भाण्ड (वाद्य) के वादन के लिए और देवर्षि नारद आदि गन्धर्वों को कण्ठसंगीत प्रस्तुत करने के लिए नियुक्त किया। इस प्रकार मैं भरतमुनि-अपने पुत्रों या पुत्रकल्प सैकड़ों शिष्यों के साथ शिष्य सहित स्वाति मुनि को और अनेक गन्धर्वसहित देवर्षि नारद को लेकर ब्रह्मदेव के सम्मुख नतमस्तक होकर रूपकों को मञ्चस्थ करने के लिए उपस्थित हुआ।।४७-५२।।

व्याख्या– 'नाट्यालङ्कारचतुराः'–नाट्य की चमत्कारशालिता कैशिकी वृत्ति के कारण है। कुछ लोग सामान्य अभिनय में उपयोगी स्वभावतः उत्पन्न लीला, विलास आदि दस और प्रयत्नपूर्वक निष्पाद्य शोभा, कान्ति आदि सात नाट्यालङ्कार, जो

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

बाईसवें अध्याय में वर्णित हैं, नाट्य में चमत्कारजनक होते हैं, ऐसा अर्थ करते हैं। ऋषिकन्याएं इनका प्रदर्शन करने में अयोग्य थीं, अत एव ब्रह्मदेव ने रुचिपूर्वक मन लगाकर मञ्जुकेशी, सुकेशी आदि बत्तीस अप्सराओं की सृष्टि की और नाटकों का मंचन करने के लिए भरतमुनि को सौंपा। 'मे ददौ' का तात्पर्य यह है कि भरतमुनि ने उन्हें कैशिकी वृत्ति की यथोचित शिक्षा प्रदान की, जिससे वे उसका प्रदर्शन करने में अत्यन्त निपुण हुईं। विद्याधर आदि दस देवयोनियों के अन्तर्गत अप्सरा और गन्धर्व ये दो देवयोनियां आती हैं। अप्सरा शब्द स्त्रीलिङ्गी और नित्य बहुवचनान्त है। 'अमरकोश' के अनुसार ये स्वर्ग की वेश्याएं हैं। 'अमरकोश' स्थित स्वर्गवर्ग के क्षेपक-पद्य में अप्सराओं का परिगणन इस प्रकार है–

घृताची मेनका रम्भा ऊर्वशी च तिलोत्तमा।
सुकेशी मञ्जुघोषाद्याः कथ्यन्तेऽप्सरसो बुधैः।।

पूर्वोक्त सूची से ये भिन्न नाम हैं। इनमें सुकेशी नाम नाट्यशास्त्र में भी है।

'अमरकोष' के अनुसार 'नाट्य' का अपर पर्याय 'तौर्यत्रिक' भी है, जिसके अन्तर्गत नृत्य, गीत और वाद्य तीनों का समावेश है।–

तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्
(अमर. १।७।१०)

ब्रह्मदेव ने जब रंभा आदि को रूपकों में नृत्य के लिए नियुक्त किया, तभी स्वाति मुनि को और देवर्षि नारद को क्रमशः वाद्यवादन और गायन के लिए नियुक्त किया। वे दोनों गन्धर्वयोनि के थे। इस प्रकार नर्तक, वादक और गायक तीनों नाट्याचार्य के अधीन होते थे। भरतमुनि मञ्जुकेशी आदि नर्तकियों और शिष्यों के साथ आए और वाद्यवादनकुशल स्वाति मुनि और गानविद्या में प्रवीण देवर्षि नारद के साथ रूपकों के प्रयोग (मंचन) के दर्शनार्थ निमंत्रण देने के लिए ब्रह्मदेव के समक्ष विनयपूर्वक उपस्थित हुए।।४७-५२।।

नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तं ब्रूहि किं करवाण्यहम्।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पितामहः।।५३।।
महानयं प्रयोगस्य समयः प्रत्युपस्थितः।
अयं ध्वजमहः श्रीमान् महेन्द्रस्य प्रवर्तते।।५४।।
अत्रेदानीमयं वेदो नाट्यसंज्ञः प्रयुज्यताम्।
ततस्तस्मिन् ध्वजमहे निहतासुरदानवे।।५५।।
प्रहृष्टामरसंकीर्णे महेन्द्रविजयोत्सवे।
पूर्वं कृता मया नान्दी[1] ह्याशीर्वचनसंयुता।।५६।।
अष्टाङ्गपदसंयुक्ता विचित्रा वेदनिर्मिता।[2]

अन्वयः–'नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तम्, अहं किं करवाणि? ब्रूहि।' पितामहः एतत् तु वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच– 'अयं प्रयोगस्य महान् समयः प्रत्युपस्थितः। अयं महान् महेन्द्रस्य ध्वजमहः प्रवर्तते। अत्र इदानीम् अयं नाट्यसंज्ञः वेदः प्रयुज्यताम्।' ततः निहतासुरदानवे प्रहृष्टामरसङ्कीर्णे महेन्द्रविजयोत्सवे तस्मिन् ध्वजमहे मया हि पूर्वं आशीर्वचनसंयुता

१. नान्दी कृता मया पूर्वं, माशीर्वचन–पा.।
२. देवंसमता–पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अष्टाङ्गपदसंयुक्ता विचित्रा वेदनिर्मिता नान्दी कृता।।५३-५७।।

अभिनव-भारती

उपनिमन्त्रणं दर्शयति–नाट्यस्येति। ग्रहणमिति। गृहीतं शिक्षितं तावन्नाट्यमित्यर्थः। ग्रहणं तदवलोकनं तत्प्राप्तं प्रेक्षणयोग्यं जातमित्यर्थः। एतत्त्विति। तुशब्द एवकारार्थे। श्रुत्वैव। अत एव प्रत्युपस्थितः अयत्नादेवाऽऽभिमुख्येनोपस्थितो दैवसङ्घटित इत्यर्थ। ध्वजस्येन्द्रार्थस्य महनं पूजनं यत्र स ध्वजमहः। ध्वजमहस्य विशेषणद्वारेण सम्भवं दर्शयति निहतासुरदानव इत्यादिना।

तत्र प्रयोगे क्रमं दर्शयति–पूर्वं कृता मया नान्दीति। नान्द्याख्यं मुख्यं मङ्गलं सकलपूर्वरङ्गाङ्गोपलक्षणमिति केचित्। पूर्वरङ्गाङ्गानां मध्यान्नान्दी केवलाऽपि प्रयोज्येत्येवंपरमेतदित्यन्ये। अस्मदुपाध्यायास्तु–यावद् दैत्यैस्तत्र विघ्नाद्याचरणं न कृतं तावत् पूर्वरङ्गस्य विधिपूर्वकस्य कोऽवकाशः? स हि विघ्नरक्षाकरणेन मण्डपभागनिवेशितदेवतापरितोषहेतुः प्राधान्येन। नान्तरीयकतया च दैत्यपरितोषकारणम्। विघ्नास्तु यदा जातास्ततः प्रभृति पूर्वरङ्गः। तथा चतुर्थेऽध्याये वक्ष्यते–(ना.शा.४-१०) पूर्वरङ्गे कृते मया भगवते शिवभट्टारकाय दर्शित इति–यथा तथा तु यः कुतुपविन्यासादि न (दिः स न) पूर्वरङ्गशब्दवाच्यः। तस्मादिह नान्दीमात्रस्य प्रयोगः। किमर्थाऽसावित्याह–वेदनिर्मिता। तत्राऽऽशिषमाशास्ते इति हि श्रुतिः सर्वकर्मस्वाशीःपूर्वकत्वमाह। यत्ततो नान्दीप्रयोगः, न तु पूर्वरङ्गाङ्गत्वेन।

अष्टौ यान्यङ्गभूतानि पदानि वाक्यं प्रति महावाक्यं वा, तानि सुप्तिङन्तान्यवान्तरवाक्यानि वेत्युभयथा। अत एव विचित्रेत्युक्तम्। तेन–

जितमुडुपतिना नमः सुरेभ्यो द्विजवृषभा निरुपद्रवा भवन्तु।
अवतु च पृथिवीं समृद्धसस्यां प्रतिपच्चन्द्रवपुनरिन्द्रचन्द्रः।।
(रत्ना. १-४)

इत्येषाऽपि भारतीयत्वेन प्रसिद्धा कोहलप्रदर्शिता नान्द्युपपन्ना भवति। अत्र तु पक्षे–

नान्दीपदान्तरेष्वेषु ह्येवमस्त्विति नित्यशः।
वन्देतां सम्यगुक्ताभिर्वाग्भिस्तौ पारिपार्श्विकौ।।
(ना.शा.५-११४)

इति श्लोकेऽन्तरशब्दोऽवान्तरवाक्यविच्छेदवाची द्रष्टव्यः।

विवेचकास्त्वाहुः–अङ्गग्रहणादत्राऽवान्तरवाक्यान्येव तावदुपात्तानि। तत्र चाऽष्टद्वादशसङ्ख्या चतुरस्रत्र्यस्रकालानुसारिपूर्वरङ्गद्वयाभिप्रायेण तत्र।

नान्दीं पदैर्द्वादशभिरष्टभिर्वाप्यलङ्कृताम्।। (ना.शा. ५-१०९)

इत्यत्राऽपिशब्दाच्चतुष्पदत्वं षोडशपदत्वं चतुरस्रगतं लभ्यते। त्र्यस्रगतं च त्रिपदत्वं षट्पदत्वं चेत्येवमल्पमपि तद्भेदेन तिस्रस्तिस्रो नान्द्यः। ततः परमपिभूयस्त्वात्। तेन जितमुडुपतिनेति चतुष्पदेयम्। षोडशपदा तु जयति भुवन-कारणम् इत्यादि।।५३-५७।।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–"(भगवन् !) मैंने (भरतमुनि ने) नृत्य-गीत-वाद्यमय नाट्यशास्त्र की शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की है। अब मैं क्या करूँ? आप कहें।" यह वचन सुनते ही पितामह ब्रह्मदेव ने प्रत्युत्तर दिया–"यह (दैववश अनायास) प्रयोग का अवसर उपस्थित हुआ है। इस समय देवराज इन्द्र का वैभवशाली ध्वजोत्सव चल रहा है। इसमें आप नाटकों के प्रायोगिक पक्ष को मञ्चस्थ करें।" उस समय असुर और दानवों का संहार हो चुका था। अतः उस ध्वजोत्सव में आनन्दित देवों की भीड़ एकत्र थी, जिस में सर्वप्रथम मैंने मङ्गलाशीर्वचन से प्रचुर नान्दीपाठ किया।।५३-५६।।

व्याख्या–नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तम् इत्यादि पद्य के पूर्वार्ध में निमंत्रण का आकार प्रदर्शित है। **ग्रहणं प्राप्तम्** का अभिप्राय यह है कि अब मञ्चस्थ होनेवाले नाटकों के प्रयोग देखे जा सकते हैं, क्योंकि उसका अभ्यास (रिहर्सल) पूर्ण हो चुका है। **एतत् तु** में 'तु' कार 'एव' के अर्थ में प्रयुक्त है, जो प्रत्युत्तर के अविलम्ब को संकेतित कर रहा है। असुरों के पराजय के बाद देवों के विजय का सूचक देवराज इन्द्र का ध्वज फहराया जानेवाला था। वहां उसके पूजन का अवसर अनायास ही दैववश उपस्थित था, जिसकी ओर ब्रह्मदेव ने संकेत किया है।

नाट्य-प्रयोग के क्रम में सर्वप्रथम नान्दी का विधान है। नान्दी नाट्य-प्रयोग का प्रथम मङ्गलाचरण है। इसके विषय में अनेक मतभेद हैं। कुछ लोग **पूर्वं कृता मया नान्दी** इस चरण में प्रयुक्त 'नान्दी' पद को सम्पूर्ण पूर्वरंग के अंग का उपलक्षण मानते हैं। अन्य लोग यह कहते हैं के नान्दी पूर्वरङ्ग के अनेक अङ्गों में अन्यतम है। अतः पूर्वरङ्ग के अंगों के बीच में सर्वप्रथम केवल नान्दी का प्रयोग करना चाहिए।

अस्मदुपाध्यायास्तु–भरतमुनि के साहित्यगुरु भट्टतौत के अनुसार जब तक दैत्य विघ्न उपस्थित नहीं करते, तब तक पूर्वरंग के विधिपूर्वक अनुष्ठान का प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता। नान्दीपाठ विघ्नों से रक्षा करता है, अतः प्रधान रूप से मण्डपभाग में बैठाये गए देवताओं के सन्तोष का कारण होता है। वाधक के रूप में दैत्यों के संतोष का कारण नहीं होता। जब से विघ्न उपस्थित हुए, तबसे पूर्वरंग का विधान किया गया, जिसका वर्णन चतुर्थाध्याय में द्रष्टव्य है। भरतमुनि ने भगवान् शिवभट्टारक के समक्ष पूर्वरंग का अनुष्ठान सम्पन्न किया था। छोटे-छोटे तेल-घी आदि के कसोरों को 'कुतुप' कहते हैं। उनको चाहे जैसे रखना इसे **पूर्वरंग** नहीं कहा जा सकता। अतः भरतमुनि ने सर्वप्रथम नान्दीपाठ किया, जिसमें आशीर्वादात्मक मंगलाचरण किया गयाथा। **वेदनिर्मिता**–क्योंकि वह नान्दी वेदों द्वारा निर्मित थी। जैसा कि श्रुतिवचन है– **तत्राऽऽशिणमाशास्ते**। इस प्रकार वेदमाता प्रत्येक कार्य के पूर्व मंगलाचरण के विधान का आदेश देती है, अतः भरतमुनि ने स्वतंत्र रूप से सर्वप्रथम मात्र नान्दीपाठ किया, पूर्वरंग के अंग के रूप में नही। (१) **अष्टाङ्गपदसंयुक्ता**–वह नान्दी वाक्य के प्रति सुवन्त अथवा तिङन्त आठ पदों से युक्त अथवा महावाक्य के प्रति आठ अवान्तर वाक्यों से युक्त होनी चाहिए। नाम, आख्यान, उपसर्ग, निपात, समास, तद्धित, सन्धि और विभक्ति ये आठ अङ्गस्वरूप नान्दी के पद हैं। इसीलिए उसका अन्य विशेषण **विचित्रा** सार्थक है। भरतमुनि नान्दी की परिभाषा इस प्रकार निर्धारित करते हैं–

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

आशीर्वचनसंयुक्ता नित्यं यस्मात् प्रवर्तते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।।
(ना.शा.५।२४-२५)

सूत्रधार को मध्यम-स्वर का आश्रय लेकर द्वादश-पदा अथवा अष्टपदा नान्दी का पाठ करना चाहिए-

स्थायिवर्णाश्रयोपेतां कलाष्टकविनिर्मिताम् ।
सूत्रधारः पठेन्नान्दीं मध्यमं स्वरमाश्रितः ।
ततः पदैर्द्वादशभिरष्टाभिर्वाऽप्यलङ्कृताम् ।।
(ना.शा.५।१०६-१०७)

पूर्वरंग दो प्रकार का है-चतुरस्र और त्र्यस्र। श्लोक के चरण के विचार से चतुरस्र पूर्वरंग के अन्तर्गत द्वादशपदा, अष्टपदा, चतुष्पदा और षोडशपदा नान्दी का विधान है। त्र्यस्र पूर्वरङ्ग में त्रिपदा और षट्पदा नान्दी समाविष्ट हैं। इस प्रकार नान्दी के छः प्रधान भेद हैं। इससे भी अनेक भेद सम्भव हैं।।५३-५७।।

तदन्तेऽनुकृतिर्बद्धा यथा दैत्याः सुरैर्जिताः ।।५७।।
सम्फेटविद्रवकृता च्छेद्यभेद्याहवात्मिका ।

अन्वयः-तदन्ते यथा सुरैः दैत्याः जिताः, तथा सम्फेटविद्रवकृता च्छेद-भेद्याहवात्मिका अनुकृतिः बद्धा।।५७-५८।।

अभिनव-भारती

तदन्त इति। नान्द्यन्ते परिसमाप्तौ। अनुकृतिरिति नाट्यम् । तत्र च बद्धेति गुणनिका योजिता, न तु प्रयोग इत्येतच्चाऽसत्, तत्पूर्वोत्तरव्याघातात्। पूर्वं ह्युक्तम्-एवं नाट्यमिदमित्यादि नान्दी कृतेत्यन्तम्। वक्ष्यते च-ब्रह्मादयः प्रयोगपरितोषिता इति। तस्माद् बद्धेति प्रस्ताविता, न तु निष्पादिता। प्रस्तावना तावत्प्रयुक्तेत्यर्थः ।

अन्ये त्वनुकृतिरिति नाट्यानुकाररूपा प्रस्तावनेत्याहुः। कृता तदन्तेऽनुकृतिः इति च पठन्ति। एतदुपजीवनेनैव चिरन्तनाः कवयो नान्द्यन्ते सूत्रधारः इति पुस्तके लिखन्ति स्म। किं प्रस्तावितमित्याह-यथा दैत्या इति। डिम-समवका-रेहामृगादीनामन्यतमः प्रयोगः प्रास्तावीत्यर्थः। यद्यपि भरतपुत्रैर्दशरूपकमभ्य-स्तम्, तथापि न युगपत् सर्वः प्रयोक्तुं पार्यत इत्येवमुक्तम्। यत् केचिदचूचुदन्-समवकारे कः कैशिकीयोजनावसर इति पूर्वग्रन्थोऽसङ्गत इति तन्निरवकाश-मेव। समवकारादावपि च सौन्दर्यात्मकं वैचित्र्यं कैशिकीविजृम्भ एवेत्युक्तम्।

रोषग्रथितवाक्यस्तु सम्फेटः। शङ्का-भय-त्रासकृतो विद्रवः। छेदमर्हतीति च्छेद्यः शस्त्राहवः। भेदमर्हतीति भेद्यं मल्लयुद्धात्मकनियुद्धम्।।५७-५८।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ-नान्दीपाठ के अन्त में जिस प्रकार देवताओं ने दैत्यों पर विजय प्राप्त की थी, उसका नाट्यरूपान्तरण प्रस्तुत किया गया, उसमें सम्फेट (सम्पूर्ण वाक्य), आशंका और भय से उत्पन्न विद्रव (पलायन), छेद्य-आहव (शस्त्र-युद्ध) और भेद्य-आहव (मल्ल-युद्ध) के अभिनय सम्मिलित थे।।५७-५८।।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

व्याख्या–यहां अनुहति का अर्थ नाट्य है। कुछ लोग बद्धा का अर्थ गुणनिका (रिहर्सल) करते हैं, जो ठीक नहीं है। क्योंकि यह व्याख्यान करने पर वदतो-व्याघात होगा। एवं नाट्यमिदं (१।५१) से प्रारम्भ कर नान्दी कृता मया पूर्वं ह्याशीवचनसंयुता (१।५६) तक और ब्रह्मादयः प्रयोगपरितोषिताः (१।५८) में प्रयोग की योजना की चर्चा की है, गुणनिका की नहीं। अतः बद्धा का अर्थ यह है कि भरतमुनि द्वारा नाट्यप्रयोग के पहले उसकी प्रस्तावना निष्पन्न की गयी। कुछ लोग अनुकृति का अर्थ नाट्य न कर नाट्य की अनुकृतिरूपा प्रस्तावना करते हैं। उनके मत में कृता तदन्तेऽनुकृतिः यह स्वीकृत पाठ है। वे इस पाठ को स्वीकार करते हुए पुस्तक में नान्द्यन्ते सूत्रधारः लिखते थे। प्रस्तावना के अन्तर्गत समवकार, डिम और ईहामृग आदि रूपकों में अन्यतम प्रयोग की सूचना होती थी। समवकार के अन्तर्गत देवासुरसंग्राम का घनघोर वर्णन होता है। ईहामृग के अन्तर्गत अभीष्ट शत्रुवध के अनन्तर किसी बहाने से युद्ध शान्त हो जाता है। डिम के अन्तर्गत शृंगार और हास्य रस वर्णित हैं। यह युद्धप्रधान रूपक है; जिसमें देव, असुर, राक्षस, भूत, यक्ष और नागजाति के पुरुषपात्र होते हैं (द्र.अध्याय २०)। यद्यपि भरतमुनि के पुत्रों ने नाटक आदि दश रूपकों का सैद्धान्तिक और प्रायोगिक अध्ययन किया था, तथापि सभी एक साथ उनका प्रयोग करने में अक्षम थे। कुछ लोग समवकार में कैशिकी वृत्ति के प्रयोग को अप्रासंगिक कहते हैं, जब कि वही लालित्य और चमत्कार की जन्मदात्री है।।५७।।५८।।

ततो ब्रह्मादयो देवाः प्रयोगपरितोषिताः ।।५८।।
प्रददुर्हृष्टमनसः सर्वोपकरणानि नः ।

अन्वयः–ततः ब्रह्मादयः देवाः प्रयोगपरितोषिताः हृष्टमनसः नः सर्वोपकरणानि प्रददुः।।५८।।५९।।

अभिनव-भारती

तत इति। प्रभुपरितोषाय प्रभुचरितं कदाचिन्नाट्यं वर्णनीयमिति यथा दैत्याः सुरैर्जिता इत्येतस्माल्लभ्यत इति केचिदाहुः। तदसत्, दशरूपकलक्षण-युक्तिविरोधात् । तत्र हि किञ्चित् प्रसिद्धचरितं किञ्चिदुत्पाद्यचरितमिति वक्ष्यते। न च वर्तमानचरितानुकारो युक्तः। विनेयानां तत्र रागद्वेषमध्यस्थादिना तन्मयीभावाभावे प्रीतेरभावेन व्युत्पत्तेरप्यभावात्। वर्तमानचरिते च धर्मादि-कर्मफलसम्बन्धस्य प्रत्यक्षत्वेप्रयोगवैयर्थ्यम्। प्र (अप्र) त्यक्षत्वे भविष्यति प्रमाणाभावात् इति न्यायेन व्युत्पत्तेः सम्भवान्नायिका (सम्भावना का) (?) एतच्च दशरूपकाध्याये वितनिष्याम इत्यास्तां तावत्।

देवानां त्वद्य प्रसिद्धवर्णनीयासम्भवात् पूर्वकल्पमन्वन्तरादिगत-देवासुरचरितकीर्तनम्। अनादित्वात् संसारस्य श्रुतिस्मृत्यनुमतदेवासुरकीर्तन-वदिति। तत्र वर्तनो (वर्तमानो) पवर्णनं तज्जातीयानाम्। अथ चरित्रभ्रमविप्र-लब्धास्त्वसुराश्चुक्षुभुरिति वक्ष्यामः। न च स्वचरितवर्णनाद् देवानां परितोष इह। यत आह–प्रयोगपरितोषिता इति।।५८-५९।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–अनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं ने (हमलोगों के) नाट्य-प्रयोग से संतुष्ट

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

होकर प्रसन्नचित्त से हमें सभी उपकरण (सामग्री) प्रदान किए।

व्याख्या—कुछ लोग यथा देत्याः सुरैः जिताः ततः इस प्रकार वाक्ययोजना करते हुए यतः ईश्वर, स्वामी को संतुष्ट करने के लिए देवों द्वारा दानवों पर विजयप्राप्ति का सम्यक् चित्रण नाट्य में किया गया अतः यह अर्थ करते हैं, जो समुचित नहीं है। अन्यथा दशरूपकों की परिभाषाएं परस्पर विरुद्ध होंगी। किसी रूपक में प्रसिद्ध, ख्यातिप्राप्त ऐतिहासिक अथवा पौराणिक चरित्रचित्रण रहता है और किसी रूपक में कल्पित चरित्र चित्रित रहता है। वर्तमान चरित्र का अनुकरण इसलिए योग्य नहीं होता कि जिन्हें नाट्य-प्रयोगों की शिक्षा दी जाती है, उनमें राग, द्वेष, तटस्थता आदि का तन्मयीभाव, साधारणीकरण न होने से उनमें आकर्षण, अनुराग उत्पन्न नहीं होता। फलतः उससे कोई निष्पत्ति भी नहीं होती। साथ ही वर्तमान चरित्र में धर्म-अधर्म का जब प्रत्यक्ष साक्षात्कार सम्भव है, तब उसका नाट्यप्रयोग भी व्यर्थ है। इन सबका वर्णन विस्तार से दशरूपकाध्याय में द्रष्टव्य है।

देवों का प्रसिद्ध वर्णन असंभव होने के कारण पूर्व कल्पों, मन्वन्तरों आदि में घटित देव और असुरों के चरित्र चित्रित होने हैं। संसार अनादि होने के कारण जिस प्रकार वे श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणों में चित्रित होते हैं, उसी प्रकार रूपकों में भी उनका मंचन किया जाता है। उस काल में वर्णित जातियों का चित्रण उसमें रहता है। उन्हीं प्रयोगों को देखकर देवता संतुष्ट हुए, अपना चरित्र देख कर नहीं। इसी दृष्टि से प्रयोगपरितोषिताः इस विशेषण का प्रयोग है।।५८।।५९।।

प्रीतस्तु प्रथमं शक्रो दत्तवान् स्वं [1]ध्वजं शुभम् ।।५९।।
ब्रह्मा कुटिल[2]कं चैव भृङ्गारं वरुणः शुभम्[3] ।
सूर्यश्छत्रं शिवः सिद्धिं वायुर्व्यजनमेव च ।।६०।।
विष्णुः सिंहासनं चैव कुबेरो[4] मकुटं[5] तथा ।
श्राव्यत्वं प्रेक्षणीयस्य ददौ देवी सरस्वती ।।६१।।
शेषा ये देवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
तस्मिन् सदस्यभिप्रेता[6]न् नानाजातिगुणाश्रयान् ।।६२।।
अंशाशैर्भाषितं भावान् रसान् रूपं बलं[8] तथा ।
दत्तवन्तः प्रहृष्टास्ते मत्सुतेभ्यो दिवौकसः[9] ।।६३।।

अन्वयः—प्रथमं शक्रः प्रीतः (सत्) शुभं स्वं ध्वजं दत्तवान्। ब्रह्मा चैव कुटिलकं (दत्तवान्।), वरुणः शुभं भृङ्गारं (दत्तवान्।) सूर्यः छत्रं दत्तवान्। शिवः सिद्धिं दत्तवान्। वायुः व्यजनम् एव च दत्तवान्। विष्णुः सिंहासनं चैव दत्तवान्। तथा

१.स्वध्वजं।
२. कमण्डलुं।
३. तथा
४. कुबेरो, कुबेरो।
५. मुकुटं
६. अतिप्रीतान्, अतिप्रीता।
७. भाषितान्
८. रूपं वलिक्रियाम्, रूपं क्रियावलम्
९. प्रददुर्मत्सुतेभ्यश्च चित्रमाभरणं बहु।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

कुबेरः मकुटं दत्तवान्। सरस्वती देवी प्रेक्षणीयस्य श्रात्यत्वं ददौ। तस्मिन् सदसि शेषाः ये देव-गन्धर्वाः यक्ष-राक्षस-पन्नगाः, ते दिवौकसः प्रहृष्टाः (सन्तः) मत्सुतेभ्यः अभिप्रेतान् नानाजातिगुणाश्रयान् भावान् रसान्अंशांशैः भाषितं, रूपं तथा बलं दत्तवन्तः।।५९-६३।।

अभिनव-भारती

ध्वजमिति, यस्य विघ्नशान्त्यै पूजार्थमुपयोगी भावी। कुटिलकमिति। वक्रदण्डो विदूषकोपयोगी, ब्रह्मायुधात्मा दण्डः। अपकामत्वेन भीषणत्वा-वात्यादपीत्यर्थः (?)। भृङ्गारः पारिपार्श्विकोपयोगी। छत्रमत्र वितानः। जलदानां सूर्योद्भवत्वात् तत्प्रतिमः। यदाहुः—ऋतवे वर्षान्ते महतो मेघसम्प्रवानिति। भगवदायत्ता दैवी मानुषी च सिद्धिरिति मध्ये तदुपादानं सर्वव्यापकत्वं दैव्याः सिद्धेः प्रतिपादयितुम्। व्यजनं घर्मापनुत्तये। सिंहासनादि राजभूमिकायामुपयोगि। यक्षादयो ये तत्त्वज्ञा नाट्यस्य। भाषितमिति। तत्तद्भूमिकोपयोगिवाचिके शिक्षा। भावानिति विभावादिषु। तथा हि रक्तमांसादीनि भयजुगुप्साविभावरूपाणि यक्षरक्षसां हर्षोत्साहविभावतां यान्तीति तदुपदेशादेव तज्ज्ञेयम्। रसानिति स्वोचितस्थायिभावसम्बध्यमान-तत्तद्रसोपयोगिनोऽनुभावव्यभिचारिवर्गस्य शिक्षा दर्शिता। रूपमिति मुखरागस्य। बलमित्याङ्गिकस्य। प्रतिभूमिकं परितुष्टेन अन्ततोऽत्र शिष्टा(क्षा) पि काचिद् देया। सामाजिकेभ्यश्च धनविज्ञानमित्याहरणीयातोद्या (द्याद्या) जिहीर्षता च परिषत्परितोषाय यतितव्यमित्येतदनेन दर्शितम्।।५६-६३।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ— सर्वप्रथम इन्द्र ने प्रसन्न होकर अपना मङ्गल-ध्वज प्रदान किया। अनन्तर ब्रह्मदेव ने कुटिलक, अपनी टेढ़ी छड़ी प्रदान की। वरुण ने अपना कमण्डलु,सूर्य ने छत्र, शिव ने अपनी सिद्धि, वायु ने पंखा, विष्णु ने सिंहासन, कुबेर ने मुकुट और वाग्देवी सरस्वती ने दृश्यकाव्य को श्रव्य-गुण प्रदान किया। उस सभा में जो देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि दिव्ययोनि में अवतीर्ण स्वर्गलोक के अवशिष्ट निवासी थे, उन्होंने मेरे (भरतमुनि के) पुत्रों को अभीष्ट नानाविध जाति के गुणों पर अवलंवित नानाविध भाव और रस के स्थायी भावों के अनुभावों के पात्रों के अनुरूप वाचिक अभिनय, सौन्दर्यवर्धक नाना प्रसाधन और शारीरिक अभिनय के अनुरूप बल प्रदान किया।।५२-६३।।

व्याख्या—देवराज इन्द्र ने अपना वह ध्वज प्रदान किया, जिसका उपयोग विघ्न-शान्ति के निमित्त पूजा के लिए आवश्यक था। कुटिलक विदूषक के उपयुक्त टेढ़ी छड़ी थी, जो ब्रह्मा का आयुध-दण्ड था और डराने-धमकाने के लिए प्रयुक्त होता था। 'भृंगार' (कमण्डलु) सूत्रधार के दोनों और मंडराने वाले पारिपार्श्वकों के उपयुक्त थे। सूर्य ने उस छत्र, पटमण्डप को प्रदान किया, जो मेघों के आकार का था। यतः मेघों की उत्पत्ति सूर्य से होती है, अतः उसका प्रयोग आतपनिवारण के लिए किया जाता है। शिव ने दैवी और मानुषी सिद्धि को प्रदान किया, जिसका उपयोग व्यापक था। वायुद्वारा प्रदत्त व्यजन, पंखा, पसीना दूर करने के लिए उपयुक्त था। सिंहासन-मुकुट आदि उपकरण राजोचित भूमिका के उपयुक्त थे। जो नाट्यशास्त्र-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

मर्मज्ञ थे उन यक्ष, राक्षस और नागजाति के दिव्ययोनि प्राणियों ने भरतमुनि को अभीष्ट सामग्री प्रदान की, जिनमें भाषित (उन उन पात्रों की भूमिका के अनुरूप वाचिक-अभिनय) की शिक्षा थी। सामान्य रूप से रक्त मांस आदि उपकरण भय, जुगुप्सा आदि स्थायी भावों के उद्दीपन विभाव हैं, जो यक्ष और राक्षस जातियों के हर्ष और उत्साह के विभाव वन जाते हैं। यक्ष और राक्षसों ने भरतमुनि के पुत्रों को इसकी शिक्षा दी। उसी प्रकार उन्होंने रसों की शिक्षा प्रदान की अर्थात् उन रसों के स्थायी और व्यभिचारी भावों के अनुभाव कैसे होते हैं उसकी शिक्षा प्रदान की। किस पात्र के अनुरूप कौन से सौन्दर्य-प्रसाधन होते हैं उनका उपयोग करना सिखलाया। साथ ही उन्हें उस व्यायाम की भी शिक्षा दी जो आंगिक अभिनय करने के लिए बलसंवर्द्धन करते थे। इससे यह सूचित होता है कि नाट्य का प्रयोग कुछ शिक्षा देने के लिए है। उससे सामाजिकों को कुछ धन, ज्ञान और संतोष मिलता है। अतः ऐसे प्रयोग करने चाहिए, जिससे नाट्यशाला के दर्शक सन्तुष्ट हों।।५९-६३।।

एवं प्रयोगे प्रारब्धे दैत्यदानवनाशने ।
अभवन् क्षुभिताः सर्वे दैत्या ये तत्र सङ्गताः ।।६४।।
विरूपाक्षपुरोगा[1]श्च विघ्नान् प्रोत्साह्य[2] तेऽब्रुवन् ।
न क्षमिष्यामहे[3] नाट्यमेतदागम्यतामिति ।।६५।।
ततस्तैरसुरैः सार्धं विघ्ना[4] मायामुपाश्रिताः ।
वा[5]चश्चेष्टां स्मृतिं चैव स्तम्भयन्ति स्म नृत्यताम् ।।६६।।
तथा विध्वंसनं दृष्ट्वा सूत्रधारस्य[6] देवराट् ।
कस्मा[8]त् प्रयोगवैषम्यमित्युक्त्वा ध्यानमाविशत् ।।६७।।

अन्वयः–एवं दैत्यदानवनाशने प्रयोगे प्रारब्धे (सति) ये तत्र सङ्गताः (ते) सर्वे दैत्याः क्षुभिताः अभवन्। विरूपाक्षपुरोगाश्च ते विघ्नान् प्रोत्साह्य अब्रुवन्-'एतत् नाट्यं न क्षमिष्यामहे, आगम्यताम्' इति। ततः मायाम् उपाश्रिताः विघ्नाः तैः असुरैः सार्द्धं नृत्यतां वाचः चेष्टां स्मृतिं चैव स्तम्भयन्ति स्म। देवराट् एवं सूत्रधारस्य विध्वंसितं दृष्ट्वा 'कस्मात् प्रयोगवैषम्यम्' इति उक्त्वा ध्यानम् आविशत्।।६४-६७।।

अभिनव-भारती

अथ विघ्नोपशमनाय जर्जरपूजा कार्येति दर्शयितुमितिहासेनोपक्रमते–एवं प्रयोग इति। दैत्यानां विनाशनं यत्र प्रयोज्यतया। आगम्यतामिति। अवधार्यतां यदि वा सम्भूयाऽऽस्यताम्। मायामिति अदृश्यत्वमित्यर्थः। चेष्टेत्याङ्गिकी। यद्यपि

---

१. पुरोगास्तु, पुरोगांस्तु।

२. उत्सा(त्या)द्य, प्रोत्साद्य।

३. इच्छामहे, ईक्षामहे, इष्यामहे।

४. विघ्नमायाम् ।

५. वचः

६. विध्वंसितं।

७. तत्र तेषां स देवराट् ।

८. तस्मात् ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

स्मृतिस्तम्भनेन सर्वं स्तम्भितं भवति तथापि तत्तदभिनेय-प्राधान्येन तदेव स्तम्भितमित्युक्तम्। सूत्रधारस्येति। सपरिवारस्येति। प्रस्तावनाप्रयोगमध्य एवाऽयं विघ्न इति यावत्। ध्यानमिति। यत्र माया न प्रभवति।।६४-६७।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ—इस प्रकार दैत्य और दानवों का विनाशकारी नाट्यप्रयोग प्रारम्भ होने पर वहां जितने एकत्रित थे, वे सभी दैत्य क्षुब्ध हुए और विरूपाक्ष आदि विघ्नकारी तत्त्वों को प्रोत्साहित करते हुए बोले— 'हम इस नाट्य-प्रयोग को सहन नहीं कर सकते। आप आएं।' तब उन विघ्नकारी तत्त्वों ने माया, इन्द्रजाल का सहारा लेकर नर्तकों की वाणी, सभी चेष्टाओं और स्मृति का भी स्तम्भन कर दिया। इस प्रकार देवराज इन्द्र ने सूत्रधार के नाट्य-प्रयोग में विनाश उपस्थित देखकर कहा— 'इसके प्रयोग में त्रुटि क्यों है?' यह कहकर वे समाधिस्थ हो गए।।६४-६७।।

व्याख्या—सूत्रधार द्वारा प्रारंभ किये गये नाट्यप्रयोग की प्रस्तावना में ही विघ्न-बाधा का इतिहास यह संकेत कर रहा है कि विघ्न-बाधा शांत करने के लिए जर्जर की पूजा करनी चाहिए। इसका वर्णन अग्रिम पद्यों में द्रष्टव्य है। अभिनवगुप्तापादाचार्य के अनुसार वे विघ्नकारी तत्त्व माया अर्थात् अदृश्य होने की शक्ति का आश्रय लेकर वहां उपस्थित हुए। यद्यपि स्मृति का स्तम्भन करने पर सभी कार्य-कलाप स्तम्भित होते हैं, तथापि अभिनय की प्रधानता के कारण यहां वाणी (वाचिक अभिनय) और चेष्टा (आंगिक अभिनय) का पृथक् पृथक् उल्लेख किया गया है। वहां सूत्रधार अकेले उपस्थित नहीं थे, अपितु परिवारसहित उपस्थित थे। सूत्रधार की परिभाषा इस प्रकार है—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ।।

उनके द्वारा मंचित प्रस्तावना के नाट्यप्रयोग के बीच में ही विघ्नबाधा उपस्थित देखकर देवराज इन्द्र ने वह ध्यान लगाया, जहां दैत्यों की माया (अदृश्यशक्ति) भी व्यर्थ हुई।।६४-६७।।

अथाऽपश्यत् स[1]दो विघ्नैःसमन्तात् परिवारितम्।
सहेतरैः सूत्रधारं नष्टसंज्ञं जडीकृतम् ।।६८।।
उत्थाय त्वरितं शक्रो गृहीत्वा ध्वजमुत्तमम् [2] ।।
सर्वरत्नोज्ज्वलतनुः[3] किञ्चिदु[4]द्वृत्तलोचनः ।।६९।।
रङ्गपीठगतान् विघ्नानसुरांश्चैव देवराट् ।
जर्जरीकृतदेहांस्तानकरोज्जजरेण सः ।।७०।।
निहतेषु[5] च सर्वेषु विघ्नेषु सह दानवैः ।
सम्प्रहृष्य ततो वाक्यमाहुः सर्वे दिवौकसः ।।७१।।
अहो प्रहरणं दिव्यमिदमासादितं त्वया ।

१. तदा।
२. क्रोधात् जग्राह तं ध्वजम्, अथोत्थाय द्रुतं क्रोधाद्दिव्यं जग्राह स ध्वजम् ।
३. सर्वरत्नोज्ज्वलन्तं तु।
४. कोपाद्।
५. गतेषु तवतेषु।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

जर्जरीकृतसर्वाङ्गा येनैते दानवाः कृताः[१] ।।७२।।
यस्मादनेन ते विघ्नाः सासुरा जर्जरीकृताः ।
तस्माज्जर्जर एवेति[२] नामतोऽयं भविष्यति ।।७३।।
शेषा[३] ये चैव हिंसार्थमुपयास्यन्ति[४] हिंसकाः[५] ।
दृष्ट्वैव जर्जरं तेऽपि गमिष्यन्त्येवमेव तु ।।७४।।
एवमेवास्त्विति ततः शक्रः प्रोवाच तान् सुरान् ।
रक्षाभूतश्च सर्वेषां भविष्यत्येष[६] जर्जरः ।।७५।।
प्रयोगे प्रस्तुते ह्येवं स्फीते शक्रमहे पुनः ।
त्रासं सञ्जनयन्ति स्म विघ्नाः शेषास्तु[७] नृत्यताम् ।।७६।।
दृष्ट्वा तेषां व्यवसितं दैत्यानां[८] विप्रकारजम् ।
उपस्थितोऽहं ब्रह्माणं सुतैः सर्वैः समन्वितः ।।७७।।
निश्चिता भगवन्! विघ्ना नाट्यस्याऽस्य विनाशने ।
अस्य[९] रक्षाविधिं सम्यगाज्ञापय सुरेश्वर ।।७८।।
ततश्च[१०] विश्वकर्माणं [११]ब्रह्मोवाच प्रयत्नतः ।
कुरु लक्षणसम्पन्नं नाट्यवेश्म महामते[१२] ।।७९।।
ततोऽचिरेण कालेन विश्वकर्मा महच्छुभम् ।
सर्वलक्षणसम्पन्नं कृत्वा नाट्यगृहं तु सः[१३] ।।८०।।
प्रोक्तवान् द्रुहिणं गत्वा सभायां तु कृताञ्जलिः ।
सज्जं नाट्यगृहं देव! तदवेक्षितुमर्हसि ।।८१।।
ततः सह महेन्द्रेण सुरैः सर्वैश्च सेतरैः[१४] ।
आगत[१५]स्त्वरितो द्रष्टुं द्रुहिणो नाट्यमण्डपम् ।।८२।।
दृष्ट्वा नाट्यगृहं ब्रह्मा प्राह सर्वान् सुरांस्ततः ।
अंशभागैर्भवद्भिस्तु रक्ष्योऽयं नाट्यमण्डपः ।।८३।।

अन्वयः–अथ (देवराट्) विघ्नैः समन्तात् परिवारितं सदः इतरैः सह नष्टसंज्ञं जडीकृतं सूत्रधारम् अपश्यत्।।६८।।

सर्वरत्नोज्वलतनुः देवराट् सः शक्रः त्वरितम् उत्थाय, उत्तमं ध्वजं गृहीत्वा

---

१. नाट्यविध्वंसिनः सर्वे येन ते जर्जरीकृताः।
२. इत्येव।
३. सेर्षा।
४. उपस्थास्यन्ति।
५. विघ्नकाः।
६. एव।
७. मद्वधबुद्धयः, सेर्षास्तु।
८. मदर्थे।
९. अतो।
१०. स।
११. आह ब्रह्मा।
१२. चकार सः।
१३. कृत्वा यथोक्तमेवं तु गृहं पद्मोद्भवाज्ञया।
१४. सत्तमैः
१५. अगच्छत्, आगच्छत्।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 7018

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

किञ्चित् उद्वृतलोचनः (सन्) रङ्गपीठगतान् विघ्नान् तान् असुरान् चैव जर्जरेण जर्जरीकृतदेहान् अकरोत्।।६९।।७०।।

दानवैः सह सर्वेषु च विघ्नेषु निहत्तेषु (सत्सु), ततः सर्वे दिवौकसः सम्प्रहृष्य वाक्यम् आहुः।।७१।।

'अहो! त्वया इदं दिव्यं प्रहरणम् आसादितम्'; येन एते दानवाः जर्जरीकृत सर्वाङ्गाः कृताः।।७२।।

यस्मात् अनेन सासुराः विघ्नाः जर्जरीकृताः, तस्मात् अयं जर्जर एव इति नामतः भविष्यति।।७३।।

ये चैव शेषाः हिंसकाः शेषार्थम् उपयास्यन्ति, तेऽपि जर्जरं दृष्टैव एवमेव तु गमिष्यन्ति'।।७४।।

ततः शक्रः तान् सुरान् 'एवमेव अस्तु, एषः जर्जरः सर्वेषां रक्षाभूतश्च भविष्यति' इति प्रोवाच।।७५।।

पुनः स्फीते शक्रमहे एवं प्रयोगे प्रस्तुते सति शेषास्तु विघ्नाः नृत्यतां त्रासं सञ्जनयन्ति स्म।।७६।।

तेषां दैत्यानां विप्रकारजं व्यवमितं दृष्ट्वा अहं सर्वैः सुतैः समन्वितः (सन्) ब्रह्माणम् उपस्थितः।।७७।।

'भगवन्! अस्य नाट्यस्य विनाशने विघ्नाः निश्चिताः। सुरेश्वर! अस्य रक्षाविधिं सम्यक् आज्ञापय'।।७८।।

ततश्च ब्रह्मा विश्वकर्माणं प्रोवाच–'महामते! प्रयत्नतः लक्षणसम्पन्नं नाट्यवेश्म कुरु।'।।७९।।

ततः सः विश्वकर्मा अचिरेण कालेन सर्वलक्षणसम्पन्नं शुभं महत् नाट्यगृहं कृत्वा द्रुहिणं गत्वा सभायां कृताञ्जलिः (सन्) प्रोक्तवान्–' देव! नाट्यगृहं सज्जम्, तत् अवेक्षितुम् अर्हसि'।।८०-८१।।

ततः द्रुहिणः महेन्द्रेण सर्वैश्च सेतरैः सुरैः सह त्वरितः नाट्यमण्डपं द्रष्टुं समागतः।।८२।।

ततः ब्रह्मा नाट्यगृहं दृष्ट्वा सर्वान् सुरान् प्राह–'अंशभागैः भवद्भिः तु अयं नाट्यमण्डपः रक्ष्यः'।।८३।।

अभिनव-भारती

सद इति, यत्र प्रयोगः क्रियते– सीदत्यस्मिन्निति। जीर्यत्यतिशयेनेति पचाद्यचि यङ्लुकि रूपम्। अतिशयेन जीर्णीकृतो देहो येषान्ते तथा। जर्जरेणेति यङ्लुगन्ताण्णिचि पुनः पचाद्यचि रूपम्। एवं राज्ञा सिद्धिविघातका दण्ड्या इति दर्शितम्। यदि वा मूलत एव तत्परिरक्षायै मण्डपः कार्यः। ये च दण्डस्याऽविषया वातातपवर्षादयश्च तत्कृतो हि सिद्धिविघातो मण्डपे सति न भवति। एतेनैवाऽभिप्रायेण पुराकल्पमाह–प्रयोग इत्यादि। शेषा इति। जर्जरीकृतशरीरशेषा अपीत्यर्थः। यद्वक्ष्यति–निश्चिता भगवन्! विघ्ना इति। तथाऽस्मिन् जर्जरीकरणकाले एते चाऽसन्निहिता अभूवन्। त्रासमिति। सर्वथा तु न शक्ता। नाशयितुमिति जर्जरप्रभावः। गमिष्यन्त्येवमेव इति य उक्तः सोऽज्ञः (ये वक्तारः तेऽज्ञाः) (?)। ततो विश्वकर्मेति। वास्तुविद्यातत्त्वविदो नाट्यमण्डपे

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

स्थपतित्वं सूचयति। द्रुहिण इति ब्रह्मा। इतरे विद्याधरगन्धर्वाद्याः। अंशैर्यानि भजनान्यधिष्ठानानि तैः। मण्डपस्यांशेषु वः भवतां ये तृतीयचतुर्थादयो भागास्तैः।।६८-८३।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ और व्याख्या–पश्चात् देवराज इन्द्र ने अनेक विघ्नकारी तत्त्वों से घिरी हुई 'सदस्' (सभा) को और अपने परिवार के साथ चेतनाशून्य और जडवत् निश्चल सूत्रधार को देखा।

अभिनवगुप्त के अनुसार यहां 'सदः' का अर्थ वह सभा है, जहां नाट्य-प्रयोग किया जा रहा था–'सीदति अस्मिन्निति सदः' अथवा 'सीदन्ति अस्याम् इति सदः।' यह शब्द 'सद्' धातु के 'असुन्' प्रत्यय से निष्पन्न है। यह स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिंग दोनों में चलता है–'स्त्रीनपुंसकयोः सदः' (अमर. २।७।१५)।।६८।।

सभी रत्नजटित अलंकारों से अपने शरीर को उज्ज्वल करते हुए देवराज इन्द्र ने अविलम्ब उठकर और उत्तम ध्वज को लेकर कुछ दृष्टि घुमाते हुए उस रङ्गमंच पर उपस्थित विघ्नकारी तत्त्वों और असुरों को 'जर्जर' द्वारा शिथिल कर दिया।

जर्जरीकृतदेहांस्तानकरोत् जर्जरेण सः

जर्जरीकृतः अतिशयेन जीर्णीकृतः देहः येषां ते जर्जरीकृतदेहाः तान्, उस ध्वज से उक्त विघ्नकारी तत्त्वों और असुरों के शरीर को जीर्ण-शीर्ण कर दिया गया था, अत एव उस ध्वज का नाम 'जर्जर' पड़ा। 'जॄ' धातु का यह यङ्लुगन्त रूप है। णिच् प्रत्यय और 'अच्' प्रत्यय से यह निष्पन्न होता है। 'जीर्यति अतिशयेन इति जर्जरः' यह इसकी व्युत्पत्ति है। ७२ और ७३वें पद्य में इस नाम की सार्थकता प्रदर्शित की गयी है।।६९।।७०।।

दानवों के साथ समस्त विघ्नकारी तत्वों के मारे जाने पर स्वर्गलोक के वासी दिव्य-योनि के सभी प्राणी प्रसन्न होकर बोले–।।७१।।

'अहो! आपने आपने वह दिव्य शस्त्र प्राप्त किया है, जिसके द्वारा इन दानवों के शरीर को पस्त कर दिया गया है'।।७२।।

अतः इसके द्वारा असुरों के साथ समस्त विघ्नकारी तत्त्वों को जीर्ण-शीर्ण कर दिया गया। अतः आगे चलकर इसका नाम ही 'जर्जर' पड़ेगा[1]।।७३।।

अवशिष्ट जो हिंसाकारी असुर होंगे, वे जर्जर को देखते ही इसी स्थिति को प्राप्त करेंगे।।७४।।

---

१. टिप्पणी– रंग दैवतपूजन नामक तृतीय अध्याय में जर्जरपूजा का विधान है, जिसमें उससे यह प्रार्थना की जाती है–

त्वं महेन्द्रप्रहरणं सर्वदानवसूदनम् ।
निर्मितं सर्वदेवैश्च सर्वविघ्ननिवारणम् ।।
नृपाय विजयं देहि रिपूणां च पराजयम् ।
गोब्राह्मणहितं चैव नाट्यस्य च विवर्धनम् ।।
ना.शा. ३।१२-१४ ।।

जर्जरपूजा के अनन्तर नाट्यमण्डप में रात्रिवास कर रंगदेवता की पूजा का विधान है। सभी देवताओं की पूजा के बाद पुनश्च जर्जरपूजा के उपरान्त समस्त विघ्नों का शमन होता है। (जर्जर का लक्षण द्र० ना० शा० २३।१६४-१७१)

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

पश्चात् इन्द्र ने कहा– 'ऐसा ही हो, यह जर्जर सभी का रक्षक होगा। इस से यह सूचित होता है कि विघ्नकारी तत्त्वों को राजाद्वारा दण्डित किया जाना चाहिए।।७५।।

पुनः देवराज इन्द्र का ध्वजमहोत्सव उपस्थित होने पर जब नाट्य प्रयोग प्रारंभ हुआ, तब अवशिष्ट विघ्नकारी तत्त्व नर्त्तकों के मध्य उपस्थित होकर उन्हें कष्ट देने लगे।।७६।।

दैत्यों के द्वारा किये जाने वाले उस अपकार-कारक विनाशकारी प्रयास को देखकर मैं (भरतमुनि) अपने पुत्रों के साथ ब्रह्मदेव के समक्ष उपस्थित हुआ और उनसे यह प्रार्थना की।।७७।।

"भगवन् ! ये विघ्नकारी तत्त्व नाट्य-मण्डप का विनाश करने का निश्चय कर चुके हैं। अतः आप उसकी रक्षा का उपाय करें। और उसके लिए आदेश दें"।।७८।।

पश्चात् ब्रह्मदेव ने स्थापत्यकलाविशारद विश्वकर्मा को बुलाकर आज्ञा दी– "कुशाग्रबुद्धे! आप सभी लक्षणों, विशेषताओं से, सम्पन्न नाट्यमण्डप के निर्माण के लिए प्रयत्नशील हों"।।७९।।

ब्रह्मदेव की आज्ञा पाते ही विश्वकर्मा ने अल्पावधि में सभी विशेषताओं से युक्त नाट्यमण्डप की रचना की और ब्रह्मदेव से करबद्ध प्रार्थना की– "भगवन् !नाट्यमण्डप तैयार है, आप उसे देख सकते हैं"।।८०-८१।।

अनन्तर ब्रह्मदेव देवराज इन्द्र देवगण और दूसरे विद्याधर-यक्ष आदि के साथ शीघ्र ही नाट्यमण्डप देखने के लिए उपस्थित हुए।।८२।।

उस नाट्यमण्डप को देखकर ब्रह्मदेव ने देवों को आज्ञा दी– 'आपलोग अपने-अपने अंशों से इसकी रक्षा करें।'।।८३।।

नाट्यमण्डप–नाट्यमण्डप के निर्माण के पूर्व खुले आंगन में नाट्यप्रयोग होते थे। विघ्नबाधा उपस्थित होने पर नाट्यप्रयागों की रक्षा के लिए इसकी आवयकता का अनुभव किया गया। नाट्यमण्डप का विधान इसलिए भी आवश्यक था कि उसके कारण वर्षा-आतप आदि से भी बचाव होता है। नाट्यमण्डप स्तम्भों द्वारा अनेक भागों में विभक्त होता था। उनमें कुछ भाग भजनादि के लिए निर्धारित था। ब्रह्मदेव ने देवों को यह आदेश दिया कि 'उनके चतुर्थ आदि जो विभाग हैं, उनमें उपस्थित होकर नाट्यमण्डप की रक्षा करें।' यही **अंशभागैर्भवद्भिस्तु रक्ष्योऽयं नाट्यमण्डपः** इस पद्यार्द्ध का अभिप्राय है।।८३।।

रक्षणे मण्डपस्याऽथ[1] विनियुक्तस्तु चन्द्रमाः ।
यथादिग्लोकपालाश्च विदिक्ष्वपि च मारुतः[2] ।।८४।।
नेपथ्यभूमौ मित्रस्तु निक्षिप्तो वरुणोऽम्बरे[3] ।
वेदिकारक्षणे वह्निर्भाण्डे सर्वदिवौकसः[4] ।।८५।।
वर्णाश्चत्वार एवाऽथ[5] स्तम्भेषु विनियोजिताः ।
आदित्याश्चैव रुद्राश्च स्थिताः[6] स्तम्भान्तरेष्वथ[7] ।।८६।।

१. मण्डपेऽस्याथ, मण्डपस्यास्य।
२. नियुक्तो रजनीकरः।
३. वरुणेश्वरः।
४. वेदिकां पावकः पातुं भाण्डं सर्वे दिवौकसः।
५. अस्य।
६. न्यस्ताः।
७. स्तंभान्तरेषु च।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

[१]धारणीष्वथ भूतानि शालास्वप्सरसस्तथा ।
सर्ववेश्मसु यक्षिण्यो महीपृष्ठे महोदधिः ।।८७।।

अन्वयः-अथ मण्डपस्य रक्षणे तु चन्द्रमाः विनियुक्तः, यथा दिग्लोकपालाश्च विदिक्ष्वपि च मारुतः विनियुक्ताः।।८४।।

नेपथ्यभूमौ तु मित्रः निक्षिप्तः, वरुणः अम्बरे निक्षिप्तः, वह्निः वेदिकारक्षणे निक्षिप्तः, सर्वदिवौकसः भाण्डे निक्षिप्ताः।।८५।।

अथ च चत्वारः वर्णा एव स्तम्भेषु विनियोजिताः। अथ आदित्याः रुद्राश्चैव स्तम्भान्तरेषु स्थिताः।।८६।।

अथ धारणीषु भूतानि स्थितानि, शालासु अप्सरसः स्थिताः, यक्षिण्यः सर्ववेश्मसु स्थिताः, महोदधिः महीपृष्ठे स्थितः।।८७।।

अभिनव-भारती

अंशविभागमेवाह-रक्षण इति। अनेन चैतत्तुल्या एव मण्डपभागरक्षा काचिन्नियोज्या इति दर्श्यते। मण्डपस्य सर्वस्याऽधिष्ठाता हि सौम्यप्रकृतिः सोमः प्रधानो योज्य इति दर्शयति-चन्द्रमा इति। अपि चेति। विदिक्ष्विति। न केवलं पश्चिमोत्तररूपे स्वकोणे यावदन्यास्वपि विदिक्षु। चकाराद्दिक्ष्वपि। ते हि घर्मदोषवारकत्वादत्यन्तोपकारिणः। अनेनं गवाक्षकरणं सूच्यत इत्येके। आदित्ये मित्रशब्दः पुल्लिङ्ग इति। तेन यद्वार्तिककारी (रीयं) तदुपलक्षितो नर्तकीहि (भिः) लज्जापरिहारहेतोः नपुंसको नेपथ्यगृहे इति तदपरामृष्टाभिधानम्। मित्र इति तेजस्विता आहार्योपयोगी रत्नादेरुक्ता। वेदिका रङ्गवेदिका, तत्र तीक्ष्णोऽधिष्ठातेत्यर्थः। भाण्ड इति त्रिपुष्करे सोपकरणे। दिवौकसो मेघा मन्द्रगम्भीरशब्दसिद्धये। इत्येवं सर्वत्र दृष्टमपि सदृशोपलक्षणान्तं प्रयोजनमुत्प्रेक्ष्यम्। सर्वथा तदलाभे नियमादृष्टमेव। वर्णा इति तदधिष्ठातारो देवता-विशेषाः। स्तम्भान्तरेष्विति। वर्णस्तम्भचतुष्कादिरित्येषु न अन्येषु स्तम्भेष्वित्यर्थः।

शालास्विति। स्तम्भद्वयमध्यवेश्मनि गवाक्षनेपथ्यगृहद्वितीयभूमि-सन्निवेशादिति।।८४-८७।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ-अनन्तर नाट्य-मण्डप की रक्षा करने के लिए चन्द्रमा की, दिशा-क्रम से इन्द्रादि लोकपालों की और उपदिशाओं में अन्य देवों की नियुक्ति की गयी।।८४।।

नेपथ्य अर्थात् परदे के पीछे प्रसाधन-कक्ष की रक्षा करने के लिए सूर्य की, आकाश में वरुण की, रङ्गमंच की रक्षा के लिए अग्नि की और वाद्य-यन्त्रों की रक्षा के लिए दिवौकस अर्थात् मेघों की प्रतिष्ठा की गयी।।८५।।

अनन्तर चारों वर्णों के अनुयायियों को खम्भों की रक्षा के लिए अधिकृत किया गया। अनन्तर बारह आदित्य और एकादश रुद्रों को खम्भों के मध्य उनकी रक्षा के लिए प्रतिष्ठित किया गया।।८६।।

अनन्तर धारणी (धरनों) के बीच पञ्च महाभूतों के अधिष्ठाता देवताओं को और

१. धारणीषु (धरणीषु) स्थिता भूताः।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

शालाओं के बीच अप्सराओं को प्रतिष्ठित किया गया। यक्षिणियां नाट्यमण्डप के सभी कक्षों में उनकी रक्षा के लिए अवस्थित हुईं। महासागर पृथ्वीतल पर अवस्थित हुआ।।८७।।

व्याख्या–रक्षणे मण्डपस्याऽथ (८४) से प्रारम्भ कर यान्येतानि नियुक्तानि (९८) पद्य तक सोलह पद्यों में नाट्यमण्डप के उस अंशविभाग का निरूपण किया गया है, जिसकी रक्षा के लिए चन्द्रमा से लेकर हर अर्थात् शिव पर्यन्त सभी देवताओं को अधिकृत किया गया। इसका निष्कर्ष यह है कि नाट्यमण्डप के भागों की रक्षा के लिए इसी प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए।

रक्षणे मण्डपस्याऽथ विनियुक्ततु चन्द्रमाः–सम्पूर्ण नाट्यमण्डप की रक्षा के लिए सौम्यप्रकृति चन्द्रमा को इसलिए अधिकृत किया गया कि सम्पूर्ण मण्डप का अधिष्ठाता सौम्य प्रकृति होना चाहिए।

यथादिक्लोकपालाश्च-दिशाक्रम से लोकपालों की नियुक्ति की गयी। वे आठ हैं–

इन्द्रो वह्निः पितृपतिनैर्ऋतो वरुणो मरुत्।
कुवेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात्।।
(अमर.१।३।२-३)

उनका क्रम इस प्रकार है–(१) पूर्वदिक्पाल-इन्द्र, (२) पूर्व-दक्षिण (आग्नेय), दिक्पाल अग्नि, (३) दक्षिण दिक्पाल–यम, (४) दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्य) दिक्पाल–निर्ऋत, (५) पश्चिम-दिक्पाल–वरुण, (६) पश्चिमोत्तर (वायव्य) दिक्पाल–वायु, (७) उत्तरदिक्पाल–कुवेर और (८) उत्तरपूर्व (ईशान्य) दिक्पाल–ईश।

विदिक्ष्वपि च मारुतः–वायु को न केवल अपने पश्चिमोत्तर कोण, अपितु दिशा-उपदिशाओं में भी रक्षा के लिए नियुक्त किया गया, क्योंकि पसीना दूर करने के कारण वे अत्यन्त उपकारी होते हैं। 'मरुत्' शब्द के दो अर्थ हैं–(१) पवन और (२) देव। **मरुतौ पवनामरौ** (अमर.३।३।५९) यहां प्रथम अर्थ विवक्षित है। इसका तात्पर्य यह है कि नाट्यमण्डप में चारों ओर खिड़कियां-झरोखे आदि होने चाहिए। साथ ही वहां पंखे आदि की व्यवस्था होनी चाहिए।

नेपथ्यभूमौ मित्रस्तु–सूर्यवाची मित्रशब्द पुल्लिंग है। नेपथ्यभूमि में इसकी उपयोगिता इसलिए है कि आहार्य-अभिनय में उज्ज्वल रत्नादि आवश्यक हैं। उनका तेज सूर्य ही सुरक्षित रख सकता है। कुछ लोग नपुंसकलिंगी मित्र शब्द को मानकर उसका अर्थ नर्तकियों का वह नपुंसक मित्र करते हैं, जिसकी योजना लज्जा परिहार के लिए नेपथ्यगृह में की जानी चाहिए। किन्तु वार्तिककार की यह विवेचना अविवेकपूर्ण है।

वेदिकारक्षणे वह्निः–वेदिका अर्थात् रंगवेदिका या रंगमंच की रक्षा के लिए अग्नि की नियुक्ति इसलिए की गयी कि वहां का अधिष्ठाता तीक्ष्ण होना चाहिए।

भाण्डे सर्वदिवौकसः–यहां दिवौकस का अर्थ स्वर्गलोक के निवासी देव न होकर आकाशविहारी मेघ है। भाण्ड का तात्पर्य तीन प्रकार के अवनद्ध वाद्य से है– अवनद्धं तु पौष्करम् (ना.शा.-२८।२)। अभिनवगुप्तपादाचार्य इसी की ओर संकेत कर रहे हैं–**भाण्ड इति त्रिपुष्करे सोपकरणे**। अवनद्ध वाद्य तीन प्रकार के होते हैं–(१) मृदङ्ग,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

(२) पणव (नगाड़ा), और (३) दर्दुर (डुग्गी)। उनकी रक्षा के लिए मेघों को इसलिए नियुक्त किया गया कि जिस प्रकार मेघों से मन्द्र और गम्भीर नाद निकलता है उसी प्रकार उन अवनद्ध वाद्यों के भी स्वर निकलने हैं।

वर्णाश्चत्वार एवाऽथ स्तम्भेषु विनियोजिताः–अभिनवगुप्तपाद 'वर्ण' शब्द का अर्थ देवताविशेष करते हैं। द्वितीय अध्याय के विचार से इसका अर्थ ब्राह्मणदि चार वर्ण प्रतीत होता है।

आदित्याश्चैव रुद्राश्च स्थिताः स्तम्भान्तरेष्वथ–यहां आदित्य और रुद्र का अभिप्राय गणदेवता से है। **आदित्या द्वादश प्रोक्ताः** इस वचन के अनुसार बारह आदित्य हैं। 'आदित्य' सूर्य का अपर पर्याय है। उसके बारह नाम प्रसिद्ध हैं– (१) मित्र, (२) रवि, (३) सूर्य, (४) भानु, (५) खग, (६) पूषा, (७) हिरण्यगर्भ (८) मरीचि, (९) आदित्य, (१०) सविता, (११) अर्क और (१२) भास्कर। **रुद्राश्चैकादश स्मृताः**– ग्यारह रुद्रों की गणना इस प्रकार है–

अजैकपादर्हिबुघ्नो विरूपाक्षः सुरेश्वरः ।
जयन्तो बहुरूपश्च त्र्यम्बकोऽप्यपराजितः ।।
वैवस्वतश्च सावित्रो हरो रुद्रा इति स्मृताः ।

(१) अज, (२) एकपाद् , (३) अहिर्बुघ्न, (४) विरूपाक्ष, (५) सुरेश्वर, (६) जयन्त, (७) अपराजित, (८) वैवस्वत, (९) सावित्र, (१०) हर और (११) रुद्र ये एकादश शिवस्वरूप एकादश रुद्रों में परिगणित हैं। वे द्वादश आदित्य और एकादश रुद्र द्वितीय अध्याय में वर्णित वर्णचतुष्क स्तम्भों के अन्तराल में उनकी रक्षा के लिए अधिकृत किये गए, अन्य स्तम्भों के अंतराल में नहीं। यह अभिनवभारतीसम्मत तात्पर्य है।

शालास्वप्सरसस्तथा–मञ्जुकेशी से लेकर कलमा तक अप्सराओं को उन शालाओं की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया था,जो दो खम्भों के बीच होती थीं। उनमें खिड़कियों, नेपथ्यगृह आदि का विभाग रहता था।।८४-८७।।

द्वारशाला[१]नियुक्तौ तु कृतान्तः काल एव च ।
स्थापितौ द्वारपत्रेषु[१क] नागमुख्यौ महाबलौ ।।८८।।
देहल्यां यमदण्डस्तु शूलं तस्योपरि स्थितम् ।
द्वारपालौ स्थितौ चोभौ नियतिर्मृत्युरेव च ।।८९।।
पार्श्वे च[२] रङ्गपीठस्य महेन्द्रः स्थितवान् स्वयम् ।
स्थापिता मत्तवारण्यां विद्युद् दैत्यनिषूदनी ।।९०।।
स्तम्भेषु मत्तवारण्याः स्थापिताः परिपालने[३] ।
भूतयक्षपिशाचाश्च गुह्यकाश्च महाबलाः[४] ।।९१।।
जर्जरे तु[५] विनिक्षिप्तं वज्रं दैत्यनिबर्हणम् ।
तत्पर्वसु[६] विनिक्षिप्ताः सुरेन्द्राः ह्यमितौजसः ।।९२।।

---

१. शाखा
१क. पात्रेषु।
२. तु।
३. परिरक्षणे।
४. भूता यक्षाः पिशाचाश्च गुह्यकाश्च महाबलाः।
५. चैव निक्षिप्तं।
६. च निक्षिप्ताः।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

शिरःपर्वस्थितो[1] ब्रह्मा द्वितीये शङ्करस्तथा ।
तृतीये च स्थितो[2] विष्णुश्चतुर्थे स्कन्द एव च ।।९३।।
पञ्चमे च महानागाः शेषवासुकितक्षकाः ।
एवं विघ्नविनाशाय स्थापिता जर्जरे सुराः ।।९४।।
रङ्गपीठस्य मध्ये तु स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठितः ।
[3]इष्ट्यर्थं रङ्गमध्ये तु क्रियते पुष्पमोक्षणम् ।।९५।।
पातालवासिनो ये च यक्षगुह्यकपन्नगाः ।
अधस्ताद् रङ्गपीठस्य रक्षणे ते[4] नियोजिताः ।।९६।।
नायकं रक्षतीन्द्रस्तु नायिकां च[5] सरस्वती ।
विदूषकमथौङ्कारः[6] शेषास्तु प्रकृतीर्हरः ।।९७।।
यान्येतानि नियुक्तानि दैवतानीह रक्षणे ।
एतान्येवाऽधिदैवानि[7] भविष्यन्तीत्युवाच सः ।।९८।।

अन्वयः–कृतान्तः काल एव च द्वारशाखानियुक्तौ। द्वारपत्रेषु महाबलौ नागमुख्यौ स्थापितौ। देहल्यां तु यमदण्डः स्थितः। तस्य उपरि शूलं स्थितम्। नियतिः मृत्युरेव च उभौ द्वारपालौ स्थितौ। रङ्गपीठस्य च पार्श्वे महेन्द्रः स्वयं स्थितवान्। मत्तवारण्यां दैत्यनिषूदनी विद्युत् स्थापिता। स्तम्भेषु मतवारण्याः परिपालने भूतयक्षपिशाचाश्च महाबलाः गुह्यकाश्च स्थापिताः। जर्जरे तु दैत्यनिबर्हणं वज्रं विनिक्षिप्तम्। हि तत्पर्वसु च अमितौजसः सुरेन्द्राः विनिक्षिप्ताः। ब्रह्मा शिरःपर्वस्थितः, तथा शङ्करः द्वितीये स्थितः, विष्णुः च तृतीये स्थितः, चतुर्थे च स्कन्द एव स्थितः। पञ्चमे च शेषवासुकितक्षकाः महानागाः स्थिताः। एवं सुराः विघ्नविनाशाय जर्जरे स्थापिताः। ब्रह्मा स्वयं तु रङ्गपीठस्य मध्ये प्रतिष्ठितः। रङ्गमध्ये तु इष्ट्यर्थं पुष्पमोक्षणं क्रियते। ये च यक्षगुह्यकपन्नगाः पातालवासिनः, ते अधस्तात् रङ्गपीठस्य रक्षणे नियोजिताः। इन्द्रस्तु नायकं रक्षति, सरस्वती च नायिकां रक्षति। अथ ओङ्कारः विदूषकं रक्षति। हरस्तु शेषाः प्रकृती रक्षति। यानि एतानि दैवतानि इह रक्षणे नियुक्तानि, एतान्येव अधिदैवानि भविष्यति' इति सः उवाच।।८८-९८।।

अभिनव-भारती

नागमुख्याविति। अनन्तगुलिकौ। द्वारपत्रं कवाटात्मकम्। द्वारबहुत्वाच्च बहुवचनम्। देहल्यामिति। द्वाराधस्तनकाष्ठे। तस्येति। शूलमिति। एतेन प्रक्रान्तद्वारमेव परामृष्टम्। तेनोर्ध्वकाष्ठे उत्सङ्गशब्दवाच्ये त्रिशूलमित्यर्थः। पार्श्वे स्वयमिति। राजादेस्तत्स्थानमित्युक्तम्। चकारात् स्वदिशि अंशेनाऽवस्थानमनुस्मृतम् । विद्युदिति वज्रायुधरूपा। स्तम्भेष्वपि चतुर्षु यथाक्रमं तद्भूतादयः।

१. शिरःपार्श्वे ततो
२. भगवान्
३. इत्यर्थं
४. विनियोजिताः।
५. तु।
६. अथोङ्कारः।
७. एतेषामधिदेवास्तु।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

ते च नाट्यतत्त्वविदः। अत एव विघ्नैः सह ये (तें) नयेन मिलिता इति द्रष्टव्यम्। एतेन सिद्धिविघातका भेदाख्येनाऽप्युपायेन दुर्बलीकर्तव्या इति सूचितम्। प्रतिष्ठित इति। सदैव सन्निहितो वास्तुमध्य इत्यर्थः। कवेश्च सन्निधानं सूचितम्।

अधस्तादिति। येन सुरङ्गाखननादिविघ्नकरणं निवार्यत इत्यर्थः। प्रधानपात्राणि पृथग् रक्षणीयानीत्याह–नायकमिति। हास्यशृङ्गाराङ्गत्वाद् विदूषकमित्युक्तम्। अत एव दशरूपकप्रयोगसूचनमेतत्, समवकारे विदूषकाभावात्। हर इति, बहुमूर्तिप्रथमत्वात्। देवता एव दैवतम् ।।८८-९८।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ और व्याख्या–यमराज और काल की द्वार-शालाओं, द्वार-कक्षों की रक्षा करने के लिए नियुक्त किये गये। द्वारों के कपाटों की रक्षा के लिए अनन्त और गुलिक नामक प्रधान नागराज प्रतिष्ठित किये गए। आज भी नागपंचमी आदि अवसरों पर नागों के चित्र दरवाजों पर अंकित किये जाते हैं।

देहली (द्वार की चौखट) की रक्षा के लिए यमदण्ड और उसके ऊपर त्रिशूल स्थापित किया गया। यहां द्वार की चौखट का तात्पर्य मुख्य द्वार की चौखट से है। जिसे 'देहली' की संज्ञा है, और उसके ऊपर की और अवस्थित लकड़ी को उत्संग। मुख्य द्वार पर दो द्वारपाल नियुक्त किए गए–नियति और मृत्यु। रङ्गपीठ (रंगमंच) के पार्श्व (पास) में देवराज इन्द्र स्वयम् उपस्थित हुए। मत्तवारणी की रक्षा के लिए दैत्यों की संहारकारिणी विद्युत् को स्थापित किया गया, क्योंकि वह इन्द्र का वज्रायुध है। (रङ्गपीठ के पास उसके प्रमाण की मत्तवारणी बनाने का विधान है (द्र.ना.शा. २।६२-६७)। शब्दस्तोममहानिधि में मत्तवारण शब्द उपलब्ध है, जिसका अर्थ वरामदा किया गया है।) मत्तवारणी के चार स्तम्भों में उनकी रक्षा के लिए यथाक्रम महाबली भूत, यक्ष, पिशाच और गुह्यकों की स्थापना की गयी। वे सभी नाट्यशास्त्र के तत्त्वज्ञ थे। वे विघ्नकारी तत्त्वों में भेदनीति का प्रयोग कर उनको कमजोर कर सकते थे। अत एव वे वहां नियुक्त किए गये थे।

जर्जर –ध्वजदण्ड की रक्षा के लिए उसके ऊपर इन्द्रायुध वज्र प्रतिष्ठित किया गया, जो दैत्यों का विनाशक था। उसके पांच पर्वों (गांठों) की रक्षा के लिए अपरिमित तेजस्वी देवों की नियुक्त की गयी, जिनमें शिखर से लेकर अन्तिम पर्व तक यथाक्रम (१) ब्रह्मदेव, (२) शंकर, (३) भगवान् विष्णु, (४) कुमार कार्तिकेय और (५) शेष-वासुकि और तक्षक नागराज स्थापित किये गए। इस प्रकार विघ्न दूर करने के लिए उन पांच पर्वों पर यथाक्रम दिव्ययोनि के जीव नियुक्त किये गए।

रङ्गपीठ के मध्य में सदा-सर्वदा के लिए ब्रह्मदेव को नियुक्त किया गया। अत एव रङ्गमंच के मध्य में उनकी इष्टि अर्थात् पूजा के लिए पुष्प-वर्षा की जाती है।

पाताललोक के निवासी जो यक्ष, गुह्यक और पन्नग योनि के जीव थे, उन्हें रंगमंच के नीचे नियुक्त किया गया, जिससे सुरंग-खनन आदि विघ्नों से उसकी रक्षा की जा सके।

नाट्यप्रयोग के प्रधान पात्रों की रक्षा पृथक् रूप से की जानी चाहिए। अत एव

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

कहते हैं–) देवराज इन्द्र नायक की रक्षा करते हैं और वाग्देवी सरस्वती नायिका की। ओंकार विदूषक की रक्षा करते हैं।

शंकर अन्य सभी पात्रों की रक्षा करते हैं (वह हास्य और शृंगार रस का उपयोगी पात्र है। 'समवकार'–रूपक में विदूषक नहीं रहता। इस प्रकार दश रूपकों के नाट्यप्रयोग की सूचना दी गयी है।)

इस प्रकार नाट्यमण्डप की रक्षा के लिए विभिन्न स्थानों पर नियुक्ति करने के अनन्तर) ब्रह्मदेव ने यह कहा कि जिन देवताओं को जिन-जिन स्थानों पर रक्षा के लिए नियुक्त किया गया है, वे देवता ही उन-उन स्थानों के अधिष्ठाता देवता होंगे।।८८-९८।।

एतस्मिन्नन्तरे देवैः सर्वैरुक्तः पितामहः ।
साम्ना तावदिमे विघ्नाः स्थाप्यन्तां वचसा त्वया ।।९९।।
पूर्वं साम प्रयोक्तव्यं द्वितीयं दानमेव च ।
तयोरुपरि भेदस्तु ततो दण्डः प्रयुज्यते ।।१००।।

अन्वयः– एतस्मिन् अन्तरे पितामहः सर्वैः देवैः उक्तः–'त्वया तावत् इमे विघ्नाः साम्ना वचसा स्थाप्यन्ताम्। पूर्वं साम प्रयोक्तव्यम्, द्वितीयं दानमेव च प्रयोक्तव्यम्। तयोः उपरि तु भेदः प्रयुज्यते, ततः दण्डः प्रयुज्यते।।९९-१००।।

अभिनव-भारती

अथ नाट्यतत्त्वजाते तन्निरूपणार्थमुपक्रमते–एतस्मिन्निति। नाऽशक्तस्यैव सामाऽङ्गीकरोति दुर्जन इति पूर्वं रक्षाकरणम्। इत्युक्तद्वय (सर्वैरुक्त) इति। कविरनुविधेयवचनो भवतीति दर्शयति। सामादिप्रयोगे तावच्छब्दसूचितं क्रमं स्फुटयति–पूर्वं सामेत्यादि। तत इति। सर्वोपायप्रतिहताविति यावत्।।९९-१००।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ– इसी बीच में सभी देवों नें पितामह ब्रह्मदेव से कहा–'भगवन् ! आप विघ्नकारी तत्त्वों को साम (सांत्वनापूर्ण) वचनों से शान्त करें। क्योंकि चार उपायों में सर्वप्रथम सामनीति का और अनंतर दान-नीति का प्रयोग करना चाहिए। उन दोनों उपायों के पश्चात् दण्डनीति के प्रयोग का विधान है।।९९-१००।।

व्याख्या–अब नाट्यतत्त्वों के समूह में उसके निरूपण का उपक्रम किया जा रहा है। चौरासीवे पद्य से अठ्ठानवेवे पद्य तक नाट्यमण्डप की रक्षा का विधान इसलिये किया गया है कि दुर्जन व्यक्ति दुर्बल व्यक्ति की सामनीति को नहीं समझता। अनन्तर देवताओं नें साम-दान-भेद-दण्ड-उपाय चतुष्टय में पितामह ब्रह्मदेव से सामनीति के प्रयोग का अनुरोध किया। क्योंकि इन उपायों का यथाक्रम अवलम्बन करते हुए जब सभी उपाय निष्फल होते हैं, तब अन्त में दण्डनीति का विधान है।।९९।।१००।।

देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा विघ्नानुवाच[१] ह ।
कस्माद् भवन्तो नाट्यस्य विनाशाय समुत्थिताः[२] ।।१०१।।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षोऽब्रवीद्वचः ।
दैत्यैर्विघ्नगणैः सार्धं सामपूर्वमिदं ततः[३] ।।१०२।।

१. वचनमब्रवीत् ।
२. अलं वो मन्युना दैत्या विषादं त्यजतानघाः, विनाशार्थं समुपस्थिताः।
३. वचः।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

योऽयं भगवता सृष्टो नाट्यवेदः सुरेच्छया।
प्रत्यादेशोऽयमस्माकं सुरार्थं भवता कृतः ।।१०३।।
तन्नैतदेवं कर्तव्यं त्वया लोकपितामह!।
यथा देवास्तथा दैत्यास्त्वत्तः सर्वे[1] विनिर्गताः ।।१०४।।

अन्वय–ब्रह्मा देवानां वचनं श्रुत्वा विघ्नान् उवाच ह–'भवन्तः नाट्यस्य विनाशाय कस्मात् समुपस्थिताः?' ततः ब्रह्मणः वचनं श्रुत्वा दैत्यैः विघ्नगणैः सार्द्धं विरूपाक्षः सामपूर्वम् इदं वचः अब्रवीत्–'भगवता सुरेच्छया योऽयं नाट्यवेदः सृष्टः, भवता सुरार्थम् अस्माकम् अयं प्रत्यादेशः कृतः। लोकपितामह! त्वया एवं तत् एतम् न कर्तव्यम्। त्वन्तः यथा देवाः तथा सर्वे दैत्याः विनिर्गताः।।१०१-१०४।।

अभिनव-भारती

तत्र ज्ञाताभिप्रायः प्रतिसमाधातुं सुशक इत्यभिप्रायेणाह देवानामिति। सुरार्थमित्यस्यैव दाढर्यायोक्तं सुरेच्छयेति। प्रत्यादेश इति खलीकार इत्यर्थः। भवतेति। यस्याऽनुचितमेतदित्यर्थः। अनौचित्यमेव लोकपितामहेत्यामन्त्रणेनाह। तदेव पितामहत्वं दर्शयति–यथेति। आ(त्मनोभ) वा देवा दैत्याश्चेत्याह–सर्व इति।।१०१-१०४।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–देवताओं की बात सुनकर ब्रह्मदेव नें उन विघ्नकारी तत्त्वों से कहा–''आप लोग इस नाट्यप्रयोग का विध्वंस करने के लिये क्यों उठ खड़े हो गए?'' अनन्तर ब्रह्मदेव की बात सुनकर दैत्यों और विघ्नकारी तत्त्वों के साथ (उनके प्रतिनिधि के रूप में) विरूपाक्ष ने सामवचनों का प्रयोग इस प्रकार किया–'आपने देवों की इच्छा से जो इस नाट्यवेद की सृष्टि की है, देवताओं के लिये वह आपने हमारा तिरस्कार किया है। लोकों के (समस्त सृष्टि के) पितामह ब्रह्मदेव जी! इसप्रकार आपको यह नहीं करना चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार आपसे देवताओं का अवतरण हुआ है, उसी प्रकार सभी दैत्यों का भी हुआ है।।१०१-१०४।।

व्याख्या–यहां पर **'देवानां वचनं श्रुत्वा'** का अर्थ केवल देवताओं का वचन सुनकर' यह नहीं है, अपितु 'उनके अभिप्राय को समझकर' यह है। क्योंकि किसी के अभिप्राय को समझकर ही, उसका समाधान करना सम्भव होता है। तदनुसार ब्रह्मदेव विघ्नकारी तत्त्वों से प्रश्न कर रहे हैं। विरूपाक्ष के उत्तर में **'सुरेच्छया'** का तात्पर्य यद्यपि सुरार्थम् (देवताओं के लिए) यही है, तथापि उस पर जोर देने के लिए यह प्रश्न है कि आपने केवल देवों की इच्छा का ध्यान रखा, असुरों की नहीं। लोकपितामह सम्बोधन की सार्थकता यह है कि आप सम्पूर्ण विश्व के सर्जक हैं। आपको सब पर समान दृष्टि रखनी चाहिए। केवल देवताओं के प्रति पक्षपातपूर्ण दृष्टि रखकर तदनुसार आचरण आप जैसे लोगों के लिए अनुचित है। 'नाट्यप्रयोग में दैत्यों के पराभव का चित्रण हमारा तिरस्कार है, जो आपके खलत्व को घोषित करता है', इस अर्थ का व्यञ्जक **प्रत्यादेशोऽयमस्माकं सुरार्थं भवता कृतः** यह पद्यार्थ है। 'लोकपितामह' सम्बोधन का स्पष्टीकरण ही इस पद्यार्थ में है–

---

१. पूर्वविनिर्गताः।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

यथा देवास्तथा दैत्यास्त्वत्तः सर्वे विनिर्गताः ।।१०१-१०४।।
विघ्ना[1]नां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
अलं वो मन्युना दैत्या! विषादस्त्यज्यतामयम्[2] ।।१०५।।

अन्वयः–ब्रह्मा विघ्नानां वचनं श्रुत्वा वचनम् अब्रवीत्– 'दैत्याः! वः मन्युना अलम्, अयं विषादः त्यज्यताम्।।१०५।।

अभिनव-भारती

वचनमिति। सुपरिहरमेतत्। नाऽत्र भूयान् प्रयास इत्येकवचनेन दर्शयति। अत एव सिद्धवदुपक्रमते–अलं वो इति। मिथ्याज्ञानगृहीतसर्पत्रासवद्यो भ्रान्तिमात्रकृत इत्यर्थः। दैत्यानामशुभकारिता लोकप्रसिद्धा। कुरु (कृत) रङ्गविभागश्चैषां चेष्टितमस्तु। देवानां तद्विपर्यय इति नाट्यस्य न तात्पर्यं येन भवतां मन्युः।।१०५।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–ब्रह्मदेव ने विघ्नकारी तत्त्वों की बात सुनकर यह कहा– 'दैत्यों! आप क्रोध न करें। इस विषाद का परित्याग करें।'

व्याख्या– ब्रह्मा वचनमब्रवीत् इस चरण में 'वचन' शब्द का एक वचन में प्रयोग यह सूचित कर रहा है कि विरूपाक्ष के क्रोध का परिहार करना सरल है, उसमें विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं है। अत एव अलं वो इत्यादि उत्तरार्द्ध का उपक्रम सिद्ध- वचनसदृश है। अलं वो मन्युना इत्यादि का तात्पर्य यह है कि आपका यह क्रोध भ्रमजन्य है। जिस प्रकार कोई रस्सी को देखकर और उसे सर्प समझ कर फिर घबड़ा जाना है, उसीप्रकार आपका यह क्रोध है। दैत्य सदा अशुभ कार्य करते हैं, यह लोक प्रसिद्ध है। नाट्य के प्रयोग में उनकी विध्वंसकारिता को और देवों की रचनात्मकता को चित्रित करना इतना ही मात्र इस नाट्य-प्रयोग का तात्पर्य नहीं है, जिससे आप क्रुद्ध हो रहे हैं। इसका तात्पर्य इससे भिन्न है।।१०५।।

भवतां देवतानां च शुभाशुभविकल्पकः[3] ।
कर्मभावान्वयापेक्षी[4] नाट्यवेदो मया कृतः ।।१०६।।

अन्वयः–मया भवतां देवतानां च शुभाशुभविकल्पकः कर्मभावान्वयापेक्षी नाट्यवेदः कृतः।।१०६।।

अभिनव-भारती

कि तर्हीत्याह। शुभकारिणः शुभं फलमशुभकारिणोऽशुभं फलमित्येतावदेवास्माकं प्रतिसाक्षात्कारकल्पे नाट्ये प्रदर्शनीयम्। न तत्र देवेषु दैत्येषु वा कश्चिद् भरः। अत एव भवतामपि धर्मादौ यः सदुपायः, सोऽपि शुभविपाकत्वेनैव दर्शितः। अत एव शुभग्रहणमेकतरपक्षशैथिल्यदर्शनाय दैत्यसम्बन्धनार्थं प्रथममुपात्तम्। शुभमशुभ च धर्माधर्मरूपं सुखदुःखफलत्वेन विभेदेन कल्पयत्यध्यवसाययति नाट्यवेदः। कीदृक्?कर्मभावान्वयापेक्षीति। तद्यथा–धर्मो

---

१. देवानां, विरुपाक्षवचः।
२. विषादं त्यजमानघाः।
३. विकल्पकैः।
४. पेक्षो।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

दानं स्नानमित्यादिः। अधर्मो हिंसा स्तेयमित्यादिः। भाव आशयः स्त्री(स्व) प्रसङ्गोदिता स्वार्थतापरार्थताद्यभिसन्धिरित्यादिः। अन्वयोऽभिजनः आर्यावर्तादिर्ब्राह्मण्यश्चेति। तानपेक्षते सहकारितया।

एतदुक्तं भवति–अस्मिन् देशेऽस्मिन् काले ईदृशेन कर्मणा यः शुभमशुभं चाऽर्जयति, स एवंविधफलभागी भवतीति न तावदिहोपदिश्यते। विकल्पक इति द्वौ णिचौ।।१०६।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ– मैंने आप(दैत्यों) के और देवताओं के शुभ-अशुभ कर्मों के शुभाशुभ-फल के द्योतक धर्म-अधर्म आदि कर्म-भाव-वर्ण-कुल आदि के सहकारी रूप में निरूपण करनेवाले नाट्यवेद की रचना की है।।१०६।।

व्याख्या– प्रत्येक नाट्य-प्रयोग साक्षात्कार के समान होता है। उस प्रयोग के मंचनमात्र का यह उद्देश्य होता है कि जो शुभ कार्य करता है, वह शुभ फल प्राप्त करता है और जो अशुभ कार्य करता है वह अशुभ फल प्राप्त करता है। दैत्यों अथवा देवताओं किसी एक के प्रति पक्षपात करना हमारा उद्देश्य नहीं है। अत एव आप दैत्यों के द्वारा भी धर्म आदि के विषय में जिस सत्य उपाय को प्रदर्शित किया गया है, उसका परिणाम भी शुभ ही प्रदर्शित किया गया है। इसी दृष्टि से **नाट्यवेद** का प्रथम विशेषण पूर्वार्द्ध है, जिसमें 'शुभाशुभविकल्पकः' पद के अन्तर्गत 'शुभ' पद का सम्बन्ध प्रथम 'भवतां' के साथ है, जो यह किसी एक पक्ष के प्रति आग्रह को नहीं दर्शाता। **शुभाशुभविकल्पकः** का समासविग्रह इस प्रकार होगा– **'शुभं धर्मरूपं सुख-फलं चेत् विभेदेन कल्पयति, अध्यवसाययति अशुभं च** अधर्मरूपं दुःखफलत्वेन विभेदेन कल्पयतीति शुभाशुभविकल्पकः।' 'विकल्पकः' यहां पर दो णिच् प्रत्यय प्रयुक्त हैं। (प्र० अभिनव भारती– 'विकल्पक इति द्वौ णिचौ।')

नाट्यवेद का दूसरा विशेषण है–**कर्मभावान्वयापेसी**। इसका समासविग्रह इसप्रकार होगा–कर्माणि भावाः अन्वयश्चेति कर्मभावान्वयाः, तान् अपेक्षतें इति कर्मभावान्वयापेक्षी।" कर्म का तात्पर्य धर्म-अधर्म से है। अभिनवगुप्तपादाचार्य अनुभाव (चेष्टा) की दृष्टि से स्नान-दानादि को धर्म-कर्म के अन्तर्गत एवं चोरी-हिंसा आदि को अधर्म-कर्म के अन्तर्गत समाविष्ट करते हैं। 'भाव' का अर्थ स्वार्थ-परार्थ आदि भाव हैं। 'अन्वय' का अर्थ वंश और उसके वर्ण-जाति और तदनुरूप कर्म से है। नाट्यवेद सहकारी कारण के रूप में इन सबकी अपेक्षा करता है। इसका निष्कर्ष यह है कि नाट्यवेद प्रेक्षकों को केवल यह उपदेश नहीं देता कि वह क्या करे अथवा क्या न करे। वह प्रेक्षकों के सामने अपने नाट्य प्रयोगों के माध्यम से यह प्रत्यक्ष कराता है कि विशिष्ट देश अथव विशिष्ट काल में विशिष्ट कर्म द्वारा जो शुभ अथवा अशुभ फल अर्जित किया जाता है, उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः।** संचित-क्रियभाग और प्रारब्ध कर्मों में परमेश्वर की कृपा से संचित और क्रियमाण कर्मों का क्षय संभव है। प्रारब्ध कर्मों को अवश्य भोगना पड़ता है। अब प्रेक्षक को यह निर्णय करना है कि उसे क्या करना चाहिए।।१०६।।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

नैकान्ततोऽत्र भवतां देवानां चा[१]नुभावनम्।
त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।।१०७।।

अन्वयः– अत्र एकान्ततः भवतां देवानां च अनुभावनं न, नाट्यम् अस्य सर्वस्य त्रैलोक्यस्य भावानुकीर्तनम् ।।१०७।।

अभिनव-भारती

ननु चैवमप्यस्मत्पृष्ठे किमेतद् योजितमित्याह–नैकान्तत इति। अयं भावः– न युष्मत्पृष्ठे केनचिदेतद् योजितम्। देवासुरस्य बहिर्यथास्वस्थमवस्थानम्। अत्रेति नाट्यवेदे। न देवासुराणामेकान्तेनाऽनुभावनम्। नैव तेऽनुभाव्यन्ते केनचित् प्रकारेण।

तथाहि– तेषु न तत्त्वेन धीः। न सादृश्येन यमलकवत्। न भ्रान्तत्वेन रूप्यस्मृतिपूर्वकशुक्तिरूप्यवत्। नाऽऽरोपेण सम्यग्ज्ञानबाधानन्तरमिथ्याज्ञान-रूपेण मुखचन्द्र इतिवत्। न तदध्यवसायेन गौर्वाहीकवत्। नोत्प्रेक्ष्यमाणत्वेन चन्द्रमुखवत्। न तत्प्रतिकृतित्वेन चित्रपुस्तवत्। न तदनुकारेण गुरुशिष्यव्याख्या-हेवाकवत्। न तात्कालिकनिर्माणेनेन्द्रजालवत्। न युक्तिविरचिततदाभासतया हस्तलाघवादिमायावत्। सर्वेष्वेतेषु पक्षेष्वसाधारणतया द्रष्टुरौदासीन्ये रसास्वादायोगात्। कवेश्च नियतवर्णनीयनिश्चितत्वे काव्यस्यैवाऽसम्पत्तेरनौ-चित्यावर्जनयोगात्। लौकिकमिथुनदृशीव सांसारिकहर्षक्रोधान्वयितापत्तेरुभय-दर्शनाकुलतया मुख्यदृष्टौ प्रयोक्तृदृष्टौ तद्धि सम्पत्त्य(द्विसंवित्त्य) भावात्।

किं तर्ह्येतत्? आह–त्रैलोक्यस्येति। एतदुक्तं भवति–एतादृश(एतादृगभिः)–तै रामादयो न कदाचन प्रमाणपथमवतार्यन्ते यदाऽऽगमेन वर्ण्यन्ते। तदा तद्विशेषबुद्धिः यद्यपि रामायणप्रायादेकस्मात् महावाक्यादुल्लसति, तथापि वर्तमानतयैव विशेषाणां सम्भाव्यमानार्थक्रियासामर्थ्यात्मकसालक्षण्य-पर्यवसानात्। न च तेषां वर्तमानतेत्युपगता तावद् विशेषबुद्धिः। काव्येष्वपि हृदयमेव एव (हृदय एव) तावत् साधारणीभावो विभावादीनां जाता (तः)। तत्रापि कथामात्रे साधारणीभावः सम्भवति यद्यपि, तथापि 'एवं ये कुर्वन्ति तेषामेतद् भवति' इति वाक्यवद् रञ्जनातिशयाभावान्न चित्तवृत्ते (त्ति) र्निर्णयगता भवति।

काव्ये तु गुणालङ्कारमनोहरशब्दार्थशरीरे लोकोत्तररसप्राणके हृदयसंवादवशात् निमग्नाकारिका तावद् भवति चित्तवृत्तिः। किन्तु सर्वस्य प्रत्यक्षसाक्षात्कारकल्पा तत्र न धीरुदेति।

नाट्ये तु परमार्थिकं किञ्चिदद्य मे कृत्यं भविष्यतीत्येवंभूताभिसन्धिसंस्कारा-भावात् सर्वपरिषत्साधारणप्रमोदसारापर्यन्तविरसना (समा) दरणीय-लोकोत्तरदर्शनश्रवणयोगी भविष्यामीत्यभिसन्धिसंस्कारादुचितगीतातोद्य-चर्वणाविस्मृतसांसारिकभावतया विमलमुकुरकल्पीभूतनिजहृदयः, सूच्याद्यभिनयावलोकनोद्भिन्नप्रमोदशोकादितन्मयीभावः, पाठ्याकर्णन-

१. चापि भावनम्, चात्र भावनम्।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

पात्रान्तरप्रवेशवशात् समुत्पन्ने देशकालविशेषावेशानालिङ्गिते सम्यङ्मिथ्या-संशयसम्भावनादिज्ञानविज्ञेयत्वपरामर्शानास्पदे, रामरावणादिविषयाध्यवसाये, तत्संस्कारानुवृत्तिकारणभूतसहचरहृद्यवस्तुरूपगीतातोद्यप्रमदानुभवसंस्कारसूचितसमनुगततदुक्तरूपरामाध्यवसायसंस्कार एव भवन् पञ्चषैर्दिवसैः सचमत्कारतदीयचरितमध्यप्रविष्टस्वात्मरूपमतिः स्वात्मद्वारेण विश्वं तथा पश्यन् प्रत्येकं सामाजिको देशकालविशेषणापरामर्शेन एवंकारिणामिदमिति लीढा (लिङ्ग)त्मकविधिसमर्पितं संविज्जातीयमेव संविद्विशेषरव्यञ्जकप्राणवल्लभाप्रतिमरसास्वादसहचररम्यगीतातोद्यादिसंस्काररसा(नुभव) वशेन हृदयाभ्यन्तरनिखातं तत एवोत्पुङ्खशतैरपि म्लानिमात्रमप्यभजमानं भजंस्तत्त-च्छुभाशुभप्रेप्साजिहासासततस्यूतवृत्तित्वादेव शुभमाचरत्यशुभं समुज्झति। इदानीमुपायसंवेदनालाभात् तदिदमनुकीर्तनमनुव्यवसायविशेषो नाट्या-परपर्यायः। नानुकार इति भ्रमितव्यम्। अनेन भाण्डेन राजपुत्रस्याऽन्यस्य वानुकृतेऽन्या (कृतावन्या) दिबुद्धेरभावात्। तद्धि विका(क)रणमिति प्रसिद्धं हासमात्रफलं मध्यस्थानाम्। यदभिप्रायेण मुनिर्वक्ष्यति–

परचेष्टानुकरणाद्धासः समुपजायते (अ. ७-१०) इति।।

तत्पक्षीयाणान्तु तदेव द्वेषासूयानि(नु)वृत्त्यादिफलम् । तद्वद्ध्यैव हि दैत्यानां हृदयक्षोभः 'एवम्भूता वयमुपहासभाजनम्' इति। उपहास्यताभीरवश्च निवर्तन्ते ततः, न तूपदेशेन।

नन्वेवं तावता नियतानुकारो माभूत्। अनुकारेण तु किमपराद्धम्? न किञ्चिदसम्भवत्वाद् ऋते। अनुकार इति हि सदृशकरणम्। तत् कस्य। न तावद्रमादेः, तस्याऽननुकार्यत्वात्। एतेन प्रमदादिविभावानामनुकरणं पराकृतम्।

न चित्तवृतीनां शोकक्रोधादिरूपाणाम्। न हि नटो रामसदृशं स्वात्मनः शोकं करोति, सर्वथैव तस्य तत्राऽभावात्, भावे वाऽननुकारत्वात्। न चान्यद् वस्त्वस्ति यच्छोकेन सदृशं स्यात्। अनुभावांस्तु करोति, किन्तु सजातीयानेव, न तु तत्सदृशान्। साधारणरूपस्य कः केन सादृश्यार्थः? त्रैलोक्यतर्तिनः सदृशत्वन्तु न विशेषात्मना यौगपद्येनोपपद्यते। कदाचित् क्रमेण नियत एवाऽनुकृतः स्यात्। सामान्यात्मकत्वे कोऽनुकारार्थः? तस्मादनियतानुकारो नाट्यमित्यपि न भ्रमितव्यम्। अस्मदुपाध्यायकृते 'काव्यकौतुके'ऽप्ययमेवाऽभिप्रायो मन्तव्यः। न त्वनियतानुकारोऽपि।

तेनाऽनुव्यवसायवत् विशेषविषयीकार्यं नाट्यम् । तथा चाऽऽहार्यविशेषादिना निवृत्ते तद्देशकालचैत्रमैत्रादिनटविशेषप्रत्यक्षाभिमाने विशेषलेशोपक्रमेण च विना प्रत्यक्षाप्रवृत्तेरायाते रामादिशब्दस्याऽत्रोपयोगात् प्रसिद्धतदर्थतयाऽऽदरणीयचरितवाचकस्याऽसम्भावनामात्रनिराकरणेनाऽनुव्यवसायस्य प्रत्यक्षकल्पनाट्ये हृद्यगीताद्यनुस्यूततया चमत्कारस्थानत्वाद् हृदयानुप्रवेशयोग्यत्वमभिनयचतुष्टयेन स्वरूपप्रच्छादनं, प्रस्तावनादिना नटज्ञानजसंस्कारसाचिव्यं, तेन रञ्जकसामग्रीमध्यानुप्रविष्टेन प्रच्छादितस्वस्वभावेन प्राक्प्रवृत्तलौकिकप्रत्यक्षानुमानादिजनितसंस्कारसहायेन सहृदयसंस्कारसचिवेन

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

हृदयसंवादतन्मयीभावनासहकारिणा प्रयोक्त्रा दृश्यमानेन योऽनुव्यवसायो जन्यते सुखदुःखाद्याकारतत्तच्चित्तवृत्तिरूपरूषितनिजसंविदानन्दप्रकाशमयः अत एव विचित्रो रसनास्वादनचमत्कारचवर्णनिर्वेशभोगाद्यपरपर्यायः तत्र यदवभासते वस्तु तन्नाट्यम्। तच्च ज्ञानाकारमात्रमारोपितं स्वरूपं सामान्यात्मकं तत्कालनिर्मितरूपं चान्यद् वा किञ्चिदस्तु। नाऽत्राऽप्रस्तुतलेखनेनाऽऽत्मनो दर्शनान्तरकथापरिचयप्रकटनफलेन प्रकृतवस्तुनिरूपणविघ्नमाचरन्तः सहृदयान्खेदयामः।

तस्मादनुव्यवसायात्मकं कीर्तनं रूपितविकल्पसंवेदनं नाट्यम्, तद्वेदनवेद्यत्वात्। न त्यनुकरणरूपम्। यदि त्वेवं मुख्यलौकिककरणानुसारितयाऽनुकरणमित्युच्यते तन्न कश्चिद् दोपः। स्थिते वस्तुतो भेदे शब्दप्रवृत्तेरविवादास्पदत्वात्। एतच्च यथावसरं वितनिष्यत इत्यास्तां तावत्।

यतश्चेदं नाऽनुकरणं ततो यत्कैश्चिच्चोदितं तदनवकाशम्–'न च गीतवाद्ययुक्तः सर्वावस्थासु कश्चिदनुकार्यः' इति न त्वनुकार्यत्वेन गीतादय इत्युक्तम्। परिहारोऽपि य उक्तः 'आसनगमनस्नानस्वापप्रतिबोधभोजनाद्यासु गीतवाद्यं लोकेचेष्टास्वतिप्रथितम्' इत्यादि, तदप्यनुपपन्नम्। न हि गमनादौ तद्ध्रुवातालादिरूपेण गीतादि लोकेऽस्ति मङ्गलमात्रत्वाद् ऋते। गायनवादनादिष्वपि चाऽनुकारवुद्ध्यापत्तेरित्यलम्। ।।१०७।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–इस नाट्यवेद में ऐकान्तिक (एकपक्षीय) दृष्टि से न तो आप (असुरों) के और न देवों के क्रियाकलापों की अभिनयात्मक नाटकीय प्रस्तुति की गयी है। नाट्य-प्रयोग (एकपक्षीय प्रस्तुति न होकर) प्रत्यक्षगोचर सम्पूर्ण त्रिभुवन (स्वर्ग-मृत्यु-पाताल लोकों) के क्रिया-कलापों की अनुकरणात्मक प्रस्तुति है।।१०७।।

व्याख्या–असुरों के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित विरूपाक्ष के योऽयं भगवता सृष्टः इत्यादि आरोप का ब्रह्मदेव द्वारा प्रदत्त यह प्रत्युत्तर है। विरूपाक्ष का यह प्रश्न था कि केवल हमें ही लक्ष्य कर इस नाट्यप्रयोग का मञ्चन क्यों किया गया? जिसका उत्तर है–नैकान्ततः, केवल आपको (असुरों को) ही लक्षित कर यह नाट्यनुकरण प्रस्तुत नहीं किया गया। साथ ही देवों को मात्र लक्ष्य कर यह नाट्य प्रस्तुति नहीं है, और न कोई ऐसा उद्देश्य ही है। आप सब का यथार्थ चित्रण इस नाट्य प्रयोग में किया गया है।

कवि क्रान्तदर्शी होता है और उसके द्वारा विरचित रूपक और उपरूपक दृश्यकाव्य के अन्तर्गत आते हैं। वह नियमों में बंधकर एकपक्षीय चित्रण नहीं कर सकता। ऐसा करने से उसके द्वारा की गयी रचना का काव्यस्वरूप ही समाप्त हो होगा, क्योंकि ऐसा करना उसके लिए अनुचित है। ज्ञान अनेकविध होते हैं–(१)सादृश्य-ज्ञान, जैसे जुड़वां वच्चे।(२)भ्रान्ति-ज्ञान, जैसे सीप में चांदी का ज्ञान, (३) आरोपित ज्ञान, जैसे मुखचन्द्र–मुख पर चन्द्रमा का आरोप। (४) लाक्षणिक ज्ञान–जैसे 'गौर्वाहीकः'। (५) उत्प्रेक्षित ज्ञान–जैसे मुख में चन्द्र की संभावना।(६) प्रतिकृति–जैसे पुस्तक का चित्र, (७) तात्कालिक निर्माण, जैसे इन्द्रजाल (जादू),

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

(८) हस्तकौशल–हाथ की कारीगरी। ये जितने भी प्रकार के ज्ञान हैं, उनमें दर्शक उदासीन रहता है। वह उससे रसास्वाद नहीं कर सकता। कवि का उद्देश्य अपनी कविता से रससृष्टि होता है। अतः नाट्य में एकपक्षीय प्रस्तुति नही होती।

त्रैलोक्यस्याऽस्य सर्वस्य इत्यादि–उक्त सभी प्रकार के ज्ञान राम आदि को उसप्रकार प्रस्तुत नहीं कर सकते, जैसा कि आगमों में वे चित्रित हैं। यद्यपि पाठक एक वाल्मीकीय रामायण महाकाव्य द्वारा उन पात्रों के स्वरूप की कल्पना कर सकता है। यद्यपि रघुवंशादि श्रव्यकाव्य भी साधारणीकरण द्वारा रसास्वाद कराने में समर्थ हैं, परन्तु वे उसका साक्षात्कार कराने में असमर्थ हैं, वे केवल हृदयंगम ही करा सकते हैं। नाट्य दृश्य होता है। गीत-नृत्य-वाद्य आदि उसके अंग हैं। वह नाट्य प्रत्येक दर्शक को भूतकाल से हटाकर वर्तमानकाल में ले जाता है और उसे रसविभोर कर देता है। वह उस समय समस्त सांसारिक भावों को भुला बैठता है। उस समय उसका हृदय दर्पण के समान निर्मल रहता है। नाट्य-प्रयोग में वह प्रत्यक्षगोचर हर्ष-शोक आदि भावों में तन्मय रहता है। उस समय वह किसी देश विशेष और काल विशेष से प्रभावित नहीं रहता। विशिष्ट ज्ञान के प्रति उसका कोई आग्रह नहीं रहता। नाट्य-प्रयोग में प्रस्तुत पात्रों के चरित्र से वह अपनी तुलना करता है। इतना ही नहीं, उनकी अनुभूति को अपनी अनुभूति समझता है और अशुभ का परित्याग करते हुए शुभाचरण में प्रवृत्त होता है।

साथ ही नाट्य को मात्र अनुकृति नहीं समझना चाहिए। केवल अनुकरण-मात्र उपहास-सृष्टि करता है। 'अनुकरण' का अर्थ यह है कि जैसा है वैसी प्रस्तुति करना। नट किसका अनुसरण करतां है? क्या वह रामादि का अनुकरण कर सकता है?, कदापि नहीं। उसी प्रकार उनमें रहनेवाले शोक-क्रोध आदि भावों का भी वह अनुकरण नहीं कर सकता, क्योंकि वे उसमें नहीं रह सकते। नट केवल उसके (रामादि के) अनुभावों (क्रियाकलापों) का अनुकरण करता है। साथ ही जो अनुभाव सजातीय हैं, उनका अनुकरण कर सकता है, ठीक उनके सदृश का अनुकरण संभव ही नहीं है। अतः समस्त नाट्य सृष्टि त्रिभुवन के क्रियाकलापों का अनुकरण है। वह साधारण रूप सेही संभव है, विशेष रूप से नहीं। अतः आप को यह भ्रम नहीं करना चाहिए कि 'अनियतानुकारो नाट्यम्' यह नाट्य की परिभाषा है। क्योंकि ऐसी स्थिति में अनुकरण का कोई अर्थ ही नहीं है, जो साधारण हो।**अनुव्यवसायवत् विशेष-विषयीकार्यं नाट्यम्**, अभिनवगुप्त पादाचार्य के शब्दों में **नाट्यं भावानुकीर्तनम्** की यही व्याख्या है। आप के गुरु भट्टतौत द्वारा विरचित **काव्य कौतुक** में भी यही आशय है कि अनुकरणमात्र नाट्य नहीं है। जब आहार्य अभिनय अर्थात् वेशभूषा-परिवर्तन आदि के द्वारा नाट्य कथावस्तु के अनुरूप तत्कालीन देश-काल आदि का परिदृश्य खडा किया जाता है और चैत्र-मैत्रादि नटों (अभिनेताओं) को रामादि की भूमिका में मञ्चस्थ किया जाता है, तब दर्शक वर्तमान काल की वास्तविक सत्ता को विस्मृत करता है और भूतकाल में पहुंचकर उसीका प्रत्यक्ष करता है। इसप्रकार नाट्य प्रत्यक्षकल्प है। उसमें हृदयावर्जक नृत्य-गीत और वाद्य का समावेश उसे चमत्कारी बना देता है। उस नाट्य में आंगिक-वाचिक-सात्विक और आहार्य अभिनय द्वारा नट अपने स्वरूप को ढंक देता है।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

प्रस्तावना आदि के द्वारा नट के ज्ञान से उत्पन्न संस्कार उस नाट्य को प्रत्यक्षकल्प बनाने में सहायक होते हैं। उस चित्ताकर्षक सामग्री के बीच प्रयोगकर्ता उपस्थित होता है, जो अपने स्वभाव को ढंककर पहले से प्रवृत्त प्रत्यक्ष-अनुमानादि प्रमाणजन्य संस्कारों की सहायता से सहृदय के साथ इस प्रकार संवाद स्थापित करता है, जिससे सहृदय दर्शक भी उसके साथ तादात्म्य स्थापित करता है। उस प्रयोगकर्त्ता द्वारा सामाजिक में अनुव्यवसाय (निश्चयात्मक ज्ञान) को जन्म दिया जाता है। वह अनुव्यवसाय ऐसा होता है, जो चित्तवृत्ति को तदाकार बना देता है, उनके सुख-दुःख उसके अपने सुख-दुःख होते हैं, उसमें जो संवित्, आनंद और प्रकाश होता है, वह विलक्षण होता है। उस अनुव्यवसाय के अन्य पर्याय हैं–रसन, आस्वादन, चमत्कार, चर्वणा, निर्वेश भोग आदि। उस में जो प्रतीति होती है वही वस्तु नाट्य है। चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो–केवल ज्ञान-स्वरूप हो, आरोपित हो, सामान्य हो, अथवा तात्कालिक हो। इसलिए **नाट्यं भावानुकीर्त्तनम्** इसका अर्थ है अनुव्यवसायात्मक कीर्तन। केवल अनुकरण नाट्य नहीं है। अभिनवगुप्तपादाचार्य का यही आशय है। (द्र० अभिनव भारती)।।१०७।।

क्वचिद् धर्मः क्वचित् क्रीडा क्वचिदर्थः क्वच्छिमः ।
क्वचिद्धास्य क्वचिद् युद्धं क्वचित् कामः क्वचिद् वधः ।।१०८।।
धर्मो धर्मप्रवृत्तानां कामः कामो[1]पसेविनाम् ।
निग्रहो दुर्विनीतानां विनीतानां[2] दमक्रिया ।।१०९।।
क्लीबानां धार्ष्ट्यजन[3]नमुत्साहः शूरमानिनाम् ।
अबु[4]धानां विबोधश्च वैदु[5]ष्यं विदुषामपि ।।११०।।
ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं दुःखार्दितस्य च ।
अर्थोपजीविनामर्थो धृति[6]रुद्विग्नचेतसाम् ।।१११।।
नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।।११२।।
उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम् ।
हितोपदेशजननं [7]धृतिक्रीडासुखादिकृत् ।।११३।।
(एतद् रसेषु भावेषु सर्वकर्मक्रियास्वथ ।
सर्वोपदेशजननं नाट्यं लोके भविष्यति ।।)
दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रान्तिजननं[8] काले नाट्यमेत[9]द् भविष्यति ।।११४।।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम् ।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ।।११५।।

---

१. कामार्थ।
२. मत्तानां च।
३. करणम्।
४. अबोधानां।
५. वैदग्ध्यम् ।
६. वृत्ति।
७. नाट्यमेतद् भविष्यति।
८. विश्राम।
९. मया कृतम् ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अन्वयः—क्वचिद् धर्मः, क्वचित् क्रीडा, क्वचित् अर्थः, क्वचित् शमः, क्वचित् हास्यम्, क्वचित् युद्धम्, क्वचित् कामः, क्वचित् वधः। धर्मप्रवृत्तानां धर्मः, कामोपसेविनां कामः, दुर्विनीतानां निग्रहः, विनीतानां दमक्रिया।

क्लीवानां धार्ष्ट्यजननम्, शूरमानिनाम् उत्साहः, अबुधानां च विबोधः, विदुषाम् अपि वैदुष्यम्।

ईश्वराणां च विलासः, दुःखार्दितस्य च स्थैर्यम्, अर्थोपजीविनाम् अर्थः, उद्विग्न-चेतसां धृतिः।

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकं लोकवृत्तानुकरणम् एतत् नाट्यं मया कृतम्।

उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयं हितोपदेशजननं धृतिक्रीडासुखादिकृत् (एतत् नाट्यं मया कृतम् ।)

रसेषु भावेषु अथ सर्वक्रियासु सर्वोपदेशजननं (एतत् नाट्यं भविष्यति।) एतत् नाट्यं दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनां काले विश्रान्तिजननम् एतत् नाट्यं भविष्यति।

धर्म्यं यशस्यम् आयुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनं लोकोपदेशजननं भविष्यति।।

अभिनव-भारती

ननु त्रैलोक्यस्य ये भावास्तेषां यद्यनुकीर्तनं नाट्यं तदेकत्रैव रूपके एकत्रैव चाऽङ्कादौ सर्वमेव दृश्येतेत्याशङ्कानिराकरणपूर्वकं पूर्वप्रयोजनेन सप्रयोजनत्वमुपसंहरति—**क्वचिद्धर्म** इत्यादिना **लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति** इत्यन्तेन श्लोकाष्टकेन। एतच्च कैश्चिद् भिन्नवाक्यतया प्रतिश्लोकं व्याख्यातम्। तच्च पौनरुक्त्याध्याहारपरस्परासङ्गत्यादिदोषोपहतं स्यादित्युपेक्ष्यमेव। तस्मादित्थमत्र योजना—नानाप्रकारैर्भावैः स्थायिव्यभिचारिविभावादिभिरुपसम्पन्नं सर्वतो व्याप्तम्। तेषां च भावादीनां देशकालप्रवृत्त्यवस्थान्तरभिन्नस्वभावत्वात् तदपि नानावस्थात्मकम् । अत एवाहोत्तमाधमेति। एवम्भूतमेतद् भविष्यति। काले विश्रान्तिजननं हितोपदेशजननं च भविष्यतीति सम्बन्धः।

के के नानाप्रकारा भावा इत्याह—**क्वचिद् धर्म** इत्यादि। यथायोगं धर्मादयः शब्दास्तदुचितस्थायिव्यभिचार्यादिसूचकाः। तेन धर्मोऽर्थ इत्युत्साहादिः। क्रीडेति विस्मयादिः। शम इति निर्वेदादिः। हास्यमिति हासादिः। युद्धमिति रौद्रादिः। काम इति रत्यादिः। वध इति क्रोधभयजुगुप्साशोकादिः। अमीभिश्च समुचितव्यभिचार्यनुभावाः स्वीकृताः। क्वचिदिति शब्देन दशरूपकान्यतममुच्यते। त(य)था नाटकाद्यनेकरूपकगतो विशेषस्तथैकं ना(कना)-टकादिविशेषे। को विभागः? एतदुक्तं भवति—किञ्चिद् धर्मप्रधानं रूपकं यथा नाटकम्। प्रकरणं वा क्रीडाप्रधानम्। तथा प्रसिद्धानां यथा भाणः। अर्थप्रधानत्वं प्रकरणादौ। एवं दशरूपकलक्षणानुसारेण सर्वमनुसरणीम्। तथा क्वचिन्नाटके धर्मः प्रधानम् —यथा छलितरामे रामस्याऽश्वमेधयागः। क्वचित् क्रीडा—यथा स्वप्नवासवदत्तायाम्। एवमन्यत्राऽप्यनुसरणीयम्। तथैकत्राऽपि नाटके क्वचिदेशे धर्मः, यथाऽभिज्ञानशाकुन्तले—**अपि नाम कुलपतेरियमसवर्ण-क्षेत्रसम्भवा**

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

स्यात् (अङ्क-१)। एवं प्रतिनाटकमेकदेशेषु सुलक्षा एव क्रीडादय इति ग्रन्थविस्तरभीरुभिरस्माभिर्न परिवर्णिताः।

नन्ववस्थादेशकालप्रकृतिविशेषसमुचितभावानुकीर्तनमात्रमेव कर्तव्यम्। किं रामाय(दि) रावणेत्यादिसमाश्रयेणेत्याशङ्क्याऽऽह–धर्म इति। चो हेतौ। यस्माल्लोकवृत्तानुसारेण करणं प्रयोगरूपं नाट्यं मया कृतमेतदित्येतस्मात् कारणाद् धर्मप्रवृत्तानां रामयुधिष्ठिरादीनां सम्बन्धित्वेन धर्म उक्तः। निग्रह इति वधः। विनीतानां जितेन्द्रियाणां सम्वन्धित्वेन दमस्य शमस्य क्रिया योजना। विनयो ह्रीन्द्रियजयः। एवं क्लीबानामुपहास्यानां धाष्ट्र्यजननमिति विभावेन हासोऽत्रोक्तः। धाष्ट्र्याज्जननं जन्म यस्य हास्यवस्तुनः। यद् वक्ष्यति–विकृतपरवेषालङ्कारधाष्ट्र्यादिभिः (अ-६.) इत्यादि। विबोध इति ण्यन्तस्य रूपम्। अबुद्धत्वेन प्रसिद्धानां सम्बन्धित्वेन बोधनमुपायोपदेशेन व्युत्पाद्यत्वम्। विदुषां भीष्मादीनाम्। उपायव्युत्पाद्यत्वेन वैदुष्यम्। अनेन स्मृतिमतिप्रभृतीनां निरूपणम्। विलास इति क्रीडा। स्थैर्यमिति व्यवसायात्मकमुत्साहरूपमेव। चशब्द एवकारार्थे। दुःखार्दितत्वेन यः प्रसिद्धस्तस्यैव सम्बन्धित्वेनेत्यर्थः। धृतिर्धैर्यम्। एतदुक्तं भवति–लोकवृत्तानुसारेण यत इयं नाट्यक्रिया लोके च धर्मादयो ना(नाना) श्रयाः न संवेदनयोग्याः तेन धर्मादिविषये यो यथा प्रसिद्धो रामादिः स शब्दमात्रोपयोगित्वेन मुख्यया प्रणालिकया गृहीतः।

एवंभूतं यन्नाट्यं तत् प्रेक्षकाणां दुःखेन व्याध्यादिकृतेन श्रमेणाऽध्वक्लेशादिजेन शोकेन बन्धुमरणादिकृतेनाऽऽर्तानां पीडितानां तथा तपस्विनामनवरतकृच्छ्रचान्द्रायणाद्याचरणकलितदौर्बल्यातिशयपरिखिन्नहृदयानां विश्रान्तिजननं दुःखप्रसरणविघातकम्। प्रतिहतदुःखानां चाऽऽह्लादात्मकधृत्यादिकारणं यथायोगम्। तद् यथा– शोकार्तस्य धृतिर्व्याध्यार्तस्य क्रीडा, श्रमार्तस्य सुखम्, आदिग्रहणेन तपस्विनो मतिविबोधादय इति मन्तव्यम्। न चैतावदेव, यावत्कालान्तरेऽपि (रवि) परिपाकं सुखमुपदेशजं जनयतीत्येवं दुखितानां तत्प्रशमसुखवितरणकालान्तरसुखलाभाः प्रयोजनम्। ये पुनरदुःखिताः सुखभूयिष्ठवृत्तय एव राजपुत्राद्यास्तेषां लोकवृत्ते धर्माद्युपायवर्गे उपदेश-कार्ये तन्नाट्यम्। लोकशब्देन लोकवृत्तम्।

ननु किं गुरुवदुपदेशं करोति? नेत्याह, किन्तु बुद्धिं विवर्धयति। स्वप्रतिभामेव तादृशीं वितरतीत्यर्थः। न च सा दुष्टा प्रतिभेत्याह–हितम्–हितप्रतिभाजनकत्वात्। अत्र हेतुमाह–यतो धर्मादनपेतम्। यशश्शब्देन लोकप्रसिद्धिहेतुभूतमद्भुतकारि वस्तूच्यते, यथा रामस्य सप्तसालव्यथनादि। तदुपदेशो साधु। आयुर्वृद्धिहेतव आचारा आयुः। तेषु साधु। एवं दुःखितानामदुःखितानां चेदमुपादेयमित्युक्तम्। दुखं च शारीरं मानसं वा। शारीरमपि दैवकृतं स्वयंकृतमपि दृष्टं फलो(दृष्टफलो)द्देशेनाऽन्येन चेत्येतावानेव दुःखितवर्ग इति दुःखार्तानामित्यादिभेदोपादानस्य फलम्।

केचित् तु धर्मो धर्मप्रवृत्तानामित्यादि सामाजिकविषयत्वेन व्याचक्षते

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

हृदयसंवादयोग्यतातात्पर्येण। अन्ये त्वकारप्रश्लेषादिव्याख्याप्रकारेणाऽधर्मप्रवृत्तानामित्यादिविपरीतत्वेन व्याचक्षते उपदेशत्वाभिप्रायेण। उभयमपि चैतद् धर्म्यं यशस्यमित्यादेः पुनरुक्तम्।।१०८-११५।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ—नाट्य-प्रयोगों के भेदों में किसी रूपक अथवा उपरूपक में कहीं धर्म, कहीं क्रीडा, कहीं अर्थ और कहीं शान्ति का तो कहीं हास्य, कहीं युद्ध, कहीं काम और कहीं वध (संहार) का चित्रण रहता है। नाट्यप्रयोगों द्वारा धर्म में प्रवृत्त लोगों के धर्म की, विषयासक्त लोगों के निग्रह(वध) की, अविनयी-उद्दण्ड लोगों के दण्ड की और जितेन्द्रिय लोगों के इन्द्रिय-निग्रह की प्रस्तुति होती है। नाट्य-वेद से नपुंसकों के लिए धृष्टता की, शूर-वीर और अभिमानशीलों के लिए उत्साह की, अज्ञानियों के लिए प्रबोधन की और विद्वानों के लिए विद्वता वृद्धिंगत करने की प्रेरणा मिलती है।नाट्य-वेद ऐश्वर्यशील लोगों के लिए विलासिता की, दीन-दुखियों के लिए स्थिरता की धनार्थियों के लिए अर्थार्जन की और व्याकुलचित्त लोगों के लिए धैर्य-धारण की प्रेरणा प्रदान करता है। मैंने (ब्रह्मदेव ने) विविध भावों से प्रचुर और अनेकविध परिस्थितियों से परिपूर्ण त्रिभुवन के कार्यकलापों के अनुकृतिस्वरूप उस प्रत्यक्षकल्प नाट्यवेद की सृष्टि की है। इस नाट्य में उत्तम, मध्यम और अधम त्रिविध प्रकृति के मनुष्यों के क्रियाकलापों का चित्रण है। उसका साक्षात्कार करने पर उनके अनुकरण से अपने हित की बात उत्पन्न होती है। यह नाट्य धैर्य-क्रीडा-सुख आदि सभी की सृष्टि करता है। (यह नाट्य त्रिभुवन के अन्तर्गत कहीं भी सम्पूर्ण रसों, भावों और समस्त क्रिया-कलापों के विषय में सभी प्रकार के कल्याणकारी उपदेश की सृष्टि करेगा।) जो दुःख से पीड़ित, परिश्रम से थके-मांदे, शोक से व्याकुल हैं, उन बेचारे दीन-हीन लोगों के लिए यह नाट्य विश्रामदायक होगा। यह नाट्य धर्म और कीर्तिदायी है। उसके साक्षात्कार से आयुष्य और वुद्धि की वृद्धि होती हैं और अपने हित की प्रेरणा मिलती है। नाट्यवेद भविष्य में समस्त लोकों में उपदेश का माध्यम होगा।।१०८-११५।।

व्याख्या—त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्, नाट्यवेद समस्त लोकों के क्रियाकलापों को प्रत्यक्ष कराता है। इस प्रकार १०७वें पद्य में वर्णित है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या किसी एक रूपक अथवा उसके किसी एक अंक आदि में इसका प्रत्यक्ष किया जाता है? इस प्रश्न का समाधान और नाट्यवेद की सृष्टि का प्रयोजन १०८ से ११५ तक के पद्यों में अंकित है। यह कुलक है। पांच से अधिक पद्यों की परस्पर-साकांक्षता कुलक को जन्म देती है। अभिनवगुप्तपादाचार्य स्पष्ट कहते हैं कि इनकी परस्पर साकांक्षता के कारण 'मुक्तक' के समान भिन्न वाक्य के रूप में इनकी व्याख्या करना समीचीन नहीं है।

नानाभावीयसम्पन्नम् इत्यादि नाट्य के विशेषण इसी साकांक्षता के द्योतक हैं, जो पूर्वोक्त वाक्य योजना(अन्वय) से स्पष्ट हैं।

नानाभावोपसम्पन्नं नाट्यम्—नाट्य नानाविध भावों से व्याप्त रहता है। वे भाव कौन से हैं? क्या वे एकत्र रहते हैं? इन्ही प्रश्नों का विस्तारपूर्वक समाधान **क्वचिद् धर्मः क्वचिद् क्रीडा** इत्यादि पद्य देते हैं। इनमें **क्वचित्** शब्द इन भावों की व्यापकता का संकोच करते हुए विशिष्ट रूपक तक सीमित करता है। भरतमुनि दशरूपकों की

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

गणना नाट्य में इसप्रकार करते हैं–

नाटकं सप्रकरणमङ्को व्यायोग एव च।
भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः ।।
ईहामृगश्च विज्ञेयं दशमं नाट्यलक्षणम्।
(ना० शा० २०/२-३)

इसप्रकार नाट्य के अन्तर्गत (१) नाटक, (२) प्रकरण, (३) अंक, (४) व्यायोग, (५) भाण, (६) समवकार, (७) वीथी, (८) प्रहसन, (९) डिम और (१०) ईहामृग आते हैं।

'धर्म', क्रीडा आदि शब्द उन उन रसों के उपयुक्त स्थायी और व्याभिचारी भावों के व्यञ्जक हैं। भरतमुनि ने मुख्यतः आठ नाट्यरस और तदनुकूल आठ स्थायी भावों की गणना इसप्रकार की है–(१) शृंगार–रति, (२) हास्य–हास, (३) करुण–शोक, (४) रौद्र–क्रोध, (५) वीर–उत्साह, (६) भयानक–भय, (७) वीभत्स–जुगुप्सा और (८) अद्भुत–विस्मय।(द्र० ना० शा०-६/१५-१७)

इसके अतिरिक्त उन्होंने तैंतीस व्यभिचारी और आठ सात्विक भावों का परिगणन भी किया है।(द्र० वहीं-६/१८-२०)

इनमें धर्म और अर्थ शब्द उत्साह आदि, क्रीडा शब्द विस्मय आदि, और शम शब्द निर्वेद आदि स्थायी भावों का अभिव्यञ्जक है। शान्त रस को नवम रस मानकर निर्वेद को उसका स्थायी भाव माना गया है–

निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।

इसमें हास्य शब्द हास आदि स्थायी भाव और युद्ध शब्द रौद्र आदि रस का सूचक है। काम शब्द रति आदि स्थायी भाव और वध शब्द क्रोध, भय, जुगुप्सा, शोक आदि स्थायी भावों का अभिव्यञ्जक है। इन स्थायी भावों से तदनुकूल व्यभिचारी और अनुभावों की सूचना मिलती है। दश-रूपकों का विभाग इन्हीं भावों की प्रमुखता पर आधारित है। जैसे धर्मप्रधान रूपक नाटक, क्रीडाप्रधान और अर्थप्रधान रूपक प्रकरण और प्रसिद्धिप्रधान (?) भाण आदि। केवल नाटक भी इसप्रकार दृष्टि गोचर होते हैं। जैसे छलितराम नाटक में राम का अश्वमेधयाग चित्रित है, अतः वह धर्मप्रधान रूपक है। स्वप्नवासवदत्ता क्रीडाप्रधान नाटक है। इसी प्रकार एक ही नाटक के किसी अंश में धर्म का भी चित्रण रहता है। जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल शृंगारप्रधान नाटक होने पर भी प्रथम अंक में दुष्यन्त का यह कथन कि 'कही कुलपति कण्व की कन्या असवर्ण न हो' उसकी धार्मिकता की अभिव्यक्ति कर रहा है।

इस कुलक में दो स्थलों पर 'चकार का प्रयोग है–**अबुधानां विबोधश्च, ईश्वराणां विलासश्च**। ये दोनों चकार हेतुवाचक हैं। क्योंकि नाट्य **लोकवृत्तानुकरण** होता है, तदनुसार वे पात्र प्रस्तुत किये जाते हैं। **धर्मो धर्मप्रवृत्तानाम्** – इसमें राम, युधिष्ठिर आदि पात्रों की प्रवृत्ति धर्म में है। **विनीतानां दमक्रिया**–यहां विनीत शब्द का अर्थ जितेन्द्रिय है। **विनयो हीन्द्रियजयः** (द्र०कामन्दरीय नीतिसार)। उनकी दमक्रिया का तात्पर्य है इन्द्रियों का शमन। **क्लीबानां' धाष्टर्यजननम्** नपुंसकों की धृष्टता का

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अभिनय हास्य की सृष्टि के लिए है। **वैदुष्यं विदुषामपि**– भीष्म आदि पात्रों का वैदुष्य उनके उपाय व्युत्पत्ति से प्रदर्शित होता है। इसीके द्वारा स्मृति, मति आदि व्यभिचारी भावों का निरूपण किया जाता है। **ईश्वराणां विलासश्च**–यहां 'विलास' का अर्थ 'क्रीडा' है। **स्थैर्यं दुःखार्दितस्य च**, यहां स्थैर्य का अर्थ व्यवसायात्मक उत्साह है। 'च' कार का प्रयोग 'एव' के अर्थ में है। इसका तात्पर्य यह है कि जो अत्यंत दुःखी है उसके उत्साह को वढ़ाना, उनमें आशा का संचार नाट्य में चित्रित रहता है। इस प्रकार का नाट्यप्रयोग उन सभी के दुखों को दूर करता है–**विश्रान्तिजननम्**। जो रोग आदि दुःखों से पीडित हैं, उनके लिए क्रीडा का, शोकार्त के लिए धैर्य का, परिश्रम से पीडित के लिए सुख का और तपस्वी जन के लिए मति, विबोध आदि का विधान कर उनके दुखों का शमन करता है। इतना ही नही, जो सुखी हैं उन राजपुत्रों को भी लोकवृत्त द्वारा नाट्य धर्म में प्रवृत्त करता है। नाट्य का उपदेश गुरुसम्मित उपदेशवचन नहीं है, प्रत्युत उनकी प्रतिभा को वृद्धिगत करने वाला प्रत्यक्षकल्प उपदेश है। **धर्म्यं** विशेषण इसी दृष्टि से सार्थक है। **यशस्यम्**– आश्चर्यकारी घटना के चित्रण से उसे प्रसिद्धि भी मिलती है। **आयुष्यम्**–आयुष्यवृद्धि कर आचारों के प्रयोग उनमें मंचस्थ होते हैं। **दुःखार्तानाम्**–नानाविध शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ितों के दुःखों का विनाशक है।

कुछ लोग **धर्मो धर्मप्रवृत्तानां** की व्याख्या करते हुए 'धर्मप्रवृत्त' आदि विशेषणों का उन उन पात्रों के साथ सम्बद्ध न करते हुए सामाजिक दर्शक के साथ जोड़ते हैं। कुछ लोग 'धर्मोऽधर्मप्रवृत्तानाम्' इस प्रकार अकार प्रश्लेष के साथ पढ़कर अधर्मप्रवृत्तों के लिए धर्मोपदेश इत्यादि कराते हैं। इनमें प्रथम व्याख्या का अभिप्राय सहृदय संवाद से और द्वितीय व्याख्या का अभिप्राय उपदेश्य से है। किन्तु उक्त दोनों प्रकार की व्याख्याएं इस लिए समीचीन नहीं है कि धर्म्यं यशस्यम् आयुष्यम् इत्यादि पद्यों की ही यह दुबारा व्याख्या होगी। क्योंकि ये पद्य सामाजिक से सम्बद्ध हैं, पात्रों से नहीं।।१०८-११५।।

न तज्ज्ञा[1]नं न तच्छिल्पं न सा पिद्या न सा कला।
नासौ[2] योगो न तत् कर्म[3]नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।।११६।।[4]
तन्नाऽत्र मन्युः कर्तव्यो भवद्भिरमरान् प्रति।
सप्तद्वीपानुकरणं नाट्यमेतद् भविष्य[5]ति ।।११७।।

अन्वयः– न तत् ज्ञानम्, न तत् शिल्पम् न सा विद्या, न सा कला, न असौ योगः, न तत् कर्म यत् अस्मिन् नाट्ये न दृश्यते। तत् अत्रभवद्भिः अमरान् प्रति मन्युः न कर्त्तव्यः। एतत् नाट्यं सप्तद्वीपानुकरणं भविष्यति।।११६।।११७।।

---

१. श्रुतम्

२. स

३. यन्नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते।

४. सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च।
अस्मिन्नाट्ये समेतानि तस्मादेतन्मया कृतम्।।
इत्यधिकम् अन्यत्र।

५. नाट्ये ह्यस्मिन् प्रतिष्ठितम्।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अभिनव-भारती

न चाऽनेन प्रधानमात्र एवोपदेशः कृतः पुरुषार्थोपायमात्रे वा। यावत् तदुपायोपेयादिष्वपीति दर्शयति–तदिति। अस्मिन्निति। सप्तद्वीपगतभावानुकीर्तनरूपे नाट्ये दृश्यमाने यन्न दृश्यते न हृदयगोचरमेति तादृग्ज्ञानादिकं नास्तीति शेषः।

ज्ञानमित्युपादेयमात्मज्ञानादि। यथा वेणीसंहारे–आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ (१-२३) इत्यादि।

शिल्पमिति। मालाचित्रपुस्तादियोजनम्। यथावेष्टितग्रथितगुम्फसंहतैरातैश्च कुसुमैस्सपल्लवैः इत्यादौ।

विद्या दण्डनीत्यादि। यथा शमव्यायामाभ्यां प्रतिविहिततन्त्रस्य नृपतेः (बाल. रा. १-२४) इत्यादौ।

कला गीतवाद्यादिका। यथा व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना (नागानन्द १-१४) इत्यादौ।

योगो योजनं तेषामेव ज्ञानादीनां कलान्तानां स्वभेदैरन्योन्यस्वभेदैः। यथा

मेघाशङ्किशिखण्डिताण्डवविधावाचार्यकं क्ल्पय -
निर्ह्रादो मुरजस्य मूर्च्छीततरां वेणुस्वनापूरितः।
वीणायाः कल्यन् लयेन गमकानुग्राहिणीं मूर्च्छनां
कर्षत्येष च कालकूटितकलारम्यश्रुतिं षाडवे ।।

(हेज्जल-राधाविप्रलम्भ) इत्यादौ। तत्रेहातोद्यनिचयगीतयोजना कृता। अन्योन्यं यथा–आविलपयोधराग्रं लवलीदलपाण्डुकोमलच्छायम् (विक्रमो ५-८) इत्यादौ अत्र हि शृंगारस्य वैद्यकविद्यया योजना।

कर्मेति युद्धनियुद्धादिर्व्यापारः। यथा–

"आलीढस्थितटङ्कितस्य निमितां दृष्टित्रयीं तन्वतः
पुङ्खाग्रक्रमसर्पणेन विशिखप्रान्तादथोच्चैस्तमाम् ।
चक्रीभूतशरासनस्य न मनाल्ल(क् ल)क्ष्यादमी विच्युता -
श्छित्रं चित्रमुमाधवस्य युगपत् सर्वे सुरेन्द्रद्विषः ।। इति।।

एवं सप्रयोजनत्वमभिधाय प्रकृतमेव पुराकल्पमनुबध्नाति–तन्नात्रेति। तदिति। तस्मात्। अत्र नाट्येऽमरान् प्रति न मन्युः कार्यः। तेऽपि तत्र न केचित्।

एतदेवाह–सप्तद्वीपानुकरणमयी हि क्रिया(नटक्रिया) रङ्गे दृश्यते। न च सागरद्वीपादीनां कश्चित् तत्र (त्रा)सम्भव इति भावः।।११६।।११७।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–ऐसा कोई ज्ञान, कोई शिल्प, कोई विद्या, कोई कला, कोई योग और कोई क्रिया-कलाप नहीं है, जो इस नाट्य में दृष्टिगोचर न हो। इसलिए असुरों ! इस विषय में आप देवताओं के प्रति क्रोध न करें। क्योंकि भविष्य में यह प्रत्यक्षगोचर नाट्य सप्तद्वीपा वसुन्धरा का अनुकृतिस्वरूप होगा।।११६।।११७।।

व्याख्या–नाट्य के उपदेश का क्षेत्र सीमित नहीं है। इसके द्वारा केवल मुख्य शिक्षा नहीं मिलती अथवा केवल पुरुषार्थसाधनसम्बन्धी प्रेरणा नहीं मिलती है, अपितु उन उपायों द्वारा प्राप्त किये जा सकनेवाले लक्ष्यसम्बन्धी प्रेरणा भी प्राप्त

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

होती है। 'न तद् ज्ञानं न तत् शिल्पं' इत्यादि पद्य में ज्ञानादि के साथ प्रयुक्त 'यत्' और 'तत्' सर्वनाम इसी को संकेतित करते है। नाट्यवेद प्रत्यक्षकल्प है, जिसमें सप्तद्वीपा वसुन्धरा के समस्त क्रिया-कलापों का साक्षात्कार किया जा सकता है। उसमें ऐसा कोई ज्ञान अथवा शिल्पादि नहीं है, जिसकी अनुभूति सामाजिक को न होती हो। वह प्रत्येक विषय उसके द्वारा हृदयंगम कर सकता है।

न तद् ज्ञानम्–आत्मज्ञान आदि का चित्रण **आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ** इत्यादि वेणीसंहार नाटक (१/२२) में द्रष्टव्य है। **शिल्पम्–** अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक में चित्रांकन वर्णित है। **विद्या**–दण्डनीति आदि का चित्रण 'शम-व्यायामाभ्यां प्रतिविहिततन्त्रस्य नृपतेः इत्यादि बाल-रामायण (१/२४) में अवलोकनीय है। **कला**–गीत-वाद्य आदि ललित कलाओं का अनुभव **'व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना'** इत्यादि नागानन्द (१-१४) के पद्य में किया जा सकता है। **योगः**–'ज्ञान' से लेकर 'कला' तक सभी विषयों का अपने भेदों के साथ अथवा परस्पर संगम भी देखने को मिलता है। **'मेघाशंकिशिखण्डिताण्डवविधौ'** इत्यादि पद्य में मुरज, वेणु, वीणा आदि वाद्यों के साथ गीतयोजना और 'शिखण्डिताण्डव' का संगम इसी का निदर्शन है। 'आविलपयोधराग्रम्' इत्यादि विक्रमोर्वशीय(५-८) के पद्य में वैद्यक के साथ शृंगार की योजना दूसरा दृष्टान्त है। **तत्कर्म**–युद्ध, बाहुयुद्ध आदि क्रियाकलाप भी हम नाट्य में प्रत्यक्ष कर सकते हैं। इसप्रकार ब्रह्मदेव असुरों के प्रतिनिधि विरूपाक्ष को नाट्यवेद का विषय-विस्तार समझाते हुए यह कह रहे हैं कि वह एकदेशीय अथवा एकपक्षीय नहीं होता। आपका अपमान करना इसका उद्देश्य नहीं है। सप्तद्वीपा वसुन्धरा को नट मञ्चस्थ करता है। उसके लिए कोई ऐसा विषय नहीं होता, जिसकी प्रस्तुति वह रंगमंच पर न कर सके। अतः असुरों को देवताओं के प्रति व्यर्थ का क्रोध नहीं करना चाहिए।।११६-११७।।

(येनाऽनुकरणं नाट्यमेतत् तद् यन्मया कृतम् ।।)
देवानामसुराणां[1] च राज्ञामथ कुटुम्बिनाम् ।
ब्रह्मर्षीणां च विज्ञेयं नाट्यं वृत्तान्तदर्शकम्[2] ।।११८।।
योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः ।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ।।११९।।

अन्वयः–(येन मया कृतम् एतत् नाट्यम् अनुकरणम्। नाट्यं देवानाम् असुराणां च, राज्ञाम् अथ कुटुम्बिनां ब्रह्मर्षीणां च वृत्तान्तदर्शकं विज्ञेयम् । लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः यः अयं स्वभावः, अङ्गाद्यभिनयोपेतः सः नाट्यम् इति अभिधीयते।।११८-११९।।

अभिनव-भारती

ननु किमर्थमेषां नामानि गृहीतानीत्याशङ्क्याऽऽह–देवानामित्यादि। एतेषामेवाऽधिकारिपुरुषत्वात् निराधारस्य वृत्तस्य दर्शयितुमशक्यत्वात् । एतच्चोक्तं पूर्वम्। अत एव यत्र निर्व्याजसहजौदार्यधर्मादिविषये बलिप्रह्लादप्रभृतेः

१. ऋषीणाम् ।
२. कृतानुकरणं लोके नाट्यमित्यभिधीयते।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

प्रसिद्धिस्तत्र सोऽप्युदीरित आश्रयत्वेन। तदाह–असुराणामिति। न च भवद्वैरिण एवाऽत्र वर्णिताः अपि तु ब्रह्मर्षयोऽपि। अनेन 'प्रत्यादेशोऽयमस्माकम्, सुरार्थम्' इत्याशङ्काद्वयमपि परिहृतम्। एतत् तात्पर्येणोपसंहरति–योऽयमिति। अयमिति प्रत्यक्षकल्पानुव्यवसायविषयः। लोकप्रसिद्धसत्यासत्यादिविलक्षणत्वात् यच्छब्दवाच्यः। लोकस्य सर्वस्य साधारणतया स्वत्वेन भाव्यमानश्चर्व्यमाणोऽर्थो नाट्यम्। स च सुखदुःखरूपेण विचित्रेण समनुगतः। न तु तदेकात्मा।

तथा हि–रतिहासोत्साहविस्मयानां सुखस्वभावत्वम्। तत्र तु चिरकालव्यापिसुखानुसन्धिरूपत्वेन विषयौन्मुख्यप्राणतया तद्विषयाशंसा-वाहुल्येनाऽपायभीरुत्वाद् दुःखांशानुवेधो रतेः। हासस्य सानुसन्धानस्य विद्युत्-सदृशतात्कालिकाऽल्पदुःखरूपसुखानुगतौ। उत्साहस्य तात्कालिकदुःखायासरूप-निमज्जनानुसन्धाना यदि(नाऽपि) भाविबहुजनोपकारिचिरतरकालभावि-सुखसञ्चिकीर्षात्मना सुखरूपता। विस्मयस्य निरनुसन्धानतडित्तुल्यसुखरूपता।

क्रोधभयशोकजुगुप्सानां तु दुःखरूपता। तत्र चिरकालदुःखानुसंधिप्राणो विषयगतामन्तिकानां(तात्यन्तिकनाश) भावनाकांक्षाप्राणतया सुखदुःखा-नुवेधवान् क्रोधः। निरनुसन्धितात्कालिकदुःखप्राणतया तदपगमाकांक्षोत्प्रेक्षित-सुखानुसम्भिन्नं भयम्। द्वैकालिकस्त्वभीष्टविषयनाशजः प्राक्तनसुखस्मरणा-नुविद्धः सर्वथैव दुःखरूपः शोकः। उत्पाद्यमानसुखानुसन्धानजीवितविषयात् प(या प) लायनपरायणरूपान्नि(पा नि) षिध्यमानशङ्कितसुखानुविद्धा जुगुप्सा। समस्तम (त) त्पूर्वदुःखसञ्चयसंस्मरणप्राणितः (तोऽ)सम्भावितततदुपरमबहुल-सुख(दुःख) मयो निर्वेदः। एवं व्यभिचारिप्रवृतिष्वपि वाच्यम्। संवित्स्वभावाः सुखादय इति च दर्शने न तत्स्वभावत्वम्। अन्येत्व(तस्त्व)त्र तद्वेदनरूपत्वमेव तेषां मन्तव्यम्। एवं लौकिका ये सुखदुःखात्मानो भावा तत्सदृशस्तत्संस्कारानु-विद्धो नाट्यलक्षणोऽर्थः समुदायरूपस्तस्यैव भागानुसमयः।

एवं दयारत्यादिरूपानुसरणभूतो (एवंभूतो) नाट्यलक्षणोऽर्थः कथं प्रती-तिगोचरीभवतीत्याह–अङ्गादीति। येऽभिनयाः आङ्गिकादयः न च ते लिङ्ग-सङ्केतादिरूपाः, अपि तु प्रत्यक्षसाक्षात्कारकल्पलौकिकसम्यङ्मिथ्या-ज्ञानादिरूपाः। तस्यैव भावाः शृङ्गारादयो रत्यादिविलक्षणास्वादपर्यायप्रतीत्यु-पयोगिनः। अत एवाऽभिमुख्यनयनहेतुत्वादन्यलोकशास्त्राप्रसिद्धेनाऽभि-नयशब्देन व्यपदेश्याः। तथाऽङ्गानि शाखानृत्तगीतानि आदयः प्रधाना येषां तेऽङ्गादयः। तथाऽङ्गानि व्यभिचारिणो भावाः आदयो हेतुरूपा विभावाः। अभिनयाः अनुभावाः। त एते रसाभिमुख्यनयनहेतवः। यद् वक्ष्यते–**विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः** इति। (अ-६.) तैरुपेतः। उप समीपमितः संविद्दर्पणमभिसङ्क्रान्तः। एवंभूतोऽर्थो नाट्यं नटनीयं नर्तनम्। तथा गमनीयं यत्नेन स्वरूपतो हृदयेनाऽनुप्रवेष्टव्यम्। तथा नाटकानां (नटानां) पारम्पर्यात्मकं वृत्तं नाट्यं धर्माम्नायरूपं च। तच्च सुख-दुःखाभ्यां फलरूपाभ्यां

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

सम्यगन्वितम्, तेषां पश्चाद्भावित्वात्। तेन हेयोपादेयव्युत्पत्तिः फलम्। एतच्च वितत्याऽग्रे भावस्वरूपं निरूपयिष्यामः।।११८-११९।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–(क्योंकि मेरे, ब्रह्मदेव के) द्वारा विरचित यह नाट्य त्रिभुवन के कार्यकलापों का अनुकरण है।) इस नाट्यवेद को देवता, दानव, राजाओं, उनके परिजन(प्रजा) तथा ब्रह्मर्षियों के चरित्रों का साक्षात्कार कराने वाला समझना चाहिए। समस्त जगत् सुख और दुःख से परिपूर्ण है और वही उसका स्वभाव है। इस स्वभाव की आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक इन चार प्रकारों के अभिनय द्वारा जो प्रस्तुति होती है, उसी को नाट्य कहते हैं।।११८-११९।।

व्याख्या– असुरों के प्रतिनिधि विरुपाक्ष द्वारा लगाये गये **प्रत्यादेशऽयमस्माकं सुरार्थं भवता कृतः** इस आरोप का यह प्रत्युत्तर है। नाट्यवेद न तो केवल देवताओं को प्रसन्न करने के लिए है और न असुरों को अपमानित करने के लिए है। उसमें केवल देवताओं का विजय और केवल असुरों का पराजय ही चित्रित नहीं है, प्रत्युत देवताओं से लेकर ब्रह्मर्षियों तक का वृत्तांत चित्रित है। उसमें निर्व्याज स्वाभाविक उदारता, धर्म आदि के सन्दर्भ में बलि-प्रह्लाद आदि असुर-राजाओं का भी चित्रण है।

अङ्गाद्यभिनयोपेतः– नाट्य प्रत्यक्षकल्प और अनुव्यवसायात्मिका बुद्धि का विषय होता है। उस नाट्य में त्रिभुवन के समस्त दुःख और सुखों को अंकित किया जाता है, जिसके लिए 'अभिनय' का आश्रय लेना पड़ता है। 'अभिनय' शब्द 'अभि' उपसर्ग, प्रापणार्थक 'णीञ्' धातु और 'अच्' प्रत्यय से निष्पन्न है। नाट्यशास्त्र में 'अभिनय' की परिभाषा और उसके चार भेद इस प्रकार वर्णित हैं–

अभिपूर्वस्तु णीञ् धातुराशिमुख्यार्थनिर्णये।
यस्मात् पदार्थान् नयति तस्मादभिनयः स्मृतः।।
विभावयन्ति यस्माच्च नानार्थान् हि प्रयोगतः।
शाखाङ्गोसंयुक्तस्तस्मादभिनयः स्मृतः।।
चतुर्विधश्चैव भवेन्नाट्यस्याऽभिनयो द्विजाः!।
अनेकभेदबाहुल्यं नाट्ये ह्यस्मिन् प्रतिष्ठितय्।।
आङ्गिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्विकस्तथा।
ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राश्चतुर्धा परिकल्पितः।।"(ना.शा.८/६-९)

रसों के उपयुक्त रति आदि स्थायी भाव, निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव और स्तम्भ आदि सात्त्विक भावों की अनुभावों (चेष्टाओं) द्वारा प्रस्तुति ही नाट्य है, जिसका मुख्य आधार है अभिनय। 'अभिनय' का तात्पर्य प्रयोग द्वारा दर्शकों को विविध विषयों का साक्षात्कार कराना है। वह चार प्रकार से संभव है–

(१) आंगिक अभिनय–वह मुख्यतया तीन प्रकार का होता है–(क) दृष्टि का अभिनय, (ख) शरीर के अंग-प्रत्यंग का अभिनय और (ग) मुख की विशिष्ट भाव भंगिमाएं। इनमें (क) दृष्टि का अभिनय विविध रस, स्थायी भाव और व्यभिचारी भावों की विशिष्ट दृष्टिप्रकारों से विविध होता है। शिर, हस्त, चक्षु, पार्श्व, कटि और पाद ये छः अंग हैं, इनका अभिनय आंगिक अभिनय है। नेत्र, भ्रू, नासिका, अधर,

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

कपोल और अधर ये उपाङ्ग हैं। इनमें नेत्र का अभिनय दृष्टि से संबंधित है, और अन्य उपांगों का संबंध मुख से है। इस प्रकार त्रिविध अभिनय आंगिक अभिनय है। इनका उपयोग विशेषतया नृत्य में अधिक होता है।

(२) **वाचिक अभिनय**–अभिनय में संगीत के सात स्वर, उरस्-शिर और कण्ठ ये तीन स्थान, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और प्रकम्पित ये चार स्वर वर्ण, साकांक्ष और निराकांक्ष विशिष्ट ध्वनि(काकु), उच्च दीप्त आदि छः स्वरालंकार, विच्छेद-अर्पण आदि छः अंगों का अधिक महत्त्व है। वाचिक अभिनय आज रेडियों में अत्यधिक उपादेय है।

(३) **सात्विक अभिनय**–स्वेद-स्तम्भ आदि सात्त्विक भावों की प्रस्तुति सात्त्विक अभिनय है।

(४) **आहार्य अभिनय**–इसके अन्तर्गत नेपथ्यविधान आता है, जिसमें वेश-भूषा, केश-प्रसाधन, मेकअप् आदि सभी समाविष्ट हैं।

प्रस्तुत पद्य में प्रयुक्त 'यत्' सर्वनाम नाट्यवेद की लोकविलक्षणता घोषित कर रहा है। वह नाट्यवेद लोक में प्रसिद्ध सत्य-असत्यादि से विलक्षण है। लोक के जिस विषय-वस्तु की अपनत्व की भावना के साथ रसानुभूति, चर्वणा की जाती है, वही नाट्य है । उसमें सुख की भी अनुभूति होती है और दुःख की भी। अतः वह सुखदुःखात्मक न होकर सुखदुःखसमन्वित है। शृंगार, हास्य, वीर और अद्भुत रस के स्थायी भाव यथाक्रम रति, हास, उत्साह और विस्मय हैं। इनका स्वभाव ही सुखमय है। रौद्र, भयानक, करुण और वीभत्स रस के स्थायी भाव यथाक्रम क्रोध, भय शोक और जुगुप्सा हैं। इनका स्वभाव दुःखमय है। यद्यपि सुखस्वभाव के स्थायी भावों में लेशमात्र दुःख और दुःखस्वभाव के स्थायी भावों में लेशमात्र सुख भी रहता है। (द्र० अभिनव-भारती।) निर्वेद शान्तरस का स्थायी भाव है। इसी प्रकार व्यभिचारी भाव भी सुखदुःखस्वभाव हैं। इन सबकी अनुभूति आंगिक आदि चतुर्विध अभिनय द्वारा होती है, वही नाट्य है। 'अङ्गादिभिः अभिनयैः उपेतः अङ्गाद्यभिनयोपेतः। अङ्गाद्यभिनयोपेतः नाट्यम्।'

इसकी अन्य दो व्याख्याएं अभिनवगुप्तपादाचार्यइस प्रकार करते हैं–

(१) 'अङ्गानि शाखानृत्तगीतानि, आदयः प्रधानाः येषां ने अंगादयः, तैः उपेतः नाट्यम्।' अमरकोष' के अनुसार 'तौर्यत्रिक' और 'नाट्य' पर्यायवाची हैं, जिसमें नृत्य-गीत-वाद्य तीनों का समावेश है।

तौर्यत्रिकं नृत्य-गीत-वाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्।'

(२) अंगानि व्यभिचारिणो भावाः, आदयः हेतुरूपाः विभावाः, अभिनयाः= अनुभावाः, तैः उपेतः नाट्यम्। विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि भावों से युक्त नाट्य होता है। अर्थात् जिसमें रससृष्टि होती है, वह दृश्यकाव्य नाट्य है। 'उपेतः उप समीपम्, इतः अभिसंक्रान्तः।'

तीनों निर्वचनों का निष्कर्ष यह है कि नाट्यवेद वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सामाजिक समस्त जगत् की सुखदुःखानुभूति को आत्मसात् करता है। उसका मुख्य प्राण है–चतुर्विध अभिनय। नृत्य-गीत और वाद्य उसके हृदयावर्जक अंग हैं और रस आत्मा । क्योंकि विभाव- अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रसनिष्पत्ति

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

होती है–'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्तिः' (ना० शा० अ० ६)। तृतीय निर्वचन इसी की ओर संकेत कर रहा है और इसका विस्तृत विवेचन नाट्यशास्त्र के भावस्वरूप में के अवसर पर किया गया है।।११८-११९।।

(वेदविद्येतिहासानामाख्यानपरिकल्पनम् ।
विनोदकरणं[1] लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।।
श्रुतिस्मृतिसदाचारपरिशेषार्थकल्पनम् ।
विनोदजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।।)
एतस्मिन्नन्तरे देवान् सर्वानाह पितामहः ।
[2]क्रियता[3]मद्य विधिवद् यजनं नाट्यमण्डपे ।।१२०।।
बलिप्रदानैर्होमैश्च मन्त्रौषधिसमन्वितैः ।
[4]भोज्यैर्भक्ष्यैश्च पानैश्च[5] बलिः समुपकल्प्यताम् ।।१२१।।
मर्त्यलोकगताः सर्वे शुभां पूजामवाप्स्यथ[6] ।
अपूजयित्वा रङ्गं तु नैव प्रेक्षां प्रवर्तये[7]त् ।।१२२।।

अन्वयः–("एतत् नाट्यं वेदविद्येतिहासानाम् आख्यानपरिकल्पनं लोके विनोदकरणं भविष्यति। एतन् नाट्यं श्रुतिस्मृतिसदाचारपरिशेषार्थकल्पनं लोके विनोदचरणं भविष्यति।) एतस्मिन् अन्तरे पितामहः सर्वान् देवान् आह–"अद्य नाट्यमण्डपे विधिवद् यजनं क्रियताम्। मन्त्रौषधिसमन्वितैः बलिप्रदानैः होमैः च भोज्यैः भक्ष्यैः च पानैः च बलिः समुपकल्प्यताम्। मर्त्यलोकगताः सर्वे(यूयं) शुभां पूजाम् अवाप्स्यथ। रङ्गम अपूजयित्वा तु प्रेक्षां नैव प्रवर्तयेत्।"।।१२०-१२२।।

अभिनव-भारती

एवं सान्त्वेनापसारितेष्वपि विघ्नेषु दिव्यनिदेशनानाममोघत्वात् पूर्वविनियुक्तदेवतांशानां तत्र तत्र सन्निधानाद् यजनंमवश्यं कार्यमिति प्रदर्शयितुमुक्तमेवेतिहासमनुसन्दधन् निरूपयति–एतस्मिन्निति। अन्तर इति समये। विधिवदिति व्याचष्टे–बलिप्रदानैरित्यादि। बल्यन्ते आप्याय्यन्ते देवता अनेनेति बलिः विचित्रवर्णतण्डुलादिरचनाविशेषः। तिलादयश्चाग्नौ हूयन्त इति होमाः। उभयत्र विशेषणं मन्त्रौषधीति। मन्त्रः वक्ष्यमाणः। ओषधयो वचाबलाजमोदप्रभृतयः। प्रशस्तानि धान्यानि च। खरविशदं शष्कुलीमोदकादि भोज्यं भक्ष्यमुच्यते। भक्षणीयन्तु भक्ष्यपायसकृसरादि। पानानि क्षीरेक्षुद्राक्षारसादीनि। बलिः पूर्वोक्तो रचनाविशेषः। एतैर्विच्छित्तियोजितैर्विविधतया कल्प्यताम्। शोभाप्रधानं हि नाट्ये सर्वम्।

ननु देवानां देवपूजाकरणे किं फलमित्याह–मर्त्यलोकगता इत्यादि। यद् यदाचरति श्रेष्ठ इति न्यायादिति भावः। प्रवर्तयेदिति। देवानुष्ठिता-

---

१. जननं – पा.
२. कुरुध्वम्– पा.
३. अत्र, नाट्ये – पा.
४. जप्यैः – पा.
५. भोज्यैः –पा.।
६. मर्त्यलोकेष्वयं वेदः शुभां पूजामवाप्स्यति – पा.।
७. प्रवर्तते – पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

चारानुवर्तित्वात्। लोक इति शेषः।।१२०-१२२।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–("यह नाट्य भविष्य में वेदविद्या और उसके इतिहास की आख्यायिकाओं की संरचना करते हुए त्रिभुवन में विनोद अर्थात् दुःखों का परिहार करेगा। साथ ही इसमें श्रुति से सम्बद्ध स्मृतियों तथा सदाचार को भी चित्रित किया जायेगा।") इस प्रकार विरूपाक्ष को समझाते हुए बीच में ही पितामह ब्रह्मदेव ने सभी देवों से कहा–'आप आज नाट्यशाला में शास्त्रीय रीति से हवन करें। आप मन्त्र और औषधियों से युक्त बलिदान, होम, भक्ष्य-भोज्य और पेय द्रव्यों से पूजा-सामग्री सज्जित करें। फलतः मृत्युलोक में पहुंचने पर वहां के निवासियों द्वारा आपकी विधिवत् और मंगलमय अर्चना होगी। बिना रङ्गमंच की पूजा के नाट्यप्रयोगों को मंचस्थ नहीं करना चाहिए।।१२०-१२२।।

व्याख्या–इसप्रकार पितामह ब्रह्मदेव नें असुरों के प्रतिनिधि विरूपाक्ष को समझाकर यद्यपि विघ्न-वाधा दूर की, तथापि पितामह ब्रह्मदेव द्वारा देवताओं को पूर्व में कुछ निर्देश दिए गये थे, जो प्रभावी थे, व्यर्थ नहीं थे। अत एव देवता नाट्यशाला के विविध भागों में अंशरूप में विद्यमान थे। उनकी संतृप्ति के लिए बलि और यजन आवश्यक था। उसी इतिहास की चर्चा यहां की गयी है। यजन (हवन) की शास्त्रीय पद्धति और फलश्रुति भी यहां प्रदर्शित है। हवन को 'होम' इसलिए कहते हैं कि हवनकुण्ड में तिल-घृत आदि हविर्द्रव्यों की आहुतियां समर्पित की जाती हैं। वे आहुतियां समंत्रक होती हैं, और हवनीय सामग्री में वचा, वला, शमी आदि वनस्पतियां और यव आदि प्रशस्त धान्य सम्मिलित हैं। जलेवी, मोदक आदि भोज्य द्रव्य हैं। खीर आदि 'भक्ष्य' द्रव्य हैं। दूध, गन्ने का रस, अंगूर का रस, शर्बत आदि पेय पदार्थ 'पानक' के अन्तर्गत हैं। पूजा सामग्री में उक्त द्रव्य सम्मिलित होने चाहिए। 'यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत् तदेवेतरो जनः' इस न्याय के अनुसार मर्त्यलोक के निवासी देवताओं का अनुकरण करते हैं और मुत्यु-लोक में देवताओं की पूजा करते हैं। बिना रंगदेवता की पूजा किये नाट्यप्रस्तुति नही करनी चाहिए।।१२०-१२२।।

अपूजयित्वा रङ्गं तु यः प्रेक्षां कल्पयिष्यति ।
निष्फलं तस्य तत् [1]ज्ञानं तिर्यग्योनिं च यास्यति ।।१२३।।

अन्वयः–यः तु रङ्गम् अपूजयित्वा प्रेक्षां कल्पयिष्यति, तस्य त् ज्ञानं निष्फलम्, सः तिर्यग्योनिं च यास्यति।।१२३।।

अभिनव-भारती

ननु यदि लोकः सदाचारं नाऽनुवर्तेत, ततः किमित्याह–अपूजयित्वेति। निष्फलमिति। तस्येति नाट्याचार्यस्य। पारलौकिकमपि प्रत्यवायमाह–तिर्यग्-योनिं चेति॥१२३॥

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–जो बिना रंगदेवता की पूजा किये नाट्य-प्रस्तुति करता है, उसका वह समस्त ज्ञान निष्फल है। (और उसका जीवन पशु-पक्षितुल्य है।) वह निश्चित ही पशु-पक्षी

१. तस्य तन्नित्फलं ज्ञानम्।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

की योनि में जन्म लेगा।।१२३।।

व्याख्या– प्रस्तुत पद्य में सदाचार के विपरीत आचरण का परिणाम अंकित है। रंगपूजन के उल्लंघन का प्रत्यक्ष परिणाम उसके ज्ञान की निष्फलता और पारलौकिक परिणाम पशु-पक्षी की योनि में जन्म लेना है।।१२३।।

यज्ञेन संमितं ह्येतद् रङ्गदैवतपूजनम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं नाट्ययोक्तृभिः[1] ।।१२४।।
नर्तकोऽर्थपतिर्वापि यः पूजां न करिष्यति।
न कारयिष्यत्यन्यैर्वा प्राप्नोत्यपचयं तु सः[2] ।।१२५।।
यथाविधि यथादृष्टं[3] यस्तु पूजां करिष्यति।
स लप्स्यते शुभानर्थान् स्वर्गलोकं च यास्यति[4] ।।१२६।।

अन्वयः–हि एतत् रङ्गदैवतपूजनं यज्ञेन सम्मितम्, तस्मात् नाट्योक्तृभिः सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यम्। यः नर्तकः अर्थपतिः अपि वा पूजां न करिष्यति, अन्यैः वा न कारयिष्यति, सः तु अपचयं प्राप्नोति। यस्तु यथाविधि यथादृष्टं पूजां करिष्यति, सः शुभान् अर्थान् लप्स्यते, स्वर्गलोकं च यास्यति।।१२४-१२६।।

अभिनव-भारती

ननु यद्यपूजने प्रत्यवायस्तर्हि पूजने किं तन्निवृत्तिमात्रं फलम्? नेत्याह–यथाविधीति यथा देवैर्विहिता। कथमेतज्ज्ञायत इत्याह–यथादृष्टमिति। शास्त्रदृष्टोऽसौ विधिरित्यर्थः। अर्थान् शुभानिति। ऐहलौकिकधनमान-प्रसिद्धिलाभ उक्तः।।१२४-१२६।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–क्योंकि रंगदेवता की पूजा करना यज्ञ के समान है, इसलिए नाट्य-कर्मी प्रयत्नपूर्वक उसे अवश्य करें। जो नट अथवा राजा-सेठ आदि रंगदेवता का पूजन नहीं करता, अथवा दूसरों से नहीं कराता, उसका ह्रास होता है। जो शास्त्रीय पद्धति से, जिस प्रकार देखता चला आ रहा हो, उसी प्रकार पूजा का सम्पादन करता है, उसका मंगल होता है उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।।१२४-१२६।।

व्याख्या– उक्त पद्यों में रंगदेवता की पूजा न करने का और उसके करने का फल प्रतिपादित है। सब के लिए जो यज्ञ का फल है, वही नाट्यशिल्पी के लिए रंगदेवता की पूजा का फल है। अव यह प्रश्न उपस्थित है कि पूजा न करने से नाट्यकर्मी के सम्मुख विघ्नबाधा उपस्थित होती है, तो क्या पूजन करने से मात्र विघ्न बाधा दूर होगी? इसका उत्तर है नहीं। साथ ही उसका मंगल भी होगा और स्वर्गप्राप्ति भी होगी। 'यथाविधि यथादृष्टम्' का अभिप्राय यह है कि वह पूजन शास्त्रसम्मत होना चाहिए, अशास्त्रीय नहीं। 'शुभान् अर्थान् लप्स्यते' का अर्थ है वह समाज में धन-मान-प्रसिद्धि प्राप्त करेगा।।१२७।।

---

१. रङ्गपूजनम्–पा.।
२. कारयिष्यति वा चैव प्राप्स्यत्यपचयं तु सः–पा.।
३. यथाशास्त्रम्–पा.।
४. गमिष्यति–पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

एवमुक्त्वा[1] तु भगवान्[2] द्रुहिणः सह दैवतैः ।
रङ्गपूजां कुरुष्वेति मामेवं समचोदयत् ।।१२७।।

।।इति श्रीभारतीये नाट्यशास्त्रे नाट्योत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

अन्वयः—भगवान् द्रुहिणः तु दैवतैः सह एवम् उक्त्वा 'रङ्गपूजां कुरुष्व' इति एवं मां समचोदयत्।।१२७।।

अभिनव-भारती

एवं मर्त्यान् प्रत्यभिधाय प्रकृतमेव पुराकल्पमनुसन्धत्ते—एवमुक्त्वेति। नाट्याचार्यस्यैव देवयजनेऽधिकारः। तस्यैव फललाभः। कवेः प्रेक्षाप्रवर्तयितुश्च तत्प्रयोक्तृत्वमित्यनेनोक्तम्। रज्यतेऽनेनेति रङ्गो नाट्यम्। तदाधारत्वान्मण्डपः। तदधिष्ठातृत्वाच्च देवता अपीति मण्डपाध्यायस्य द्वितीयस्योपोद्घातं करोतीति विशेषः।।१२७।।

त्रिनेत्रपादाब्जसदास्तवो (समाश्रयो)ल्लसत्-
प्रसादभाक् स्फुटमिह नाट्यशासने ।
प्रवर्तितेयं हृदये महाधियां
प्रकाशतामभिनवगुप्तभारती ।।

।।इति श्रीमहामाहेश्वराभिनवगुप्ताचार्यविरचितायामभिनवभारत्यां भारतीय-नाट्यशास्त्रविवृतौ नाट्योत्पत्तिः प्रथमोऽध्यायः।।१।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ— भगवान् ब्रह्मदेव ने इसप्रकार कहकर मुझे (भरतमुनि को) देवताओं के साथ रङ्गपूजा करने के लिए इस प्रकार प्रेरित किया।।१२७।।

व्याख्या—'क्रियतामद्य विधिवद् यजनं नाट्यमण्डपे' पद्य से लेकर 'स लप्स्यते शुभान् अर्थान् स्वर्गलोकं च यास्यति' पद्य तक नाट्यमण्डप की पूजा का जो विधान किया गया है, वह विशेषतः मृत्युलोकवासियों के लिए है। यद्यपि ब्रह्मदेव ने देवताओं को नाट्यमण्डप की पूजा के लिए प्रेरित किया। ब्रह्मदेव नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक हैं, जिसका प्रथमोपदेश उन्होनें भरतमुनि को दिया। **मामेवम् समचोदयत्** इस अंश से यह ध्वनित होता है कि रङ्गपूजा का अधिकार केवल नाट्याचार्य को ही है और उसका फल भी उसी को प्राप्त होता है। नाटककार और रङ्गकर्मी दोनों प्रयोक्ता की कोटि में आते हैं।

रङ्गपूजां कुरुष्व—रङ्ग शब्द से नाट्य, नाट्यमण्डप और उसके अधिष्ठाता देवता ये तीनों अर्थ अभिव्यंजित होते हैं। **रज्यते अनंन इति रङ्गः** इस निर्वचन के अनुसार जिसके द्वारा मनोरंजन होता है, वह नाट्य रङ्ग कहलाता है। जहां उसका मंचन किया जाता है, वह नाट्यमण्डप भी रङ्ग कहलाता है और रङ्ग (नाट्य-मण्डप) की अधिष्ठात्री देवता भी रङ्ग कहलाती हैं। इस प्रकार द्वितीय मण्डपाध्याय का उपक्रम भी इसमें निहित है।

।।इस प्रकार भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र की व्याख्या 'तात्पर्यदीपिका' का नाट्योत्पत्ति नामक प्रथम अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।१।।

●

---

१. एवं भवत्विति प्राह—पा.
२. शास्त्रोत्पत्तिर्नाम—पा.

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भरतस्य वचः श्रुत्वा पप्रच्छु[1]र्मुनयस्ततः[2]।
भगवन् श्रोतुमिच्छामो यजनं रङ्गसंश्रयम् ।।१।।
अथवा याः क्रियास्तत्र लक्षणं यच्च पूजनम्।
भविष्यद्भिर्नरैः कार्यं कथं [3]तन्नाट्यवेश्मनि ।।२।।

अन्वयः – ततः मुनयः भरतस्य वचः श्रुत्वा पप्रच्छुः। 'भगवन् ! रङ्गसंश्रयं यजनं श्रोतुम् इच्छामः। अथवा याः तत्र क्रियाः, यच्च लक्षणं पूजनम् , भविष्यद्भिः नरैः तत् नाट्यवेश्मनि कथं कार्यम्?।।१।।२।।

अभिनव-भारती

संसारनाट्यजननधातृबीजलताजुषीम् ।
जलमूर्ति शिवां पत्युः सरसां पर्युपास्महे ।।

वृत्तेऽध्याये यथातत्त्वमिति (१-५) वचनवशात् भरतमुनिर्यजनादेःपाठ्यादिवदन्तरङ्गतो पश्यन् परमार्थनिर्णयेन कुर्यात्। अत एव मुनिः 'गानं रङ्गश्च सङ्ग्रहः' (६-१०) इति रङ्गं सर्वं पश्चाद् वक्ष्यति। किन्तु (द्वितीये तु) कथं मण्डपलक्षणं स्यात् ? इत्याशङ्कमाना 'मुनयः पप्रच्छुः' इति परिकल्प्य मुनिराह– भरतस्य वच इति। ब्रह्मैव कविः, शक्र इव प्रयोजयिता, भरत इव नाट्याचार्यः, कोहलादय इव नटाः, अप्सरस इव सुकुमारोपकरणं, स्वातिरिवानद्धवित् , नारदवद् गीतज्ञः, सुरक्षितो मण्डपः, इन्द्रोत्सवसदृशः प्रयोगकालः, प्रशान्तरागद्वेषादिकाः सामाजिकाः, देवतापूजनपूर्वकः प्रयोग इत्येवं सङ्ग्रहेण पूर्वाध्यायनिरूपितमर्थमवधार्येत्यर्थः। (यजनमिति।) 'रङ्गपूजां कुरुष्व' इति वृत्तेऽध्याये निरूपितमिति सङ्गतिः। देवविषये मण्डपस्य क्रियां विना न निष्पत्तिरिति प्रथमं क्रियाप्रश्नस्तेषां विस्मृतोऽपि झटिति स्मृतिं गत इत्यभिप्रायेण दर्शयति– अथ वेति। पूर्वप्रश्नार्थोपमर्दनाय। अत एव पूजनमिति पुनर्वचनम्। क्रियाः कर्तव्यता। लक्षणं सन्निवेशपरिमाणादि। अतीतेषूपदेशो व्यर्थ इति भविष्यद्भिरित्युक्तम्। देवानां मनसा सम्पत्तेः नरैरिति। ननु लक्षणं किं कार्यम्? लक्ष्यत इति लक्षणं सन्निवेश इत्यदोषः। अथ वा भाविभिर्यत् कार्यं नाट्यवेश्म तत्र यत् क्रियालक्षणं पूजनं तत् कथमिति सम्बन्धः।।१।।२।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः–भरतमुनि के वचन को सुनकर मुनियों ने पुनः प्रश्न किया–'भगवन्! हमलोग रङ्गदेवता से संबद्ध हवन के सन्दर्भ में सुनना चाहते हैं। उस हवन में जो क्रियाकलाप होते हैं, पूजा का जो लक्षण है, भविष्य में नाट्यशाला में रंगकर्मी उसका सम्पादन किस प्रकार करेगे इस विषय में हम जानना चाहते हैं।।१।।२।।

सन्दर्भ–नाट्योत्पत्ति नामक प्रथमाध्याय में मुनियों ने भरतमुनि से पांच प्रश्न किये थे–

---

१. प्रत्यूचुः।
२. तदा।
३. वै।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य वा कृते ।
कत्यंगः किंप्रमाणश्च प्रयोगश्चास्य कीदृशः ।।(ना. शा.१/४-५)

और उसका यथातत्त्व (तात्त्विक) उत्तर जानना चाहते थे। भरत मुनि जिसप्रकार पाठ्य आदि को हृदयंगम करते हैं, उसी प्रकार यजन(हवन) आदि को भी। अत एव वे षष्ठाध्याय में 'गानं रङ्गश्च सङ्ग्रहः'(६-१०) इत्यादि वचनों से रङ्गसम्बन्धी सभी विवेचन कर रहे हैं। इस अध्याय में मण्डपविधान का विवेचन है, अतः इसी से संवद्ध ऋषियों द्वारा जिज्ञासा की परिकल्पना करते हुए उसका समाधान प्रस्तुत कर रहे हैं।

व्याख्याः—भरतस्य वचः श्रुत्वा— प्रश्नकर्ता मुनि यह जानते थे कि कवि ब्रह्मदेव के समान होता है। आचार्य मम्मट ने तो कविसृष्टि को ब्रह्मदेव की सृष्टि से विलक्षण स्वीकार किया है। नाट्यशिल्पी इन्द्र के समान होते हैं। नाट्याचार्य (दिग्दर्शक) भरत मुनि के समान होते हैं। अभिनेता कोहल आदि प्राचीन नटों के समान उन्ही के अनुयायी हैं। अभिनेत्रियां अप्सराओं के समान सुकुमार होती हैं। मृदङ्गादि अवनद्ध वाद्य-वादन कलाप्रवीण स्वाति जैसे मुनि उन्हीं के अनुयायी हैं। गायनाचार्य नारदमुनि-सदृश हैं। उससमय नाट्यमण्डप देवताओं से सुरक्षित हो चुका था। जिस समय पहला नाट्यप्रयोग सम्पन्न हुआ, वह इन्द्र ध्वज पूजनोत्सव का महान् अवसर था। उस समय असुर आदि दर्शकों में जो राग-द्वेष उत्पन्न हुआ था, उसे ब्रह्मदेव के सामवचनों ने शान्त कर दिया था।

यजनं रङ्गसंश्रयम्— साथ ही प्रथम नाट्यप्रयोग के पूर्व देवताओं की पूजा अर्चना द्वारा उन्हे प्रसन्न किया गया था। यह सब जानने के पश्चात् ही उन्हें रङ्गमंचसंबंधी यजन(हवन) विषयिणी जिज्ञासा हुई, जिसका उपक्रम प्रथमाध्याय में 'रङ्गपूजां कुरुष्व' इत्यादि द्वारा किया गया है। और यह प्रश्न भी मानवों से संबंधित है, देवताओं से नहीं।

साथ ही वह भविष्यकाल के मानवों से संवद्ध है, भूत अथवा वर्तमान के नहीं। इसी दृष्टि से **'भविष्यद्भिर्नरैः कार्यम्'** यह प्रयोग है।

अथवा याः क्रिया स्तत्र लक्षणं यच्च पूजनम्— रङ्गपूजां कुरुष्व इसमें पूजा शब्द प्रयुक्त है। इसमें दुवारा इसका प्रयोग उस पूजन की विधि क्या है, उसका सम्पादन किसप्रकार किया जाता है यह सब जानने के लिए है। **लक्षणं यच्च पूजनम्** इसमें **लक्ष्यते अनेन इति लक्षणम्** इस निर्वचन के द्वारा नाट्यमण्डप का सन्निवेश (रचना, आकार) और परिमाण सूचित हो रहा है, क्योंकि नाट्यमण्डप और उसकी अधिष्ठात्री देवता का पूजन सम्भव है।।१-२।।

इहादिर्नाट्ययोग[1]स्य नाट्यमण्डप एव हि[2] ।
तस्मात् तस्यैव तावत् त्वं लक्षणं वक्तुमर्हसि ।।३।।
तेषां तु वचनं श्रुत्वा मुनीनां भरतोऽब्रवीत् ।
लक्षणं पूजनं चैव श्रूयतां नाट्यवेश्मनः ।।४।।

अन्वयः—"हि इह नाट्ययोगस्य आदिः नाट्यमण्डपः एव, तस्मात् त्वं तस्य

१. वेदस्य—पा.।
२. कीर्तितो नाट्यमण्डपः—पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

लक्षणम् एव वक्तुम् अर्हसि।" भरतः तु तेषां मुनीनां वचनं श्रुत्वा अब्रवीत्–(भवद्भिः) नाट्यवेश्मनः लक्षणं पूजनं चैव श्रूयताम्।।३-४।।

अभिनव-भारती

पूर्वकृते प्रश्नपञ्चके निर्णयं कृत्वेदं प्रश्नान्तरं निर्णयेदित्याशङ्कमाना मुनयः पुनराहुरिहादिरिति। नाट्यस्य योग उत्पत्तिः। तावदित्यनेन पूर्वप्रश्नितस्याऽत्याग उक्तः। एवकारो लक्षणशब्दान्तरम्। इतिकर्तव्यतायाः तदङ्गत्वात्। यजनस्य च तन्निष्पत्यनन्तरत्वात्। तेषामिति। अन्यथा तु न ब्रूयादेवोक्ताद्धेतोः। अनेन श्लोकेन लक्षणपूजनज्ञानं देवनामप्युपयोगि। सङ्कल्पितस्याऽपि निर्माणस्य ज्ञानापेक्षित्वादित्युक्तम्। अत एवाऽत्र क्रियेति नोक्तम्।।३-४।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–"यतः नाट्ययोग (नाट्य-सृष्टि) का प्रथम साधन नाट्य-मण्डप ही होता है, अत: आप उसका स्वरूप ही विवेचित कर सकते हैं।" उन जिज्ञासु मुनियों के जिज्ञासा-वचन को सुनकर भरतमुनि ने कहा–"आप सभी नाट्यमण्डप की परिभाषा और उसकी पूजन-विधि सुनें।।३-४।।

व्याख्या–प्रथमाध्याय (४-५) में निरूपित पांच प्रश्नों से यह भिन्न प्रश्न है। प्रस्तुत पद्य में प्रयुक्त 'नाट्ययोग' शब्द का अर्थ है नाट्य की सृष्टि। प्रस्तुत पद्य में प्रयुक्त 'एव' कार 'लक्षण' शब्द से सम्बद्ध है। 'नाट्ययोग' शब्द का अर्थ नाट्य की सर्जना से है, जिसका प्रयोग यह सूचित कर रहा है कि नाट्यमण्डप की रचना के बाद ही नाट्य, नाट्य-मण्डप और रंगदेवता की पूजा का विधान है। इस श्लोक में प्रतिपाद्य देवताओं का पूजन और हवन नाट्य-मण्डप के निर्माण के वाद ही सम्भव है, जो देवताओं के लिए भी उपयुक्त है।।३-४।।

दिव्या[1]नां मानसी सृष्टिर्गृहेषूपवनेषु च।
(यथाभावाभिनिर्वर्त्याः सर्वे भावास्तु मानुषाः)।
नराणां यत्नतः कार्या लक्षणाभिहिताः क्रियाः।।५।।
श्रूयतां तद् यथा यत्र[2] कर्तव्यो नाट्यमण्डपः।
तस्य वास्तु च पूजा च यथा योज्या प्रयत्नतः[3]।।६।।

अन्वयः–गृहेषु उपवनेषु च दिव्यानां मानसी सृष्टिः।(मानुषाः तु सर्वे भावाः यथाभावाभिनिर्वर्त्याः। नराणां लक्षणाभिहिताः क्रियाः यत्नतः कार्याः।) यथा यत्र नाटमण्डपः कर्तव्यः, तस्य वास्तु च पूजा च प्रयत्नतः यथायोज्या, तत् श्रूयताम्।।५-६।।

अभिनव-भारती

ननु किं क्रियै (या नै) वोच्यत इत्याह–दिव्यानामिति। श्रूयतामित्यनुवर्तते। नराणां कार्या क्रिया इतिकर्तव्यता च श्रूयताम्। चकाराल्लक्षणपूजने। शास्त्रेणोक्ता नराणामेव कस्मादित्याह–दिव्यानामिति। सृज्यमानत्वेन कर्मणोऽपि विषयत्ववि(त्वमेव) यत्र जन्मक्रमनियतप्ररोहकुसुमफलानि

१. देवानाम् – पा.।
२. तत्र – पा.।
३. तस्य दैवतपूजा च यथा योज्या च वास्तुपु – पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

बहुविचित्रतरुलतास्थलीसरोवरक्रीडमयान्युपवनान्यपि मानसानि, तत्र गृहे का सम्भावनेति। श्रूयतामिति। तदिति। यतो नराणां यत्नतः कार्यताप्रकारः। यत्रेति देशकालौ। वास्त्विति। गृहभूतिगतं परिमाणमिह मन्तव्यम्। (पूजा) लक्षणोक्तेत्युक्तम्।।५।।६।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–घर और घर के बगीचों में दिव्ययोनियों की मानसी सृष्टि होती है। (मनुष्ययोनि के प्राणियों के सभी भावों के क्रियाकलापों का सम्पादन उन भावों की परिभाषाओं के अनुसार करना चाहिए।)

इसलिए जिस स्थान में जिस समय जिस प्रकार नाट्यमण्डप की रचना करनी चाहिएं, उसकी वास्तु की योजना यथायोग्य तदनुसार ही करनी चाहिए और नाट्य-मण्डप की मुख्यदेवता तथा अन्य देवताओं को उन स्थानों पर प्रतिष्ठित कर तदनुसार प्रयत्नपूर्वक अनका पूजन भी करना चाहिए।।५।।६।।

व्याख्या–यह युग्मक है, क्योंकि **श्रूयताम्** इस क्रिया पद के **दिव्यानां मानसी सृष्टिः** इत्यादि अवान्तर वाक्य कर्मकोटि में हैं। अथवा **याः क्रियास्तत्र** (२/३) इत्यादि प्रश्न का समाधान भी इसमें समाहित है। नाट्य-प्रयोग में मानव-मात्र के क्रिया-कलापों के अभिनय का विधान इसलिए है कि दिव्ययोनियों के प्राणियों को क्रियाकलापों की आवश्यकता ही नहीं होती, वे संकल्पमात्र से सृष्टि कर सकते हैं–**दिव्यानां मानसी सृष्टिः**। वे जहां विहार करते हैं, वे घर-उपवन भी उन्हीं के केवल मानस-संकल्प से उत्पन्न होते हैं, उनके लिए उन्हें किसी भी प्रकार के प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। '**तत्**' हेतुवाचक सर्वनाम है, जिसका अर्थ है "यतः 'मानव प्रयत्न से ही किसी अभीष्ट प्राप्ति में सफल होते हैं 'अतः' उनके क्रियाकलापों आदि के विषय में आप सुनें।' '**वास्तु**' का अर्थ है नाट्यमण्डप की भूमि का आकार-प्रकार, लम्बाई-चौड़ाई और उसका मानचित्र (नक्शा) आदि। पूजा का तात्पर्य पूजा की शास्त्रीय विधि है।।५।।६।।

इह प्रेक्षागृ[1]हं दृष्ट्वा धीमता[2] विश्वकर्मणा।
त्रिविधः सन्निवेशश्च शास्त्रतः परिकल्पितः।।७।।
विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव तु[3] मण्डपः।
तेषां त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथाऽवरम्।।८।।
प्रमाणमेषां निर्दिष्टं हस्तदण्डसमाश्रयम्।
शतं चाऽष्टौ चतुःषष्टिर्द्वात्रिंशच्चेति निश्चितम्।।९।।

अन्वयः– धीमता विश्वकर्मणा इह शास्त्रतः प्रेक्षागृहं दृष्ट्वा तन्निवेशश्च त्रिविधः कल्पितः। मण्डपः तु विकृष्टः चतुरस्रः च त्र्यस्रः च एव। तेषां त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठं मध्यं तथा अवरम्। एषां प्रमाणं हस्तदण्डसमाश्रयं निर्दिष्टम्। तम् अष्टौ च चतुःषष्टि द्वात्रिंशत् च इति निश्चितम्।।७।।८।।९।।

अभिनव-भारती

तत्र किं तल्लक्षणमित्याह–इह प्रेक्षागृहमिति। इह नाट्यमण्डपे। सन्निवेशः।

१. प्रेक्षागृहाणां तु-पा.।
२. श्रीमता-पा.।
३. हि-पा.।
४. द्वात्रिंशच्चेति निश्चितः, हस्ता द्वात्रिंशदेव च-पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

चशब्दात् प्रमाणमेतत्। विश्वकर्मणा परिकल्पितः। किं स्वबुद्ध्या? न, अपि तु शास्त्रतः प्रेक्षागृहं विचार्य। शक्तश्चाऽसौ विचार इत्याह–धीमतेति। ज्ञायत इत्याह। शास्त्रं कृतं तदप्यपरशास्त्रमूलमिति प्रवाहानादित्वमुक्तम्। कोऽसौ? त्रिविध इत्याह–विकृष्टश्चेति। विभागेन कृष्टो दीर्घो न तु चतसृषु दिक्षु साम्येन। तिस्रोऽस्त्रयो यस्य, त्र्यस्त्रि तदस्मिन्निति मत्वर्थीयोऽच्। एतान्येव त्रीणि ज्येष्ठादीनीति केचित्। अन्ये तु प्रत्येकं त्रित्वमिति नवैतेऽत्र भेदा इत्याहुः। एतदेव युक्तम्। तथा चाह–तेषामिति। प्रमाणं हस्तदण्डाश्रयं ज्येष्ठादित्वम्, न तु सन्निवेशाश्रयमिति यावत्।

शतं चाऽष्टौ चतुःषष्टिर्द्वात्रिंशच्चेति निश्चयात्

इति केचित् पठन्ति। तेषां चाऽस्ति(पि) हस्तदण्डसमाश्रयत्वं वाचकं भवति। एतच्च सर्वं सम्भवमात्रेणोच्यते, अनु(नानु) वादकतया। नत्वियन्तो भेदा उपयोगिनः। एवं चाऽष्टादश भेदास्तावच्छास्त्रे दृष्टाः। ते चाऽन्यत्वे(द्यत्वे) यद्यप्यनुपयोगिनः, तथाऽपि च सम्प्रदायाविच्छेदार्थं निर्दिष्टाः केषाञ्चित् कदाचिदुपयोगी भविष्यतीति। यथोक्तम्–अप्रयुक्ते दीर्घसत्रवत् इति। ।।७।।८।।९।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–यहां पर प्रेक्षागृह को देखकर प्रतिभाशाली स्थापत्यवेत्ता विश्वकर्मा ने शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर तीन प्रकार की नाट्यशाला की परिकल्पना की–विकृष्ट, चतुरस्त्र और त्र्यस्त्र। साथ ही उनके तीन प्रमाण (आकार-प्रकार) निर्धारित किये और ज्येष्ठ, मध्यम और अवर ये तीन नाम उसी प्रमाण के आधार पर प्रदान किये। ये प्रमाण हाथ और दण्ड के आधार पर थे। कुछ नाट्य-मण्डप एक सौ आठ (१०८) हाथ और दण्ड के निर्धारित किये गए, कुछ चौंसठ (६४) हाथ और दण्ड वाले और कुछ बत्तीस(३२) हाथ और दण्ड के नाट्यमण्डप।

व्याख्या– इस विशेषक में नाट्यमण्डप के विभिन्न आकार-प्रकार निर्धारित किये गए हैं। भूमि पर नाट्यगृह का निर्माण किसप्रकार करना चाहिए, उसका आकार-प्रकार क्यां होना चाहिए, विश्वकर्मा ने वास्तुशास्त्र के आधार पर इस का निर्धारण किया, केवल अपनी बुद्धि से नहीं। यद्यपि वे धीमान्, प्रतिभाशाली थे। **धीमता विश्वकर्मणा शास्त्रतः प्रेक्षागृहं दृष्ट्वा (विचार्य)** इस पदावली का यही अर्थ है। विकृष्टश्चतुरस्त्र च त्र्यस्त्रश्चैव तु मण्डपः, नाट्यमण्डप अनेकविध हैं–

(१) कुछ 'विकृष्ट' नाट्यमण्डप होते हैं–**विभागेन कृष्टः दीर्घः विकृष्टः।** वह नाट्यशाला लम्बी होनी चाहिए। ऐसे आयताकार नाट्यमण्डप 'विकृष्ट' कहलाते हैं। उनका विभाग चारों दिशाओं में बराबरी का नही होना चाहिए।

(२) चतुरस्त्र–**चतुस्त्रः अस्त्रयः यस्य तत् चतुरस्त्रि, तत् अस्मिन्निति चतुरस्त्रः।** वर्गाकार नाट्यमण्डप 'चतुरस्त्र' कहलाते हैं।

(३) त्र्यस्त्र–**तिस्त्रः अस्त्रयः यस्य तत् त्र्यस्त्रि, तत् अस्मिन्निति इति त्र्यस्त्रः।** त्रिभुजाकार नाट्यमण्डप 'त्र्यस्त्र' कहलाते हैं। कुछ लोगों के अनुसार ज्येष्ठ, मध्यम और अवर ये तीन नाम यथाक्रम विकृष्ट, चतुरस्त्र और 'त्र्यस्त्र' नाट्यमण्डपों के हैं। किन्तु अन्य लोगों के अनुसार ज्येष्ठ, मध्यम और अवर नाट्यमण्डपों के तीन-तीन भेद होते हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

इस प्रकार इनके नौ(९) भेद हैं। नाप के विचार से ज्येष्ठ आदि प्रत्येक नाट्यमण्डप एक सौ आठ(१०८), चौंसठ(६४), और बत्तीस(३२) हाथ अथवा दण्डप्रमाण के होते हैं।

इस प्रकार नाट्यमण्डप के अठारह भेद होते हैं। अभिनवगुप्ताचार्य के समय भी इनके कुछ प्रकार अनुपयुक्त थे, तथापि उन्होनें 'अभिनव-भारती' में उनका निर्देश इसलिए किया कि शास्त्र का उच्छेद न हो और भविष्य में उसका उपयोग हो। उसके लिए उन्होनें एक उदाहरण प्रस्तुत किया–दीर्घसत्रवत्। 'सत्र' बारह वर्षों तक निरन्तर अखण्ड रूप से चलने वाले दीर्घावधि के यज्ञसमूह को कहते हैं। उनका संपादन सदा नहीं होता, अपितु कभी-कभी होता है। परन्तु शास्त्रों में उनका उल्लेख इसलिए आता है कि कभी उसका उपयोग किया जा सकता है। वह यज्ञानुष्ठान शास्त्रीय रीति से होना चाहिए। इसीप्रकार यहां नाट्यमण्डप की नानाविधाओं का उल्लेख किया गया है।।७।।८।।९।।

अष्टाधिकं शतं ज्येष्ठं चतुःषष्टिस्तु मध्यमम्।
कनीयस्तु तथा वेश्म हस्ता द्वात्रिंशदिष्यते[1] ।।१०।।
देवानां तु भवेत् ज्येष्ठं नृपाणां मध्यमं भवेत्।
शेषाणां प्रकृतीनां तु कनीयः संविधीयते ।।११।।

अन्वयः– अष्टाधिकं शतं हस्ताः ज्येष्ठं वेश्म इष्यते। चतुःषष्टिः हस्ताः तु मध्यमं वेश्म इष्यते। तथा द्वात्रिंशत् हस्ताः तु कनीयः वेश्म इष्यते। देवानां तु ज्येष्ठं भवेत्, नृपाणां तु मध्यमं भवेत्। शेषाणां प्रकृतीनां तु कनीयः वेश्म संविधीयते।।१०।।११।।

अभिनव-भारती

इदं त्विहोपयोगीति दर्शयति–**अष्टाधिकं शत**मित्यादि। **इष्यत** इति। अन्यत्वे(अद्यत्वे)पीत्याशयः। **देवाना**मिति। यत्र देवासुरप्राया एव नायक-प्रतिनायकास्तत्र डिमादावारभटीप्रधाने विततरङ्गपीठोपयोगात् भाण्डवाद्य-प्रधानत्वाच्च परिक्रमणादेरुच्चतरदीर्घतरदीर्घतालपरिग्रहादियोगाच्च व्यक्त-भावस्याऽसम्भवादष्टोत्तरशतहस्तो मण्डप इत्यर्थः। यस्तु व्याचष्टे प्रेक्षका अत्र देवादयो विवक्षिता न तु प्रयोज्याः, तेषां नियतसंख्याकत्वादिति। तस्याऽस्म-दभिप्रायो न स्मृतिपथमागतः सन्नपि दशरूपकादौ। स चाऽनन्तरमेव दर्शयिष्यते।।।१०-११।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ– **एक सौ आठ(१०८) हाथोंवाला नाट्यमण्डप ज्येष्ठ, चौंसठ (६४) हाथों वाला नाट्यमण्डप मध्यम और बत्तीस (३२) हाथोंवाला नाट्यमण्डप कनिष्ठ होता है। इनमें देवताओं का नाट्यमण्डप ज्येष्ठ, राजाओं का मध्यम और सर्वसाधारण जनता का नाट्यमण्डप कनिष्ठ होता है।।१०।।११।।**

व्याख्या– यह प्रमाण नाट्यमण्डप का है। नाट्यमण्डप वह होता है जहां नट देवादि का अभिनय करते हैं। प्रेक्षागृह उससे सटा होता है, जहां दर्शक बैठकर नाट्य-प्रयोगों का चाक्षुष-प्रत्यक्ष करते हुए उसका रसास्वाद करते हैं।

---

१. द्वात्रिंशत् करमिष्यते-पा.।
२. देवानां भवने ज्येष्ठं-पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

प्रमाणमेषां निर्दिष्टं हस्तदण्डसमाश्रयम्

इस पूर्व-वचन के आधार पर हस्त शब्द दण्ड का भी उपलक्षण है। अर्थात् एक सौ आठ(१०८) हाथों के प्रमाण का विकृष्ट(आयताकार), चतुरस्र (वर्गाकार), और त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) नाट्यमण्डप ज्येष्ठ होता है। चौंसठ (६४) हाथों के प्रमाण का विकृष्ट (आयताकार), चतुरस्र (वर्गाकार) और त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) नाट्यमण्डप मध्यम होता है तथा बत्तीस (३२) हाथों के प्रमाण का विकृष्ट(दीर्घाकार), चतुरस्र(वर्गाकार) और त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) नाट्यमण्डप अवर (कनिष्ठ) होता है। ज्येष्ठ नाट्यमण्डप विस्तृत होना चाहिए, क्योंकि वहां देवता आदि नायक प्रधान पात्र तथा असुर आदि प्रतिनायक पात्र होते हैं। आरभटीवृत्तिप्रधान 'डिम' आदि रुपक में विस्तृत रंगमंच उपादेय होता है। ('डिम' का लक्षण द्रष्टव्य ना० शा० २०/८८-९२)। भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी इन चार प्रकार की वृत्तियों में डिम आरभटीप्रधान होता है, (द्र० ना० शा० २३/५६-६३)। इस आरभरी वृत्ति का प्रयोग वीभत्स और रौद्र रस में करने का विधान है। (द्र० ना० शा० २३/ ६६)। 'डिम' में प्रधान रूप से भाण्ड वाद्यों का प्रयोग होता है। उनके वादन में परिक्रमण (तिहाई आदि) के समय उच्चतर, (अत्यंत उच्च), दीर्घतर (अत्यंत दीर्घ) और दीर्घ तालों का प्रयोग करना पड़ता है। इन सब दृष्टि से ज्येष्ठ नाट्यमण्डप एक सौ आठ हाथों अथवा दण्डों के प्रमाण का होना चाहिए। जहां राजचरित्र मंचस्थ होते हैं, वे नाट्यमण्डप मध्यम चौंसठ(६४) हाथ के तथा सामान्य जनता का चरित्र जहां मंचस्थ होता है, वे बत्तीस (३२) हाथों के नाट्यमण्डप कनिष्ठ होते हैं।

कुछ लोग नाट्यमण्डप और प्रेक्षागृह के अन्तर को न समझ कर देव-राजा और साधारण जनता का संवंध उन पात्रों से नहीं जोड़ते अपितु दर्शकों से जोड़ते हैं और तदनुसार व्याख्या करते हैं। यद्यपि दश रूपकों की परिभाषा से यह अभिप्राय स्पष्ट परिलक्षित होता है, तथापि वे उस का मर्म नहीं समझते।।१०।।११।।

(प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां प्रशस्तं मध्यमं स्मृतम् ।
तत्र पाठ्यं च गेयं च सुखश्राव्यतरं भवेत् ।।
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां त्रिप्रकारो विधिः स्मृतः ।
विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव प्रयोक्तृभिः ।।
कनीयस्तु स्मृतं त्र्यस्रं चतुरस्रं तु मध्यमम् ।
ज्येष्ठं विकृष्टं विज्ञेयं नाट्यवेदप्रयोक्तृभिः ।।)

अन्वयः–(सर्वेषां प्रेक्षागृहाणां प्रशस्तं मध्यमं स्मृतम् । तत्र पाठयं च गेयं च सुखश्राव्यतरं भवेत् । प्रयोक्तृभिः सर्वेषां प्रेक्षागृहाणां त्रिप्रकारः च विधिः स्मृतः- विकृष्टः, चतुरस्रः च, त्र्यस्रः च। त्र्यस्रं तु कनीयः स्मृतम्, चतुरस्रं तु मध्यमं स्मृतम्। नाट्यवेदप्रयोक्तृभिः तु विकृष्टं ज्येष्ठं विज्ञेयम्।)

तात्पर्य-दीपिका

व्याख्या–ये तीन प्रक्षिप्त पद्य हैं। इसपर अभिनवगुप्तपादाचार्य की व्याख्या नहीं है। इनका भावार्थ इसप्रकार है–

सभी प्रेक्षागृहों में मध्यम प्रेक्षागृह प्रशस्त होता है, क्योंकि उसमें पाठ्य और

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi: An eGangotri Initiative

गेय का श्रावण प्रत्यक्ष अनायास सुखपूर्वक किया जाता है।

ततः पाठ्यं प्रयुञ्जीत षडलङ्कारसंयुतम्

पाठ्य का प्रयोग छः अलंकारों से युक्त होता है-(१) सप्त स्वर, (२) तीन स्थान, (३) चार वर्ण, (४) द्विविध काकु, (५) छः अलंकार और (६) छः अङ्ग। (द्र० ना० शा० १९/३७-५९)। गेय के अन्तर्गत आतोद्यविधान भी समाविष्ट है। (द्र० ना० शा० अ० २८- ३३)।

नाट्यप्रयोगकर्मियों ने सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों के तीन प्रकार वर्णित किये हैं– विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र। नाट्यवेद के प्रयोग-कर्मियों ने इनमें त्र्यस्र प्रेक्षागृह को कनिष्ठ चतुरस्र प्रेक्षागृह को मध्यम और विकृष्ट प्रेक्षागृह को ज्येष्ठ मण्डप स्वीकार किया है।

इससे यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार नाट्य-मण्डप के भेद हैं, उसीप्रकार प्रेक्षागृह के भी भेद हैं। उनमें विकृष्ट (आयताकार) प्रेक्षागृह ज्येष्ठ होता है और त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) कनिष्ठ। सभी दृष्टियों से मध्यम चतुरस्र (वर्गाकार) प्रेक्षागृह प्रशस्त माना जाता है, क्योंकि उसमें पाठ्य और गेय दोनों का अधिक आनन्द उठाया जा सकता है।

नाट्यमण्डप और प्रेक्षागृह में अन्तर यह है कि नाट्यमण्डप आज का रंगमंच है और प्रेक्षागृह नाट्यशाला (थियेटर)। नाट्यमण्डप हस्तप्रमाण के होते हैं और प्रेक्षागृह दण्डप्रमाण के। विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र प्रेक्षागृहों में प्रत्येक प्रेक्षागृह १०८ दण्डप्रमाण, ६४ दण्डप्रमाण और ३२ दण्डप्रमाण होते हैं। इसको हम इसप्रकार भी समझ सकते हैं–

(१) ज्येष्ठ–विकृष्ट (दीर्घाकार)–१०८, ६४ और ३२ दण्डप्रमाण।
(२) मध्यम–चतुरस्र (वर्गाकार)–१०८, ६४, और ३२ दण्डप्रमाण।
(३) कनिष्ठ–त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) १०८, ६४ और ३२ दण्डप्रमाण।

प्रमाणं यच्च निर्दिष्टं लक्षणं विश्वकर्मणा।
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तच्चैव [1]हि निबोधत ।।१२।।
अणू रजश्च वालश्च लिक्षा यूका यवस्तथा।
अङ्गुलं च[2] तथा हस्तो दण्डश्चैव[3] प्रकीर्तितः ।।१३।।
अणवोऽष्टौ रजः प्रोक्तं तान्यष्टौ वाल उच्यते।
वालास्त्वष्टौ भवेल्लिक्षा यूका लिक्षाष्टकं भवेत् ।।१४।।
यूकास्त्वष्टौ यवो ज्ञेयो[4] यवास्त्वष्टौ तथाङ्गुलम्।
अङ्गुलानि तथा हस्तश्चतुर्विंशतिरुच्यते ।।१५।।
चतुर्हस्तो भवेद्दण्डो निर्दिष्टस्तु प्रमाणतः।
अनेनैव प्रमाणेन वक्ष्याम्येषां विनिर्णयम् ।।१६।।

अन्वयः– अणुः, रजः च, वालः च, लिक्षा, यूका, यवः तथा अङ्गुलं च, तथा हस्तः दण्डः चैव प्रकीर्तितः। अष्टौ अणवः रजः प्रोक्तम्। अष्टौ तानि बालः उच्यते। अष्टौ तु बालाः लिक्षा भवेत्। लिक्षाष्टकं यूका भवेत्। अष्टौ तु यूका यवः ज्ञेयः। तथा

१. एवं–पा.।
२. चैव हस्तश्च–पा.।
३. दण्डश्च परिकीर्तितः–पा.।
४. प्रोक्तः–पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अष्टौ यवाः तु अङ्गुलम्। तथा चतुर्विंशतिः अङ्गुलानि हस्तः उच्यते। प्रमाणतः निर्दिष्टः चतुर्हस्तः तु दण्डः भवेत्। (अहम्) अनेनैव प्रमाणेन एषां विनिर्णयं वक्ष्यामि।।१२-१६।।

अभिनव-भारती

प्रमाणं लक्षणं यन्निर्दिष्टमिति जातावेकवचनम्।

कानि प्रमाणानीत्याह–अणू रजश्चेत्यादिना। तेषां लक्षणान्याह–अणवोऽष्टावित्यादि। यतः प्रभृति दृश्यता प्रवर्तते सोऽणुः। प्रसिद्धोऽणु-परिमाणः। द्व्यणुकद्वयपरमाणुद्वयारब्धा अणव एव वा महत्त्वयुक्ताः। परमाणु-द्वयारब्धे तु द्व्यणुकेऽणुपरिमाणमस्तु। कोऽत्र विरोध इत्यलमवान्तरेण। अनेनैवेति। देवानां तु भवेत्' इत्यनेन यदुक्तम्। मण्डपाः–तद्यथा ज्येष्ठप्रमाणं डिमप्राये। यद् वक्ष्यति–

निर्घातोल्कापातैरुपरागेणेन्दुसूर्ययोर्युक्त ।
युद्धनियुद्धाघर्षणसम्फेटकृतश्च विज्ञेयः ।।
देवभुजगेन्द्रराक्षसयक्षपिशाचावकीर्णश्च ।
षोडशनायकबहुलः सात्त्वत्यारभटिकायुतस्तु डिमः ।।
(ना० शा० २०/९०-९२) इति ।

तथा मध्यमप्रमाणं नृपतिप्रायप्रयोज्ये नाटकादौ। यद्वक्ष्यति–'नृपतीनां यच्चरितम्।' (ना० शा० २०/१२) इत्यादि।

शेषास्तु प्रकृतयो भाणप्रहसनादौ। यच्च वक्ष्यति–

विविधाश्रयो हि भाणो विज्ञेयस्त्वेकहार्यस्तु ।
ना० शा० २०/११२)

तथा ''भगवत्तापसविप्रैरन्यैरपि च'' (ना० शा० २०/१०७) इत्यादि। एवंभूतप्रकृतिप्रधाने प्रयोगे कनीयःप्रमाणो मण्डपः इति। एषां मण्डपानां मध्ये यो विनिर्णय एव सर्वसाधारणः मध्यमे मण्डपे नाटकभाणप्रयोगात् कनीयसि च, डिमरूपे एव (ष) मण्डपं(पः) तं वक्ष्यामीति।

अयमभिप्रायः– ज्येष्ठमाने नाटकादिप्रयोगसौकर्याभावान्मध्यम एव युक्तः। स एव निर्णयः। विविधोऽपि दिव्यनृपप्रकृता (त्या) दिस्वभावो निश्चयाभिमुख्यमभिनय-प्रयोगद्वारेण नीयते यत्रेति।।१२-१६।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः– अणु, रज, बाल, लिक्षा, यूका, यव, अङ्गुल, हस्त और दण्ड ये नौ प्रमाण निर्धारित हैं। इन प्रमाणों(पैमानों) में आठ अणु बराबर एक 'रज'(धूलिकण), आठ 'रज' बराबर एक बाल, आठ बाल बराबर एक लिक्षा, आठ लिक्षा बराबर एक यूका, आठ यूका बराबर एक यव, आठ यव(जौ) बराबर एक अङ्गुल, चौबीस अङ्गुल बराबर एक हस्त (हाथ) और चार हाथ बराबर एक दण्ड इस प्रकार विभिन्न प्रमाणों के लक्षण निर्दिष्ट हैं। इन्हीं प्रमाणों (पैमानों) के आधार पर मण्डप निर्माण का निर्णय किया जा रहा है।।१२-१६।।

व्याख्या– प्राचीन काल में अणु से लेकर दण्ड तक प्राचीन प्रमाण(पैमाने) निर्धारित थे,इनका स्थान आज इंच, सेंटीमीटर, फुट, गज, मीटर आदि मानकों ने

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

ले लिया है। अभिनवगुप्तपादाचार्य के अनुसार यद्यपि ये विविध प्रमाण हैं, तथापि **प्रमाणं यच्च निर्दिष्टम्** इत्यादि में प्रमाण शब्द का एकवचन में प्रयोग जाति के अर्थ में है। इनमें सबसे छोटा परिमाण 'अणु' है, जो दृश्य होता है। **यतः प्रभृति दृश्यता प्रवर्तते सोऽणुः।** कुछ लोगों के मतानुसार प्रसिद्ध अणु दृष्टिगोचर नहीं होता, क्योंकि वह अत्यंत सूक्ष्म होता है। द्वयणुक त्र्यणुक आदि उतने सूक्ष्म न होने के कारण दृष्टिगोचर होते हैं। यहां उसी 'अणु' से तात्पर्य है, न्यायप्रसिद्ध अणु से नहीं।

देवानां तु भवेद् ज्येष्ठम् (२/११) इत्यादि पद्य से नाट्यमण्डपों के तीन भेदों की ओर संकेत है–ज्येष्ठप्रमाण, मध्यमप्रमाण और कनिष्ठप्रमाण।

इनमें ज्येष्ठप्रमाण नाट्यमण्डप का उपयोग वहां होता है, जहां 'डिम' जैसे रूपक का मञ्चन किया जाता है। डिम में प्रसिद्ध कथावस्तु का मंचन होता है, उसका नायक प्रसिद्ध और उदान्तचरित होता है। शृंगार और हास्य-रस को छोड़कर शेष छः रसों से वह परिपूर्ण होता है। उसमें चार अंक होते हैं। उसमें निर्घात(?), चन्द्र और सूर्य का ग्रहण, उल्कापात, युद्ध, बाहुयुद्ध, एक दूसरे पर प्रहार, संफेट, माया, इन्द्रजाल आदि सभी का मंचन होता है। उसमें सोलह (१६) नायक होते हैं। देव-असुर-राक्षस-भूत-यक्ष-नाग आदि जातियों के पुरुषों के आख्यान भी साथ ही साथ चित्रित होते हैं उसमें सात्वती और आरभटी वृत्ति का प्रयोग होता है(द्र. ना. शा. २०/८८-९२)।

मध्यमप्रमाण नाट्यमण्डप में नाटकों का मंचन होता है, जहां राजाओं के चरित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। इसके लिए नाटक-लक्षण द्रष्टव्य है(ना. शा. २०/१०-१२)।

कनिष्ठ प्रमाण नाट्यमण्डप में भाण, प्रहसन आदि रूपक भेदों का मंचन होता है, जहां सर्व साधारण जन का चरित्र प्रस्तुत किया जाता है। भाण का लक्षण इस प्रकार है–

आत्मानुभूतशंसी परसंश्रितवर्णनाविशेषश्च ।
विविधाश्रयो हि भागो विज्ञेयस्त्वेकहार्यश्च ।।
परवचनमात्मसंस्थं परवचनैरुत्तरोत्तरग्रथितैः ।
आकाशपुरुषकथितैरङ्गविकारैरभिनयेत् तत् ।।
धूर्तविटसंप्रयोगो नानावस्थान्तरात्मकश्चैव ।
एकाङ्की बहुचेष्टः सततं कार्यो बुधर्भाणः ।।
(ना. शा. २०/११२-११४)

उसीप्रकार दो प्रकार के प्रहसनों के लक्षण भी नाट्यशास्त्र में द्रष्टव्य हैं– शुद्ध और संकीर्ण(ना. शा. २०/१०६-१११)।

उक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर अभिनव-भारतीकार

अनेनैव प्रमाणेन वक्ष्याम्येषां विनिर्णयम्

का विशिष्ट अर्थ इस प्रकार करते हैं–**अनेनैव प्रमाणेन एषां मध्ये यो विनिर्णयः एव मण्डपः, तं वक्ष्यामि।** इसका भाव यह है कि ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ प्रमाण नाट्यमण्डपों के अंतर्गत ज्येष्ठ-प्रमाण नाट्य-मण्डप में नाटक आदि के मंचन की सुकरता नहीं होती। मध्यम-प्रमाण नाट्य-मण्डप में उनका तथा भाण-प्रहसनों का मंचन सुकरता से संभव है। अभिनवगुप्तपादाचार्य **'विनिर्णयः'** को मण्डप का

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

विशेषण मानते हैं और उसका निर्वचन इस प्रकार करते हैं–(वि) 'विविधोऽपि दिव्यनृपप्रकृत्यादिस्वभावः (निः) निश्चयाभिमुख्यम् अभिनयप्रयोगद्वारेण नीयते यत्र सः विनिर्णयः (मध्यमप्रमाणः नाट्यमण्डपः)। इस निर्वचन के अनुसार यद्यपि नाट्यमण्डप विविध होते हैं और जिनमें दिव्यप्रकृति, राजप्रकृति और सर्वसाधारण-चरित्र अंकित होते हैं, तथापि नाट्यप्रयोग में अभिनयों के द्वारा जिसकी उपादेयता निर्धारित की जाती है, वह नाट्यमण्डप मध्यमप्रमाण ही है। उसमें त्रिविध प्रकृतियों का अभिनय सुकरता से किया जा सकता है, चाहे वह डिम हो, नाटक हो अथवा भाण, प्रहसन आदि अन्य रूपक-भेद हो।।१२-१६।।

चतुःषष्टिकरान् कुर्याद् दीर्घत्वेन तु मण्डपम्।
द्वात्रिंशतं च विस्तारान्मर्त्यानां यो भवेदिह[1] ।।१७।।
अत ऊर्ध्वं न कर्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः।
यस्मादव्यक्तभावं हि तत्र नाट्यं व्रजेदिति[2] ।।१८।।
मण्डपे विप्रकृष्टे तु पाठ्यमुच्चारितस्वरम्[3]।
अनिस्सरणधर्मत्वाद्विस्वरत्वं भृशं व्रजेत्[4] ।।१९।।

अन्वयः– यः इह मर्त्यानां मण्डपं भवेत्, (तं) दीर्घत्वेन चतुःषष्टिकरान् विस्तारात् च द्वात्रिंशतं कुर्यात्। कर्तृभिः अत ऊर्ध्वं नाट्यमण्डपः न कर्तव्यः। यस्मात् हि तत्र नाट्यम् अव्यक्तभावं भवेत् इति। विप्रकृष्टे तु मण्डपे उच्चारितस्वरं पाठ्यम् अनिस्सरणधर्मत्वात् भृशं विस्वरत्वं व्रजेत् ।।१७-१९।।

अभिनव-भारती

तं दर्शयति–चतुष्षष्टिं करानित्यादि। प्रयोक्तुः पुरस्तात् पृष्ठतश्च मण्डपेऽस्मिन् सति(पोऽस्मिन्नसति) करणार्हो न भवतीत्यर्थः। **कर्तृभिरिति**। किं तेषां वृथा प्रयासोत्पादनेनेति यावत्। **तत्रेति**। अतोऽधिकप्रमाणे अत्यन्तं न्यूनप्रमाणे चेत्यर्थः। **नाट्यमिति**। सकलावान्तरभेदे प्रभेदं दर्शयितुम्। नाट्यतोऽभि (ट्यं यतोऽभि) व्यक्तं भवतीति समुदायाभिप्रायेण मन्तव्यम्। तदेव दर्शयति–**मण्डप इति**। दीर्घत्वम्। पार्श्वयोर्विस्तारः। **मर्त्यानामित्यनेन** मण्डपकरणात् किमित्यकारणं प्रयोगेणैव (गो नैव) वेद्यत इत्याशयः। एतदेवाह– **अत ऊर्ध्वं नेति**। अत इत्येवंविधो यतो मध्यमोऽस्ति ततो हेतोरित्यर्थः। **ऊर्ध्वमिति**। प्रमाणस्याऽऽधिक्यं न्यूनातिरेकाभ्यामिति मन्तव्यम्। **कर्तव्य इति**। प्रकर्षः प्रकृष्टं तदतिक्रान्तो विप्रकृष्टः। किन्नियोगमानः तस्मिंश्च तत्र ज्येष्ठे। पाठ्यं यन्मुख्ये(ख्यं) **नाट्यस्यैषा तनूस्स्मृता** (ना. शा. १४-२) इति दर्शयिष्यते। तद्विस्वरत्वं विशेषेणोपतापकत्वं निकटवर्तिनः प्रति व्रजेत्। अत्र हेतुः उच्चं कृत्वा चारितोऽतिक्लेशेन सम्पादितः स्वरः काक्वादिविभागो यत्र। तथा दूरवर्तिनः सामाजिकान् प्रति विस्वरत्वं विगतशब्दकत्वमनाकर्णनीयत्वं व्रजेत्। अत्र हेतुः अनिस्सरणधर्मत्वात्। निरन्तरे देशे सरणं द्वितीयशब्दारम्भः। स यस्य धर्मो

१. द्वात्रिंशतं च विस्तारं मर्त्यानां योजयेदिह, द्वात्रिंशेन तु।
२. भवेदिति।
३. उच्चरितः।
४. अनभिव्यक्तवर्णत्वात् विस्तरत्वं भृशं भवेत्।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

नाऽस्ति शब्दान्तरप्रसराभावादित्यर्थः। तथाऽतिकनीयसि मण्डपे पाठ्यमुच्चारितस्वरं सदनिस्सरणधर्मत्वादनुरणनात्मकमधुरशब्दान्तरानारम्भात् विनष्टः स्वरो मधुरो यस्य तादृशत्वं व्रजेत्। अनुरणनं हि स्वरस्य पाठ्यसिद्धिरूपमिति गेयाधिकारे वक्ष्यामः। अनेन समानयोगक्षेमत्वात् अधिकातोद्यविस्वरत्वमपि लक्षितं भवति। तथा चोपसंहरिष्यति गेयं चेति। विस्वरत्वमिति 'स्वृ-शब्दोपतापयोः' इत्यस्य रूपम्। ।।१७-१९।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ– जो यहां मृत्युलोक के निवासी प्रेक्षकों के लिए नाट्य-मण्डप हो, उस मण्डप का निर्माण लम्बाई में ६४ (चौंसठ) हाथ और चौड़ाई में ३२ (बत्तीस) हाथ करना चाहिए। स्थापत्यवेत्ताओं को इससे छोटा या बड़ा मण्डप नहीं बनाना चाहिए, क्योंकि वहां दर्शक लोग नाट्य-प्रयोग का उतना स्पष्ट अनुभव नहीं कर सकते। मण्डप के अत्यन्त विस्तीर्ण होने पर जोर से किया जानेवाला पाठ्य-स्वरों का उच्चारण खराब लगेगा, क्योंकि वे शब्द दूर के बैठे हुए सामाजिकों तक पहुंच नहीं सकते। ।।१७-१९।।

व्याख्या–मध्यम प्रमाण नाट्यमण्डप का विस्तार और आयाम मृत्युलोक के निवासियों के लिए उपयुक्त है, उसका विवेचन इस विशेषक में है। वह नाट्यमण्डप प्रयोगकर्मी के सम्मुख और पीछे की ओर लम्बाई में चौंसठ(६४) हाथ और अगल-बगल की चौड़ाई में बत्तीस(३२) हाथ होना चाहिए। उसमें विविध प्रकार के रूपकों का मञ्चन उपयुक्त होता है, अन्यथा वह प्रयास व्यर्थ है। इसलिए इससे बड़ा अथवा छोटा नाट्यमण्डप नहीं बनाना चाहिए। क्योंकि वहां सभी प्रकार के रूपकों का मंचन करने से उसकी अनुभूति सामाजिकों को स्पष्ट रूप से नहीं होगी। यदि नाट्यमण्डप अत्यन्त विस्तीर्ण हो, तो पाठ्य वहां अपस्वर होगा, क्योंकि वहां उसका जोर से उच्चारण करने पर भी प्रेक्षक और श्रोता दूर होने से वह ध्वनि-परंपरा उन तक पहुंचेगी ही नही और वे उसे सुन नहीं सकेंगे। छोटा नाट्यमण्डप होने पर पाठ्य का उच्च स्वर से उच्चारण कर्णकटु होगा, क्योंकि वह ध्वनि-परंपरा परस्पर टकराएगी और स्वर-माधुरी को नष्ट करेगी।

पाठ्य दो प्रकार का होता है–संस्कृत और प्राकृत।

व्यञ्जनानि स्वराश्चैव सन्धयोऽथ विभक्तयः ।
नामाख्यातोपसर्गाश्च निपातस्तद्धितास्तथा ।।
एतैरङ्गविधानैस्तु नानाधातुसमाश्रयम् ।
विज्ञेयं संस्कृतं पाठ्यम् (ना.शा. १५/५-६)

इत्यादि द्वारा संस्कृत पाठ्य का विवेचन वाचिक अभिनय के अन्तर्गत पन्द्रहवें अध्याय में, प्राकृत पाठ्य का विवेचन भाषाविधान नामक अठारहवें अध्याय तथा पाठ्य-गुण का प्रतिपादन काकुरचर-व्यञ्जन नामक उन्नीसवें अध्याय में किया गया है।

नाट्य के तीन गुण हैं–पात्र, प्रयोग और अर्थ। उनमें प्रयोग के चार आधार हैं–सुबोधता, सुगानत्व, सुषाठ्यत्व और शास्त्रकर्मसमायोग। स्वर का अनुरणन पाठ्य-सिद्धिस्वरूप है, जिसका विस्तार अठ्ठाइसवें अध्याय में है। जब अनुरणन अर्थात् ध्वनि-प्रतिध्वनि-परंपरा विशृंखलित होती है, तब स्वर माधुर्य-नष्ट हो जाता है। अधिक वाद्यों का प्रयोग भी स्वरमाधुरी नष्ट करता है, चाहे वे वंशवाद्य हों, तंत्री-

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

वाद्य हों अथवा तालवाद्य हों। ।।१७-१९।।

यश्चाऽऽप्याऽऽस्यगतो भावो नानादृष्टिसमन्वितः[१] ।
स वेश्मनः प्रकृष्टत्वाद् व्रजेदव्यक्ततां पराम् ।।२०।।
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तस्मान्मध्यममिष्यते ।
यावत् पाठ्यं च गेयं च तत्र श्रव्यतरं भवेत्[२] ।।२१।।

अन्वयः– नानादृष्टिसमन्वितः यश्चाऽपि आस्यगतः भावः, सः वेश्मनः प्रकृष्टत्वात् पराम् अव्यक्ततां व्रजेत्। तस्मात् सर्वेषां प्रेक्षागृहाणां (मध्ये) मध्यमम् इष्यते। यावत् पाठयं च गेयं च तत्र श्रव्यतरं भवेत् । ।।२०।।२१।।

अभिनव-भारती

प्रधानस्य पाठ्यस्य प्रधानानुरणनभूतस्य च गीतातोद्यादेर्विनाशं प्रतिपाद्याऽभिनयवर्गस्याऽपि प्रतिपादयति–यश्चापीति। आस्यगतो मुखगतो भावः योऽनुभावलक्षणो दृष्टिवाप्पस्वेदवैवर्ण्यादिः तथा मकुटप्रतिशीर्षादिः। चकारादाङ्गिकः। स वेश्मनः प्रकृष्टत्वादतिविस्तीर्णत्वादव्यक्ततां गच्छेत्। तथा प्रगतं कृष्टं कर्षणं दैर्घ्यं यस्य तस्य भावः। ततः कनीयस्त्वाद्धेतोः परां द्वितीयामव्यक्ततामतिसामीप्यकृतां व्रजेत्। प्रथमं ह्यतिदूरत्वं कृत्वा सोक्ता। एवमुभयमण्डपाभिप्रायेणेदं व्याख्येयम्। अन्यथा तस्मान्मध्यममिष्यत इत्युपसंहारो न श्लिष्यति। तदाह–प्रेक्षागृहाणामित्यादि। मध्ये भवं मध्यमम्। तदिष्यते, यतः सर्वेषां रूपाणां सम्बन्धि यत् पाठ्यं प्रधानं तनूरूपप्राणोपरञ्जकरूपं च गीतं चकारादातोद्यं च श्रव्यतरं भवति। द्वितीयचकारादभिनयान्तरमपि दृश्यतरं भवतीत्यर्थः।।।२०-२१।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–विविध दृष्टियों से परिपूर्ण मुख (चेहरे) का जो भाव होता हो, यदि नाट्यमण्डप विस्तीर्ण हो, तो सामाजिकों को उसकी अभिव्यक्ति अत्यंत अस्पष्ट होगी। इसलिए सभी प्रेक्षागृहों के बीच मध्यमप्रमाण नाट्यमण्डप अभीष्ट होता है, क्योंकि वहां प्रयुक्त पाठ्य और गेय अत्यंत स्पष्ट सुनाई पड़ता है।।२०-२१।।

व्याख्या–पूर्व पद्यों द्वारा ज्येष्ठ-प्रमाण नाट्य-मण्डप में वाचिक अभिनय के अन्तर्गत प्रयुक्त पाठ्य-गीत और वाद्यों की अश्राव्यता का प्रतिपादन किया गया है। इस युग्मक में अभिनय की अस्पष्ट अभिव्यक्ति का प्रतिपादन है। अन्य आङ्गिक, आहार्य और सात्विक अभिनयों में आहार्य और सात्विक अभिनय किसी प्रकार दृश्य हो सकते हैं। आंगिक अभिनय त्रिविध होता है–(१) शरीर का अभिनय, जिसमें शिर, हस्त, कटि, वक्ष, पार्श्व और पाद का अभिनय समाहित है। (२) दृष्टि का अभिनय, जिसमें रस, और भावों के अनुरूप विभिन्न अभिनय प्रविष्ट हैं। (३) मुख का अभिनय, जिसमें भ्रू, नासिका, कपोल, चिबुक, ओष्ठ, ग्रीवा आदि का अभिनय आता है। इनका विस्तार आठवें से दसवें अध्याय तक किया गया है। यदि नाट्यमण्डप अत्यंत विस्तीर्ण हो, तो दूर बैठे हुए साधारण जन उसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रत्यक्ष नहीं कर सकते और कनिष्ठप्रमाण नाट्य-मण्डप में भी अत्यंत समीपता के कारण उसकी

१. यश्चाऽप्यास्यगतो रागो भावसृष्टिरसाश्रयः, यश्चाऽप्यस्य–पा.।
२. यस्माद् वाद्यं च गेयं च सुखं श्राव्यतरं भवेत्–पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं होती। जैसा कि सांख्यकारिका कार ने वस्तु की अनुपलब्धि में अतिदूर और सामीप्य को हेतु माना है–अतिदूरान् सामीप्यात्। वहां संस्कृत और प्राकृत द्विविध पाठ्य, गीत-वाद्य आदि अत्यंत सुश्राव्य होंगे। और सर्वविध अभिनय अत्यंत दृश्य होंगे।।२०।।२१।।

(प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां त्रिप्रकारी विधिः स्मृतः।
विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव प्रयोक्तृभिः।।
कनीयस्तु स्मृतं त्र्यस्रं चतुरस्रं च मध्यमम्।
ज्येष्ठं विकृष्टं विज्ञेयं नाट्यवेश्म प्रयोक्तृभिः।।)

अन्वयः–प्रयोक्तृभिः सर्वेषां प्रेक्षागृहाणां विधिः त्रिप्रकारः स्मृतः – विकृष्टश्च, चतुरस्रश्च, त्र्यस्रश्चैव। प्रयोक्तृभिः त्र्यस्रं नाट्यवेश्म तु कनीयः स्मृतम् चतुरस्रं च नाट्यवेश्म मध्यमं स्मृतम्। विकृष्टं नाट्यवेश्म ज्येष्ठं विज्ञेयम्।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ– नाट्य-प्रयोगकर्मियों ने सभी प्रकार के प्रेक्षागृहों के तीन भेद विवेचित किये हैं–विकृष्ट, चतुरस्र और त्र्यस्र। इनमें त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) नाट्य-मण्डप को कनिष्ठ, चतुरस्र (वर्गाकार) नाट्य-मण्डप को मध्यम और विकृष्ट (आयताकार) नाट्यमण्डप को ज्येष्ठ कहा है।

व्याख्या– ये नाम प्रमाण के आधार पर हैं, श्रेष्ठता को ध्यान में रखकर नहीं। उक्त दोनों पद्य पुनरावृत्त और प्रक्षिप्त हैं। इसपर अभिनवगुप्तपादाचार्य की व्याख्या नहीं है।

देवानां मानसी सृष्टिगृहेषूपवनेषु[1] च।
यत्नभावां[2]भिनिष्पन्नाः सर्वे भावा हि[3] मानुषाः।।२२।।
तस्माद् देवकृतैर्भावैर्न विस्पर्धेत मानुषः।
मानुषस्य[4] तु गेहस्य सम्प्रवक्ष्यामि लक्षणम्।।२३।।

अन्वयः–गृहेषु उपवनेषु च देवानां मानसी सृष्टिः। हि मानुषाः सर्वे भावाः यात्नभावाभिनिष्पन्नाः। तस्मात् मानुषः देवकृतैः भावैः न विस्पर्धेत। मानुषस्य तु गेहस्य लक्षणं सम्प्रवक्ष्यामि। ।।२२।।२३।।

अभिनव-भारती

ननु यद्येवंभूतः प्रयोगक्रमस्तर्हि हस्तसमाश्रयेणैव विधिर्वक्तव्यः। सोऽपि यत्र परिपूर्णो नोपकारी, तत्र दण्डसमाश्रयेणाऽऽतोद्यमानेन। अथ कदाचिद् दिव्यप्रकृतिप्रेक्षकाभिप्रायेण तदुच्यते, तत्रापि कः स्तोकान्तरत्वेनेति न्यायेन का इति(ह) सम्भावनेत्याशङ्क्यां पराकर्तु श्लोको भावी। अत एव पूर्वश्लोकेन सह नाऽत्र पौनरुक्त्यं शङ्कितव्यम्। तस्याऽन्यथोपक्षेपात्। तच्छ्लोकमाह–देवानामित्यादि। मनसस्तदीयस्य सत्त्वबहुलत्त्वात् तत्कृत इन्द्रियविसर्जनलक्षणे व्यापारोऽतिरूपव्यापी। उपवनेष्वपि विततवितततेषु। का कथा मण्डपविषये। अत एव गृहेष्विति बहुवचनमुपात्तम्। तेन तदपेक्षया ते मण्डपा उक्ता इत्यर्थः।

१. वनेषु।
२. यत्नभावाद् विनिष्पन्नाः
३. हि।
४. मनुष्यस्य।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

न त्वेवं मानुषाणां राजसानां मनः। तदाह–देवकृतैरिति। यत एव तस्मान्मानुषस्यैव गेहस्य लक्षणं सम्यक् प्रवक्ष्यामि। तुशब्द एवकारार्थे।।२२।।२३।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–यतः देवताओं की सृष्टि, चाहे वे घरों के सम्बन्ध में अथवा उपवनों के सन्दर्भ में हो, वह मानस-संकल्प से होती है। किन्तु मनुष्यों के सभी प्रकार के भाव प्रयत्नपूर्वक मूर्तरूप लेते हैं। अतः मनुष्य देवताओं के भावों से स्पर्धा न करे। मैं (भरतमुनि) मनुष्यों के लिए उपयुक्त नाट्यमण्डप का लक्षण कहता हूं। ।।२२।।२३।।

व्याख्या–नाट्यमण्डप के निर्माण का प्रकार मानव-दर्शकों की दृष्टि से विवेचित है। अब यह आशंका उपस्थित होती है कि डिम आदि रूपकों के मंचन की दृष्टि से उक्त विवेचन हो तो हस्त-प्रमाण से नाट्यमण्डप की रचना वर्णित की जानी चाहिए। अथवा यदि वह भी उपयुक्त न हो, तो वाद्यसंरचना की दृष्टि से दण्ड-प्रमाण नाट्य- मण्डप का विवेचन करना चाहिए। यदि दिव्य-प्रकृति प्रेक्षकों के लिए वह मण्डप हो, तो वह उससे थोड़ा बड़ा होना चाहिए। इन्हीं आशंकाओं का निराकरण इस युग्मक में है। अत एव **'दिव्यानां मानसी सृष्टिः'** इत्यादि पूर्व पद्य की पुनरावृत्ति पिष्टपेषण मात्र न होकर अभिनव-अर्थ-सम्पादन के लिए है। जहां वे विहार करते हैं, देवताओं के वे प्रासाद और उपवन अत्यंत विस्तृत होते हैं। केवल नाट्यमण्डप की बात छोड़िए। वे भी अनायास मानस-संकल्पजन्य होते हैं, एतदर्थ उन्हे कोई भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता। मनुष्यों का मानस-संकल्प तभी सिद्ध होता है, जब वे प्रयत्नशील हों। अतः मनुष्यों द्वारा देवताओं के साथ किसी भी प्रकार की स्पर्धा नहीं करनी चाहिए।

दिव्यप्रकृति प्रेक्षकों के उपयुक्त नाट्यमण्डप निर्माण मनुष्यों की कल्पना-शक्ति से परे है, अतः केवल मानव-प्रेक्षकों के नाट्य-मण्डप की निर्माणविधि यहां विवेचित होंगी यही इसका अभिप्राय है। ।।२२।।२३।।

भूमेर्विभागं पूर्वं तु परीक्षेत प्रयोजकः[1] ।
ततो वास्तु प्रमाणेन[2] प्रारभेत शुभेच्छया ।।२४।।

अन्वयः – प्रयोजकः पूर्वं तु भूमेः विभागं परीक्षेत, ततः शुभेच्छया प्रमाणेन वास्तु प्रारभेत।।२४।।

अभिनव-भारती

सम्यगिति यदुक्तं तदाह–भूमेरित्यादि। विभागो हेयोपादेयत्वेन। वास्त्विति। ग्रहणं प्रमाणं चेत्युपलक्ष्यमाणरूपेण प्रारभेत। कर्तुमिति शेषः।।२४।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ– नाट्यमण्डप के निर्माण के प्रयोजन से भूमि-ग्रहणकर्ता सर्वप्रथम भूमि की परीक्षा करे और उसके पश्चात् अपने कल्याण की कामना से उस वास्तुभूमि की नाप-जोख करना प्रारंभ करे।।२४।।

व्याख्या– पूर्व पद्य में **सम्प्रवक्ष्यामि** का अर्थ है– **सम्यक् कथयिष्यामि**, 'मानव-प्रेक्षक के लिए उपादेय नाट्य-मण्डप की रचना विधि अच्छी प्रकार कह रहा हूँ।'

१. विचक्षणः-पा.।
२. वास्तु प्रमाण-पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

उसी का विवेचन इन पद्यों में है। नाट्यमण्डप के लिए ली जानेवाली भूमि की विभागशः परीक्षा इसलिए करनी चाहिए, कि कौन सी भूमि उपादेय है और कौन सी त्याज्य। 'प्रमाणेन' का अर्थ केवल प्रमाण से न होकर भूमि-ग्रहण से भी है। अर्थात् विभागशः भूमि की उपादेयता को निश्चित कर तदनुसार उसका ग्रहण और तदुपरांत उसकी नापजोख कर नाट्यमण्डप के निर्माण का प्रारंभ करना चाहिए। कर्तुम् इस पद के अध्याहार से यह अर्थ सम्भव है।।।२४।।

समा स्थिरा तु कठिना कृष्णा गौ[1]री च या भवेत् ।
भूमिस्तत्रैव[2] कर्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः ।।२५।।
प्रथमं शोधनं कृत्वा लाङ्गलेन समुत्कृषेत् ।
अस्थिकीलकपालानि तृणगुल्मांश्च शोधयेत् ।।२६।।

अन्वयः – या भूमिः समा स्थिरा कठिना कृष्णा गौरी च भवेत्, तत्रैव कर्तृभिः नाट्यमण्डपः कर्तव्यः। प्रथमं शोधनं कृत्वा लाङ्गलेन समुत्क्षेत्। अस्थिकीलकपालानि तृणगुल्मान् च शोधयेत्। ।।२५।।२६।।

अभिनव-भारती

तं विभागमाह–समेत्यादि। समा स्वभावान्नातिनिम्नोन्नतेत्यर्थः। स्थिरा अचलनस्वभावा। कठिना अनूपरा। कृष्णा गौरी चेति। चो वाऽर्थे। अन्ये तु व्यामिश्रितत्वमाहुः। कर्तव्य इति करणार्हः। कथमित्याह–प्रथममित्यादि। शोधनमुपरिगताशुचिशर्करा‌द्यपसारणम् । ततो हलेनोद्धृतगुल्मपाषाणादिकां कुर्यात्। एतदेवाह–अस्थीत्यादिना।।२५।।२६।।

तात्पर्य दीपिका

भावार्थ– जो भूमि समतल, स्थिर, मजबूत, काली या सफेद मिट्टी की हो; निर्माणकर्ता उसी भूमि पर नाट्यमण्डप का निर्माण कर सकते हैं। सर्वप्रथम भूमि-शोधन कर उसपर हल चला कर उस पर बिखरी हड्डियों, कीलों, खप्पड़, घास-फूस झाड़-झंखाड़ को वहां से हटा देना चाहिए।।२५-२६।।

व्याख्या–भूमि का विभाग किसप्रकार करना चाहिए और उसका शोधन किसप्रकार करना चाहिए इसका विवेचन इस युग्मक में है। वह जमीन समतल होनी चाहिए, ऊबड़-खाबड़ नहीं होनी चाहिए। वह स्थिर होनी चाहिए अर्थात् हिलने-डुलनेवाली नहीं होनी चाहिए। वह कठिन अर्थात् मजबूत होनी चाहिए, धंसने वाली नहीं होनी चाहिए। उसकी मिट्टी चाहे जैसी हो सकती है–सफेद या काली। क्योंकि यहां 'च' कार समुच्चयवाचक न होकर विकल्पवाचक है। कुछ लोगों के अनुसार उसमें सफेद और काली दोनों मिट्टी मिली होनी चाहिए। इन सबकी परीक्षा कर भूमिग्रहण करना चाहिए। फिर भूमि का शोधन करना चांहिए। प्रथम ऊपर बिखरे कंकड़-पत्थर आदि को हटा देना चाहिए और अनन्तर हल चला कर भीतर पड़ी हुई हड्डियाँ-झाड़-झंखाड़ आदि की सफाई करनी चाहिए। इसके बाद ही वहां पर नाट्यमण्डप बनाया जा सकता है, उसके पूर्व नहीं, यही 'कर्तव्यः' का अर्थ है। ।।२५।।२६।।

शोधयित्वा वसुमतीं प्रमाणं निर्दिशेत् ततः ।

१. कृष्णाऽगौरी-पा.।
२. तत्र तु-पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

(त्रीण्युत्तराणि सौम्यं च विशाखापि च रेवती ।।
हस्ततिष्यानुराधाश्च प्रशस्ता नाट्यकर्मणि ।)
पुष्यनक्षत्रयोगेन[1] शुक्लं सूत्रं प्रसारयेत् ।।२७।।
कार्पासं वाल्बजं वापि मौञ्जं वाल्कलमेव च[2] ।
सूत्रं बुधैस्तु कर्तव्यं यस्य च्छेदो न विद्यते ।।२८।।
अर्धच्छिन्ने भवेत् सूत्रे स्वामिनो मरणं ध्रुवम् ।
त्रिभागच्छिन्नया रज्ज्वा राष्ट्रकोपो विधीयते ।।२९।।
छिन्नायां तु चतुर्भागे प्रयोक्तुर्नाश उच्यते ।
हस्तात् प्रभ्रष्ट[3]या वाऽपि कश्चित् त्वपचयो भवेत् ।।३०।।
तस्मान्नित्यं प्रयत्नेन रज्जुग्रहणमिष्यते ।
कार्यं चैव प्रयत्नेन मानं नाट्यगृहस्य तु ।।३१।।
मुहूर्तेनाऽनुकूलेन तिथ्या सुकरणेन च[4] ।
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा तु[5] पुण्याहं वाचयेत् ततः ।।३२।।

अन्वयः – वसुमतीं शोधयित्वा ततः प्रमाणं निर्दिशेत् ।(त्रीणि उत्तराणि, सौम्यं च, विशाखा, अपि च रेवती हस्त-तिष्याऽनुराधाः च नाट्यकर्मणि प्रशस्ताः।) पुष्यनक्षत्रयोगेन शुक्लं सूत्रं प्रसारयेत्। बुधैः तु कार्पासं वाल्वजं वाऽपि वाल्कलम् एव च सूत्रं कर्तव्यम्, यस्य च्छेदः न विद्यते। सूत्रे अर्द्धच्छिन्ने सति स्वामिनः मरणं ध्रुवं भवेत्। त्रिभागच्छिन्नया रज्ज्वा राष्ट्रकोपः विधीयते। चतुर्भागे च्छिन्नायां तु प्रयोक्तुः नाशः उच्चते। हस्तात् प्रभ्रष्टया वाऽपि कश्चित् तु अपचयः भवेत्। तस्मात् नित्यं प्रयत्नेन रज्जुग्रहणम् इष्यते। प्रयत्नेन तु नाट्यगृहस्य मानं कार्यम्। ततः मुहूर्त्तानुकूलेन तिथ्या सुकरणेन च ब्राह्मणान् तर्पयित्वा पुण्याहं वाचयेत् । ।।२७-३२।।

अभिनव-भारती

एवं वाह्याभ्यन्तरतो भूमिशुद्धिं निरूप्याऽनन्तरकरणीयमाह–शोधयित्वेति। कथं प्रमाणनिर्देश इत्याह–पुष्येति। शुक्लसूत्रत्वं तावत् पिष्टरञ्जनादिना। चर्मकृतं मानसूत्रं न कार्यमिति च तात्पर्यम्। स्वामिनः प्रेक्षापतेः। प्रयोक्तुर्नाट्याचार्यस्य। प्रयत्नेन रज्जुग्रहणमित्यच्छेद्यानुभरणीया। तादृशी च सावधानतयाऽवष्टम्भ-वियोगाद्युभयथा तथा प्रयत्नतो योज्यम्। नित्यमिति। न केवलमत्र प्रथमपरिग्रहे यावदन्यभाविस्तम्भविनिवेशाय भूभागमानग्रहणा दावित्यर्थः। प्रयत्नेन मानमित्यूनाधिकादिदोषवर्जनायाऽयं यत्न इत्यपौनरुक्त्यम्। मुहूर्तो ब्राह्मादिः। तिथिर्हदा(र्नन्दा)दिः। करणं विष्ट्यादिरहितम्।।२७-३२।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थः–भूमि-शोधन के पश्चात् जमीन की नापजोख करनी चाहिए। (इसके लिए तीन उत्तरा(उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा और उत्तराफाल्गुनी) सौम्य(मृगशिरा), विशाखा,

१. योगे तु-पा.।
२. वादरं चापि वाल्कलं मौञ्जमेव च-पा.।
३. हस्तप्रभ्रष्टया-पा.।
४. तिथ्या च करणेन च-पा.।
५. तु-पा.।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

रेवती, हस्त, तिष्य(पुष्य) और अनुराधा नक्षत्र नाट्यकर्म (नाट्यमण्डप-निर्माण) में प्रशस्त हैं। उनमें भी पुष्य नक्षत्र का योग होने पर (जमीन की नापजोख के लिए) सफेद रंग का सूत्र (फीता) जमीन पर फैलाना चाहिए। विद्वानों को वह मापसूत्र कपास, बल्व, मुञ्ज या वल्कल से बनाना चाहिए और वह ऐसा होना चाहिए जिसमें छेद न हो। उस सूत्र के ठीक अर्द्धभाग में टूटने पर निश्चित रूप से स्वामी की मृत्यु होती है। उसका तीन भाग टूटने पर राष्ट्र में तनाव बढ़ता है। उसका चौथाई भाग विच्छिन्न होने पर 'प्रयोक्ता' का नाश होता है। (इतना ही नहीं, भूमि का नापजोख करते समय वह) हाथ से छूटने पर कोई न कोई नुकसान अवश्य होता है। इसलिए जमीन की नापजोख करते समय मापसूत्र को नित्य प्रयत्नपूर्वक मजबूती से पकड़ना चाहिए और नाट्यमण्डप की नापजोख करनी चाहिए। पश्चात् मुहूर्त्त के अनुकूल शुभ तिथि और शुभ करण देखकर ब्राह्मणों को सम्मानपूर्वक प्रसन्न कर उनसे पुण्याह-वाचनादि कराना चाहिए।।२७-३२।।

व्याख्या– इन पद्यों में भूमिशोधन के पश्चात् जमीन की नापजोख के लिए मुहूर्त तथा मापसूत्र का विचार किया गया है। वह मापसूत्र आंटे से रंग कर सफेद बनाना चाहिए, पश्चात् सुमुहूर्त देखकर, विशेषतः नक्षत्रविचार कर नापजोख करनी चाहिए। नाट्यमण्डप के निर्माण के लिए उत्तराषाढ़ा आदि नौ नक्षत्रों में भी पुष्य नक्षत्र अत्यंत प्रशस्त है। साथ ही वह सूत्र चमड़े का नहीं होना चाहिए। उसके लिए कपास आदि चार प्रकार के सूत्र उपयुक्त है। बल्व एक विशेष प्रकार की घास है। पेड़ की छाल को वल्कल कहते हैं। जमीन की नापजोख करते समय मापसूत्र विच्छिन्न नहीं होना चाहिए, जिसके कुपरिणाम भिन्न-भिन्न है। इसके लिए उसे नित्य मजबूती से पकड़ना चाहिए, जिससे मापसूत्र बीच में न टूटे। यहां स्वामी का तात्पर्य प्रेक्षागृह के स्वामी से है। मापसूत्र के बीच में ही टूटने पर उसकी मृत्यु सुनिश्चित है।

नाट्याचार्य 'प्रयोक्ता' कहलाता है, सूत्र का एक तिहाई टूटने पर उसकी मृत्यु होती है। इसलिए जिस समय जमीन की नापजोख हो, उस समय अनर्थ से बचने के लिए मापसूत्र को मजबूती से पकड़ना चाहिए। केवल प्रथम बार नहीं, यह 'नित्य' शब्द से व्यंजित होता है। प्रयत्नेन प्रयोग से यह भाव निकलता है कि नाप-जोख ठीक-ठीक हो, वह कम या अधिक न हो। मुहुर्ताऽनुकूलेन पद में प्रयुक्त मुहुर्त्त शब्द से ब्राह्म मुहूर्त्त आदि लेना चाहिए। तिथि शब्द से नन्दा आदि तिथि का विचार करना चाहिए। सुकरण (शुभ करण) से विष्टि आदि अशुभ करणों का परित्याग करना चाहिए। ।।२७-३२।।

शान्तितोयं ततो दत्वा ततः सूत्रं प्रसारयेत्[1] ।
चतुःषष्टिकरान् कृत्वा द्विधा कुर्यात् पुनश्च तान् ।।३३।।
पृष्ठतो यो भवेद् भागो द्विधाभूतस्य तस्य तु[2] ।
सममर्धविभागेन रङ्गशीर्षं प्रकल्पयेत्[3] ।।३४।।
पश्चिमे च विभागेऽथ[4] नेपथ्यगृहमादिशेत् ।
विभज्य[5] भागान् विधिवद् यथावदनुपूर्वशः ।।३५।।

---

१. शान्तितो यत्नतो धृत्वा तत्र सूत्रं प्रसारयेत्।
२. द्विधाभूतो भवेच्च सः, द्विधाभूतस्य तस्य तु।
३. तस्यार्धेन विभागेन रङ्गशीर्षं प्रयोजयेत्, तस्याप्यर्धार्धभागे तु रङ्गशीर्षं प्रकल्पयेत् ।
४. तु पुनर्भागे, अथ विभागे च, च विभागेऽथ।
५. विकल्प्य।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अन्वयः -ततः शान्तितोयं दत्वा ततः सूत्रं प्रसारयेत्। चतुःष्षष्टिकरान् कृत्वा पुनश्च तान् द्विधा कुर्यात् । यः भागः पृष्ठतः भवेत् , द्विधाभूतस्य तु तस्य अर्धविभागेन समं रङ्गशीर्षं प्रकल्पयेत् । अथ च पश्चिमे भागे यथावत् अनुपूर्वशः भागान् विभज्य नेपथ्यगृहम् आदिशेत् । ।।३३-३५।।

अभिनव-भारती

सूत्रप्रसारणेन यत् कृत्यं तदाह–चतुष्षष्टिरित्यादि। चतुष्षष्टिर्हस्तदैर्घ्याद् विस्ताराच्च द्वात्रिंशत्करं क्षेत्रं गृहीत्वा मध्ये सूत्रं विस्तारेण दद्यात्। तत्र यत् प्रयोक्तुः पृष्ठगं भविष्यति तदेव पृष्ठम्। तस्य मध्ये विस्तारेण सूत्रं दद्यात्। ततः षोडशहस्तौ द्वौ भागौ भवतः। पृष्ठगतं भागमर्धेन विभज्याऽष्टहस्तं रङ्गशिरः। प्रविशतां पात्राणां चाऽन्तस्स्थानम्। नाट्यमण्डपस्य ह्युत्तानसुप्तवदवस्थितस्य रङ्गपीठं मुख्यम्। तदष्टहस्तं शिरः। तत्पृष्ठे तु दैर्घ्याद्धि षोडशहस्तं नेपथ्यगृहं भवति। विस्तारात् तु द्वात्रिंशत्करमेव तत्। नेपथ्यादिकं च तत्र गृह्यते। तदाह–पश्चिमे चेति। तत्र रङ्गपीठं विस्तारतः षोडश दैर्घ्यतस्त्वष्टहस्ता इति केचित्। अन्ये त्वेतदेव विपर्यासयन्ति। सर्वथा तावद् रङ्गपीठस्याऽपि विकृष्टत्वं विधेयमिति तात्पर्यम्। यद् वक्ष्यते–रङ्गो विकृष्टो भरतेन कार्यः (ना. शा. १२-२०) इत्यादि। ।।३३-३५।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–(जमीन की नाप-जोख शुभ-नक्षत्र, शुभ-तिथि और शुभ करण पर करनी चाहिए। सर्वप्रथम ब्राह्मणों द्वारा पुण्याह-वाचन करना चाहिए।) तदुपरांत कलश का जल जमीन पर छिड़क कर नाप-जोख करने के लिए जमीन पर मापसूत्र फैलाना चाहिए। प्रथम सूत्र को चौंसठ हाथ नापना चाहिए और तदनन्तर उसके फिर से दो भाग करने चाहिए। मापसूत्र के दो भागों में जो पिछला भाग हो, उसके समान दो आधे-आधे भाग करने चाहिए और मानचित्र में उसमें रङ्गशीर्ष की कल्पना करनी चाहिए। उसी प्रकार उसके पश्चिम भाग में पूर्वोक्त विधि के अनुसार विभागों को कल्पित कर उसमें नेपथ्यगृह की कल्पना करनी चाहिए।।३३-३५।।

व्याख्या–प्रथम लम्बाई में चौंसठ (६४) हाथ मापसूत्र लेना चाहिए। उसकी चौड़ाई बत्तीस(३२) हाथ होनी चाहिए। इस प्रकार नाट्याचार्य के पीछे का जो क्षेत्रफल हो, उसे पृष्ठभाग मानकर चौड़ाई से क्षेत्रफल को नापना चाहिए। चौड़ाई में बत्तीस हाथ क्षेत्रफल को बीच से नापने पर उसके सोलह-सोलह हाथ के दो भाग होंगे। पृष्ठवर्ती सोलह हाथ के क्षेत्रफल को ठीक बीच से नापने पर आठ हाथ का क्षेत्रफल 'रंगशीर्ष' कहलाता है। जहां जो रंगपीठ (रंगमंच अथवा स्टेज) के पीछे होता है, और जहां से पात्र रंगपीठ पर प्रवेश करते हैं। नाट्यमण्डप का प्राण रंगपीठ है। उसे रंगपीठ इसलिए कहते हैं, नाट्यमण्डप की की वास्तुदेवता जहां सुप्तवत् पड़ी रहती हैं, उसकी वह पीठ होती है। आठ हाथों वाला 'रङ्गशीर्ष' उसका मस्तक है। उसके पीछे लम्बाई में सोलह हाथों और चौड़ाई में बत्तीस हाथों का नेपथ्यगृह (प्रसाधन-कक्ष) होता है, जो आहार्य अभिनय के लिए उपादेय है। कुछ लोग रंगपीठ की चौड़ाई सोलह हाथ और लंबाई आठ हाथ मानते हैं और कुछ लोग उसके ठीक विपरीत चौड़ाई आठ हाथ और लम्बाई सोलह हाथ मानते हैं।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

इसका निष्कर्ष है कि रंगपीठ विकृष्ट (आयताकार) ही होना चाहिए, चतुरस्र (वर्गाकार) अथवा त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) नहीं। जैसा कि आगे विवेचित है–रङ्गो विकृष्टो भरतेन कार्यः। ।।३३-३५।।

शुभे नक्षत्रयोगे च[1] मण्डपस्य निवेशनम्।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्मृदङ्गपणवादिभिः ।।३६।।
सर्वातोद्यैः प्रणुदितैः[2] स्थापनं कार्यमेव तु[3]।
उत्सार्याणि त्वनिष्टानि पाखण्ड्या[4]श्रमिणस्तथा ।।३७।।
[5]काषायवसनाश्चैव विकलाश्चैव ये नराः।
निशायां च बलिः कार्यो नानाभोजनसंयुतः[6] ।।३८।।
गन्धपुष्पफलोपेतो दिशो दश समाश्रितः।
पूर्वेण शुक्लान्नयुतो नीलान्नो दक्षिणेन च[7] ।।३९।।
पश्चिमेन बलिः पीतो रक्तश्चैवोत्तरेण तु।
यादृशं दिशि यस्यां तु दैवतं परिकल्पितम्[8] ।।४०।।
तादृशस्तत्र दातव्यो बलिर्मन्त्रपुरस्कृतः।
स्थापने ब्राह्मणेभ्यश्च दातव्यं घृतपायसम्[9] ।।४१।।
मधुपर्कस्तथा राज्ञे कर्तृभ्यश्च गुडौदनम्।
नक्षत्रेण तु कर्तव्यं मूलेन स्थापनं बुधैः ।।४२।।
मुहूर्तेनाऽनुकूलेन तिथ्या सुकरणेन च[10]।
एवं तु स्थापनं कृत्वा भित्तिकर्म प्रयोजयेत् ।।४३।।

अन्वयः–शुभे नक्षत्रयोगे च शङ्ख-दुन्दुभि-निर्घोषैः, मृदङ्गपणवादिभिः प्रणुदितैः सर्वातोद्यैः मण्डपस्य निवेशनं स्थापनं च कार्यमेव। अनिष्टानि तु उत्सार्याणि, तथा पाखण्ड्याश्रमिणः कषाथवसनाश्चैव विकलाश्चैव ये नराः (ते उत्सार्याः।) निशायां च नानाभोजनसंयुतः गन्धपुष्पफलोपेतः दश दिशः समाश्रितः बलिः कार्यः। पूर्वेण तु शुक्लान्नयुतः, दक्षिणेन च नीलान्नः, पश्चिमेन पीतः, उत्तरेण तु रक्तश्चैव बलिः कार्यः। यस्यां तु दिशि यादृशं दैवतं परिकल्पितम्, तत्र मन्त्रपुरस्कृतः तादृशः बलिः दातव्यः। स्थापने ब्राह्मणेभ्यश्च घृतपायसं दातव्यम् तथा राज्ञे मधुपर्कः (दातव्यः), कर्तृभ्यश्च गुडौदनं दातव्यम्। बुधैः मूलेन तु नक्षत्रेण अनुकूलेन मुहूर्तेन तिथ्या सुकरणेन च स्थापनं कर्तव्यम्। एवं तु स्थापनं कृत्वा भित्तिकर्म प्रयोजयेत्।।३६-४३।।

अभिनव-भारती

एवं मानविधिमभिधायेष्टकास्थापनरूपे निवेशने विधिमाह–शुभे नक्षत्रयोग

१. तु।
२. सर्वतूर्यनिनादैश्च, सर्वातोद्यनिनादैश्च।
३. च।
४. पाषण्डा, पाषण्ड्या।
५. कषाय।
६. संश्रयः।
७. नीलः स्याद् दक्षिणेन च।
८. यस्यां यच्चाधिदैवं तु दिशि संपरिकीर्तितम्।
९. दातव्यो घृतपायसः।
१०. तु।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

इत्यादिना। दशसु तिर्यगूर्ध्वाधोरूपासु दिक्षु बलिः कार्य इत्युक्त्वा चतसृषु दिक्षु बलिविधिरुक्तो नान्यथेत्यभिप्रायेण व्यापकं विधिमाह–यादृशमित्यादिना। तेनाऽऽग्नेये रक्तवर्ण इत्याद्यूह्यम्। मन्त्रा वरणपूजाविधौ वक्ष्यमाणाः।

ते च कर्मशंसोप (सं) योगिनोहेन युक्ता विधेयाः। मन्त्रेण स्मृतं कर्म करोति इति हि स्मृतिः। अन्ये तु तद्देवताकैः श्रुतिमन्त्रैरेव बलिकर्मेत्याहुः। तल्लिङ्गैरित्यन्ये। चकारो भिन्नक्रमः। न केवलं मानोपक्रमे ब्राह्मणतर्पणं यावत् स्थापनेऽपीत्यर्थः।।३६-४३।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–शुभ नक्षत्र और शुभ योग में शङ्ख, दुन्दुभि, मृदङ्ग, नगाडा आदि सभी वाद्यों की ध्वनि के बीच मण्डप की नींव रखनी चाहिए। सभी प्रकार के अमङ्गलों को वहाँ से निकाल बाहर करना चाहिए, उनमें जो गेरुआ वस्त्रधारी पाखण्डी चतुर्थाश्रमी (संन्यासी) और विकलाङ्ग लोग हों उन्हें हटा देना चाहिए। रात्रि में दसों दिशाओं में विविध भोजन, गन्ध, पुष्प, फलों से प्रचुर बलि रखनी चाहिए। उन दिशाओं में पूर्व की ओर श्वेत, दक्षिण की ओर नीली, पश्चिम की ओर पीली और उत्तर की ओर लाल बलि रखनी चाहिए। जिस दिशा में जैसी देवता परिकल्पित (प्रतिष्ठित) हो, वहाँ उस देवता को प्रिय मंत्रोच्चारण कर 'बलि' रखनी चाहिए। ब्राह्मणों को घी का मिष्ठान्न और पायस(खीर), राजा को मधुपर्क, और मिस्त्रियों को गुड़ का चावल खिलाना चाहिए। विद्वानों को मूलनक्षत्र में अनुकूल मुहूर्त, शुभ तिथि और शुभ करण देखकर नाट्यमण्डप की नींव रखनी चाहिए। इस प्रकार नींव रखकर नाट्यमण्डप की दीवारों का काम प्रारंभ करना चाहिए।।३६-४३।।

व्याख्या–पूर्व पद्यों में नाट्यमण्डप की नापजोख का विचार किया गया है। इन पद्यों में निवेशन और भित्तिकर्म का विवेचन है। 'निवेशन' और 'स्थापन' का अर्थ है ईंटों के द्वारा वास्तु की नींव रखना और 'भित्तिकर्म' का अर्थ है उसकी दीवालों को खड़ा करना। **दिशो दश समाश्रितः** इस चरण से दसों दिशाओं में बलि (पूजासामग्री) रखने का निर्देश है, किन्तु **पूर्वेण शुक्लान्नयुतः** इत्यादि द्वारा केवल चार मुख्य दिशाओं में विशिष्ट बलि प्रदान विधान का निरूपण है। **यादृशं दिशि यस्यां तु** इत्यादि द्वारा अवशिष्ट दिशाओं में बलि प्रदान विधि का निरूपण किया गया है। उससे आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान्य इन कोण दिशाओं में यथाक्रम रक्त, शुक्ल, नील और पीत 'बलि' रखनी चाहिए, यह अर्थ ध्वनित होता है।

प्रथमाध्याय में **बलिप्रदानैर्होमैश्च** (१।१२१) इत्यादि द्वारा बलिप्रदान का संकेत है, जिसका यह उपबृंहण है। 'अभिनव-भारती'कार 'बलि' शब्द का निर्वचन इस प्रकार करते हैं–**बल्यन्ते आप्यायन्ते देवता अनेन इति बलिर्विचित्रवर्णतण्डुलादि-रचनाविशेषः।** अर्थात् जिससे देवता प्रसन्न, तृप्त हों उसे 'बलि' कहते हैं। वह 'बलि' विविध रंगों के चावल-फूल आदि की विशिष्ट-रचना है, जो अल्पना या रंगोली का ही एक प्रकार है। विविध दिशाओं में उनको प्रिय रंगों की वस्तुओं की 'अल्पना' से देवता प्रसन्न होते हैं। **बलिर्मन्त्रपुरस्कृतः**–वरणपूजा (वरणी) के समय जो मंत्र पढ़े जाते हों, उनसे 'बलिप्रदान' करना चाहिए। **मन्त्रेण स्मृतं करोति** इस विधिवाक्य के

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अनुसार स्मार्त-मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए, जब कि कुछ लोग उन-उन देवताओं को प्रिय वेद-मंत्रों से शिलान्यासविधि के पक्ष में हैं। अन्य लोगों के मतानुसार शिलान्यासविधि में उन मंत्रों का प्रयोग करना चाहिए, जिनमें उन देवताओं का लिङ्ग (प्रतीकबोधक शब्द) हो। उदाहरणार्थ–कर्पूरगौरं करुणावतारं स्मार्त मंत्र शिवस्तुति होने पर भी कपूर की आरती में प्रयुक्त होता है और 'शंनो देवौ' इत्यादि वैदिक मंत्र शनि का जपमंत्र है।

स्थापने ब्राह्मणेभ्यश्च इत्यादि द्वारा यह सूचित होता है कि न केवल नाप-जोख के समय, अपितु शिलान्यास के समय भी देवताओं को तृप्त करना चाहिए। **मधुपर्कस्तथा राज्ञे** इस चरण द्वारा यह सूचित होता है कि उस समय राजा की भी उपस्थिति आवश्यक है। **कर्तृभ्यश्च गुडौदनम्** से यह ज्ञात होता है कि यतः मिस्त्री विश्वकर्मा के अनुयायी हैं, अतः उनका भी सत्कार आवश्यक है। **मधुपर्कस्तथा राज्ञे कर्तृभ्यश्च गुडौदनम्** में प्रयुक्त चकार भिन्नक्रम का सूचक है, इससे प्रथम राजा का और अनन्तर मिस्त्रियों के सम्मान का संकेत मिलता है।।३६-४३।।

भित्तिकर्मणिं निर्वृत्ते स्तम्भानां स्थापनं ततः ।
तिथि-नक्षत्र-योगेन शुभेन करणेन च ।।४४।।
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं रोहिण्या श्रवणेन वा ।
आचार्येण सुयुक्तेन त्रिरात्रोपोषितेन च ।।४५।।
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं प्राप्ते सूर्योदये शुभे ।
प्रथमे ब्राह्मणस्तम्भे सर्पिस्सर्षपसंस्कृतः[१] ।।४६।।
सर्वशुक्लो विधिः कार्यो दद्यात् पायसमेव च ।
ततश्च क्षत्रियस्तम्भे वस्त्रमाल्यानुलेपनम् ।।४७।।
सर्वं रक्तं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च गुडौदनम् ।
वैश्यस्तम्भे विधिः कार्यो दिग्भागे पश्चिमोत्तरे ।।४८।।
सर्व पीतं प्रदातव्यं द्विजेभ्यश्च घृतौदनम्[२] ।
शूद्रस्तम्भे विधिः कार्यः सम्यक् पूर्वोत्तराश्रये ।।४९।।
नीलप्रायं प्रयत्नेन कृसरं[३] च द्विजाशनम् ।
पूर्वोक्त[४]ब्राह्मणस्तम्भे शुक्लमाल्यानुलेपने ।।५०।।
निक्षिपेत् कनकं मूले कर्णाभरणसंश्रयम् ।
ताम्रं चाऽधः[५] प्रदातव्यं स्तम्भे क्षत्रियसंज्ञके ।।५१।।
वैश्यस्तम्भस्य मूले तु रजतं सम्प्रदापयेत् ।
शूद्रस्तम्भस्य मूले तु दद्यादायसमेव च ।।५२।।
सर्वेष्वेव[६] तु निक्षेप्यं स्तम्भमूलेषु[७] काञ्चनम् ।
स्वस्तिपुण्याहघोषेण जयशब्देन चैव हि ।।५३।।

---

१. संस्कृते।
२. घृतोदनम् ।
३. कृशरा।
४. पूर्वे तु।
५. चापि।
६. शेषेष्वपि च।
७. स्तम्भमूले तु।
८. पर्ण।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

स्तम्भानां स्थापनं कार्यं पुष्पमालापुरुस्कृतम् ।
रत्नदानैः सगोदानैर्वस्त्रदानैरनल्पकैः ।।५४।।
ब्राह्मणांस्तर्प[1]यित्वा तु[2] स्तम्भानुत्थापयेत् ततः ।

अन्वयः–भित्तिकर्मणि निर्वृत्ते (सति) ततः तिथिनक्षत्रयोगेन शुभेन करणेन च स्तम्भानां स्थापनं (कार्यम्)। त्रिरात्रोपोषितेन च सुयुक्तेन आचार्येण रोहिण्या श्रवणेन वा स्तम्भानां स्थापनं कार्यम्। शुभे सूर्योदये प्राप्ते सति स्तम्भानां स्थापनं कार्यम्। प्रथमे ब्राह्मणस्तम्भे सर्पिस्सर्षपसंस्कृतः सर्वशुक्लः विधिः कार्यः, पायसम् एव च दद्यात् । ततः च क्षत्रियस्तम्भे सर्वं रक्तं वस्त्रमाल्यानुलेपनं प्रदातव्यम्, द्विजेभ्यः च गुडौदनं (प्रदातव्यम्)। पश्चिमोत्तरे दिग्भागे वैश्यस्तम्भे विधिः कार्यः, (तत्र) सर्वं पीतं द्विजेभ्यः च घृतौदनं प्रदातव्यम्। पूर्वोत्तराश्रये शूद्रस्तम्भे सम्यक् विधिः कार्यः। (तत्र) प्रयत्नेन नीलप्रायं (प्रदातव्यम्), कृसरं च द्विजाशनं (प्रदातव्यम्)। पूर्वोक्त-ब्राह्मणस्तम्भे शुक्लमाल्यानुलेपने मूले कर्णभिरणसंश्रयं कनकं निक्षिपेत्। क्षत्रियसंज्ञके स्तम्भे अधः च ताम्रं प्रदातव्यम्। वैश्यस्तम्भस्य मूले तु रजतं सम्प्रदापयेत्। शूद्रस्तम्भस्य मूले तु आयसम् एव च दद्यात्। सर्वेष्वेच स्तम्भेषु स्तम्भमूलेषु काञ्चनं निक्षेप्यम्। हि स्वस्तिपुण्याहघोषेण जयशब्देन चैव रत्नदानैः सगोदानैः अनल्पकैः वस्त्रदानैः (सहितं) पुष्पमालापुरस्कृतं स्तम्भानां स्थापनं कार्यम्। ब्राह्मणान् तर्पयित्वा तु ततः स्तम्भान् उत्थापयेत् ।।४४-५५।।

अभिनव-भारती

एवं मानविधिं स्थापनविधिं च कृत्वा स्तम्भविधिः कार्य इति दर्शयति–भित्तिकर्मणीति। स्थापनमुच्छ्रवणम्। प्रथमं त्वाग्नेयः कोणः। तस्य विशेषणैः अनुवादलिङ्गविधिकल्यं (लिङ्गविधिः कल्यः)। शुभं (भ्रं) सर्वत्र। पायसमिति–द्विजेभ्य इति प्रकरणात्। विध्यनुसारेणैव भोजनं शुक्लादिवर्णमिति मन्तव्यम्। ततश्चेति। तैरन्त (तदन्त) इत्यर्थः। ।।४४-५५।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ– 'भित्तिकर्म' (ईंटों की दीवारों का कार्य) सम्पन्न होने पर प्रेक्षागृह के खम्भों का निर्माण शुरु करना चाहिए। उसके लिए शुभ-तिथि, शुभ-नक्षत्र, शुभ योग और शुभ करण से इसका श्रीगणेश करना चाहिए। नक्षत्र-विचार से रोहिणी और श्रवण नक्षत्र से इसका शुभारम्भ करना चाहिए। मुहूर्त के विचार से भगवान् सूर्य का उदयकाल एतदर्थ शुभ है। अत्यन्त निपुण नाट्याचार्य से यह कार्य कराना चाहिए और स्तम्भ-स्थापन के पूर्व उसे तीन दिन उपवास करना चाहिए।

सर्वप्रथम घी और पीली सरसों से ब्राह्मण-स्तम्भ की पूजा सम्पन्न करनी चाहिए और ब्राह्मणों को पायस का भोग लगाना चाहिए। अनन्तर लाल वस्त्र, लाल माला, लाल चन्दन आदि सभी लाल वस्तुओं से क्षत्रिय स्तम्भ की पूजा सम्पन्न करनी चाहिए और ब्राह्मणों को गुड का बना मीठा चावल (भात) खिलाना चाहिए। पश्चिमोत्तर (वायव्य) कोण में अवस्थित दिग्भाग में पीली पूजासामग्री से वैश्यस्तम्भ की पूजा करनी चाहिए और ब्राह्मणों को घृतमिश्रित भात खिलाना चाहिए। प्रायः नीली पूजासामग्री से पूर्वोत्तर

१. स्थापयित्वा।
२. स्तम्भम्।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

(ईशान्य) कोण में अवस्थित शूद्रस्तम्भ का पूजन सम्पन्न करना चाहिए और ब्राह्मणों को खिचड़ी खिलानी चाहिए। (इन स्तम्भों को खड़ा करने के पूर्व, इनके मूल में सुवर्णादि धातु स्थापित करना चाहिए, जिनमें सफेद माला-फूल आदि से सुशोभित ब्राह्मण-स्तम्भ के मूल में कर्ण-कुण्डल बनाने लायक तौल का सुवर्ण, क्षत्रियस्तम्भ के नीचे ताम्बा, वैश्यस्तम्भ की जड़ में चांदी और शूद्र-स्तम्भ के मूल में लोहा रखना चाहिए। साथ ही अवशिष्ट सभी स्तम्भों के मूल में सुवर्ण रखना चाहिए। स्तम्भों का निर्माण-कार्य फूल-माला आदि से सुसज्जित होकर तथा ब्राह्मणों द्वारा किये गये स्वस्तिपुण्याहवाचन और जय-जयकार के बीच होना चाहिए। यह शुभारम्भ ब्राह्मणों को प्रचुर मात्रा में रत्न, गौ, वस्त्र आदि के दान से तृप्त कर दिया जाना चाहिए।।४४-५५।।

व्याख्या–प्रमाणविधि (नाप-जोख) और स्थापनविधि (शिलान्यास) के विवेचन के पश्चात् इन पद्यों में स्तम्भ-निर्माण-विधि उल्लिखित है। प्रथमाध्याय में अनिष्ट निवारणार्थ निर्मित नाट्यमण्डप की रक्षा के संदर्भ में स्तम्भ-रक्षा के लिए

वर्णाश्चत्वार एवाऽस्य स्तम्भेषु विनियोजिताः।
आदित्याश्चैव रुद्राश्च न्यस्ताः स्तम्भान्तरेषु च।।

इस प्रकार का उल्लेख है। नाट्यशाला के दो भाग होते हैं–(१) नाट्यमण्डप और (२) प्रेक्षा-मण्डप। यह प्रेक्षामण्डप स्तम्भों पर आधारित होता है, जिनके चार मुख्य स्तम्भों के नाम प्राचीन ऐतिहासिक घटना पर आधारित हैं। उनकी पूजनविधि में भारतीय पंचांग में निरूपित तिथि, योग, नक्षत्र करण औरसाथ ही सूर्योदयादि शुभ मुहूर्त्त का अवश्य विचार करना चाहिए। तीस(३०) तिथियों में नन्दा आदि तिथि शुभ हैं। सत्ताईस(२७) या अट्ठाईस(२८) नक्षत्रों में रोहिणी और श्रवण नक्षत्र तथा मुहूर्त की दृष्टि से सूर्योदयवेला शुभ है। स्तम्भों के नाम वर्णानुसार हैं, अतः वहां उपविष्ट ब्राह्मणों को जिस वर्णस्तम्भ के लिए जिस रंग की पूजासामग्री निरूपित है, उन्हें उसी रंग का भोजन कराना चाहिए। अर्थात् ब्राह्मणस्तम्भ के निकट उपविष्ट ब्राह्मणों को सफेद रंग का, क्षत्रियस्तम्भ के पास बैठे ब्राह्मणों को लाल रंग का, वैश्यस्तम्भों के पास बैठे ब्राह्मणों को पीत वर्ण का और शूद्रस्तम्भ के पास बैठे ब्राह्मणों को काले रंग का भोजन कराना चाहिए। ततः का अभिप्राय यह है कि ब्राह्मणों को रत्नदानादि से पूर्ण तृप्त करके ही स्तम्भ-निर्माण का शुभारम्भ करना चाहिए, उसके पूर्व नहीं।।४४-५५।।

अचलं चाऽप्यकम्पञ्च तथैवाऽवलितं[1] पुनः।।५५।।
स्तम्भस्योत्थापने सम्यग् दोषा ह्येते प्रकीर्तिताः।
अवृष्टिरुक्ता चलने वलने मृत्युतो[2] भयम्।।५६।।
कम्पने परचक्रात् तु भयं भवति[3] दारुणम्।
दौषेरेतैर्विहीनं तु स्तम्भमुत्थापयेच्छिवम्।।५७।।

अन्वयः–अचलं च अपि च अकम्पं तथैव पुनः अवलितं (स्तम्भम् उत्थापयेत।) एते हि स्तम्भस्य उत्थापने सम्यक् दोषाः प्रकीर्तिताः। स्तम्भस्य चलने अवृष्टिः उक्ता,

१.तथैवाचलितम्
२. मृतितो
३. वदति

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

वलने मृत्युतः भयम् (उक्तम्)। कम्पने तु परचक्रात् दारुणं भयं भवति। एतैः दोषैः विहीनं शिवं स्तम्भम् उत्थापयेत्।।५५-५७।।

अभिनव-भारती

अचलमिति। स्थानान्तरानिवेशलक्षणमनेनोक्तम्। अविद्यमाना चलना यस्येति। अकम्प्यमिति। तत्रैव स्थानशिथिलता येन न भवति। अवलितमिति। बलयाकृत्यादिना परिवर्तनं यस्य करणीयं न भवति। दोषसूचकत्वाद् दोषकारित्वाच्च दोषाः। तान् दोषानाह–अवृष्टिरित्यादि। ।।५५-५७।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ– जो स्तम्भ खड़ा किया जानेवाला हो, वह अपने जगह से न तो हिलना चाहिए और न उसमें किसी प्रकार का कम्प होना चाहिए और उसमें जरा भी वलन (झुकाव) नहीं रहना चाहिए। चलन, कम्पन और वलन ये स्तम्भ को ठीक तरह खड़ा करने में दोष गिनाए गए हैं। स्तम्भ के अपने स्थान पर से हटने पर अनावृष्टि दोष, झुकने पर मृत्यु से भय और कम्पित होने पर शत्रुचक्र से भयानक आपदा उपस्थित होती है।।५५-५७।।

व्याख्या–'अविद्यमाना चलना यस्य इति अचलम्' इस निर्वचन के अनुसार जो स्तम्भ खड़ा किया जाने वाला हो, उसे अपने स्थान से हटना नहीं चाहिए। उसमें जरा भी कम्पन नहीं होने देना चाहिये, वह स्थान शिथिल नहीं होना चाहिये, अपितु वह स्तम्भ उसमें कसकर खड़ा किया जाना चाहिए, जिससे वह जरा भी हिल-डुल न सकें। वह अपने स्थान पर घूमना और झुकना भी नहीं चाहिये। चलन, वलन और कम्पन दोषसूचक और दोषकारी होने से 'दोष' हैं, जिन्हें 'अवृष्टिरुक्ता चलने' इत्यादि द्वारा दर्शाया गया है।।५५-५७।।

पवित्रे[१] ब्राह्मणस्तम्भे दातव्या दक्षिणा च गौः ।
शेषाणां भोजनं कार्यं स्थापने कर्तृसंश्रयम्[२] ।।५८।।
मन्त्रपूतं[३] च तद् देयं नाट्याचार्येण धीमता ।
पुरोहितं नृपं चैव भोजयेन्मधुपायसैः[४] ।।५९।।
कर्तॄनपि तथा सर्वान् कृसरां लवणोत्तराम्[५] ।
सर्वमेवं[६] विधिं कृत्वा सर्वातोद्यैः प्रबोधितैः ।।६०।।
अभिमन्त्र्य यथान्यायं स्तम्भा[७]नुत्थापयेच्छुचिः ।
यथाऽचलो गि[८]रिर्मेरुर्हिमवांश्च महाबलः[९] ।।६१।।
जयावहो नरेन्द्रस्य तथा त्वमचलो भव ।
स्तम्भद्वारं च भित्तिं च नेपथ्यगृहमेव च ।।६२।।
एवमुत्थापयेत् तज्ज्ञो विधिदृष्टेन कर्मणा ।

१.पवित्रं।
२. शेषाणां स्थापने कार्यं भोजनं कर्तृसंश्रयम्।
३. मंत्रपूर्वं।
४. पायसम्।
५. कृसरं लवणोत्तरम्।
६. सर्वमेव।
७. स्तम्भम्।
८. गुरुः।
९. यथाचलः।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अन्वयः–पवित्रे ब्राह्मणस्तम्भे दक्षिणा गौः च दातव्या, शेषाणां स्थापने कर्तृसंश्रयं भोजनं कार्यम्। धीमता नाट्याचार्येण तत् मन्त्रपूतं देयम्। मधुपायसैः पुरोहितं नृपं चैव भोजयेत्। तथा सर्वान् कर्तॄन् अपि लवणोत्तरां कृसरां भोजयेत्। प्रबोधितैः सर्वातोद्यैः सर्वम् एव विधिं कृत्वा शुचिः (सन्) अभिमन्त्र्य यथान्यायं स्तम्भान् उत्थापयेत्। 'यथा मेरुः गिरिः अचलः, महाबलः हिमवान् च अचलः, तथा त्वं नरेन्द्रस्य जयावहः अचलः भव।' एवं तज्ज्ञः विधिदृष्टेन कर्मणा स्तम्भद्वारं च भित्तिं च नेपथ्यगृहम् एव च उत्थापयेत्।।५८-६३।।

अभिनव-भारती

दातव्येति। द्विजायेति दातव्यबलाच्चोच्यते। अभिमन्त्र्येति सूचितो यः मन्त्रस्तमाह–यथेति। प्रणवनमस्कारमध्यवर्ती चाऽयं पठितव्य इति वास्तुविद्याविदः। अचलो भवेति पू (अपू)र्वविधिः। न (तेन) तदनुवादेन जयावहो भवे'ति पौनरुक्त्यम् (?)। एवमिति। तेन भित्तौ स्त्रीत्वेन गृहे नपुंसकत्वेनोहः कार्यः।।५८-६३।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–पवित्र ब्राह्मण स्तम्भ को खड़ा करने पर ब्राह्मणों को दक्षिणापूर्वक गोदान करना चाहिए। और अवशिष्ट स्तम्भों को खड़ा करने पर उसके शिल्पियों को भोजन कराना चाहिए। प्रतिभाशाली नाट्याचार्य मन्त्रोचारण के बीच पवित्र वातावरण में स्वयं यह शुभ कार्य सम्पन्न करे। वह स्वयं पुरोहित और राजा को शहद और पायस का भोजन कराए और अन्य कर्मचारियों को नमक के साथ खिचड़ी खिलाए। इस प्रकार नाट्याचार्य (शंख-दुन्दुभि आदि) सभी वाद्य-वादन के बीच पवित्रतापूर्वक 'यथाऽचलो गिरिर्मेरुः' इत्यादि मंत्रोच्चारणपूर्वक शास्त्रानुसार स्तम्भ-स्थापना का कार्य सम्पन्न करे। पूर्वोक्त अन्वयानुसार श्लोक का भाव यह है–"जिस प्रकार सुवर्णपर्वत सुमेरु और महाशक्तिसम्पन्न हिमालय पर्वत अचल है, हे स्तम्भदेवता! उसी प्रकार तुम भी अचल रहो और राजाधिराज के लिए विजयवाहक बनो।" इसी प्रकार शास्त्रोक्तविधि से वास्तुशिल्पशास्त्रज्ञ को स्तम्भ के द्वार, उसके चारों ओर की दीवारों और नेपथ्यगृह का निर्माण करना चाहिए।।५८-६३।।

व्याख्या–स्तम्भ-स्थापना के समय 'यथाऽचलो गिरिर्मेरुः' इत्यादि मंत्रपाठ का विधान है, जिसके प्रारम्भ में ओङ्कार और अन्त में 'नमः' कहना चाहिए। 'पवित्रे ब्राह्मणस्तम्भे' इत्यादि पूर्वार्द्ध में दक्षिणापूर्वक गोदानविधि उल्लिखित है, जो ब्राह्मण को देना चाहिए। इस प्रकार स्तम्भ में पुल्लिंग का, भित्ति में स्त्रीलिङ्ग का और नाट्यगृह में नपुंसकलिङ्ग का ऊह करना चाहिए।।५८-६३।।

रङ्गपीठस्य पार्श्वे[1] तु कर्तव्या मत्तवारणी ।।६३।।
चतुःस्तम्भसमायुक्ता रङ्गपीठप्रमाणतः ।
अध्यर्धहस्तोत्सेधेन कर्तव्या मत्तवारणी ।।६४।।
ऊत्सेधे'न तयोस्तुल्यं कर्तव्यं रङ्गमण्डपम् ।
तस्यां माल्यं च धूपं च गन्धं वस्त्रं तथैव च[2] ।।६५।।

१. पश्चात्।
२. तस्य माल्यञ्च वस्त्रञ्च गन्धमाल्यं तथैव च।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

नानावर्णानि देयानि तथा भूतप्रियो बलिः ।
आयसं[1] तत्र दातव्यं स्तम्भानां कुशलैरधः[2] ।।६६।।
भोजने [3]कृसराश्चैव दातव्यं ब्राह्मणाशनम् ।
एवं विधिपुरस्कारैः कर्तव्या मत्तवारणी ।।६७।।

अन्वयः–रङ्गपीठस्य पार्श्वे तु मत्तवारणी कार्या। रङ्गपीठप्रमाणतः अध्यर्धहस्तोत्सेधेन चतुःस्तम्भसमायुक्ता मत्तवारणी कर्तव्या। तयोः उत्सेधेन तुल्यं रङ्गमण्डपं कर्तव्यम्। तस्यां माल्यं च धूपं च गन्धं तथैव वस्त्रं च नानावर्णानि देयानि। कुशलैः तत्र स्तम्भानाम् अधः आयसं दातव्यम्। भोजने कृसराश्चैव ब्राह्मणाशनं दातव्यम्। एवं विधिपुरस्कारैः मत्तवारणी कर्तव्या।।६४-६७।।

अभिनव-भारती

पार्श्वे इति। विशेषानुपादानात् तयोस्तुल्यम् (ना.शा.२।६५) इति च द्विवचनाल्लिङ्गाद् भाविनोर्द्वयोः पार्श्वयोरिति लभ्यते। स्तम्भाश्चत्वारः बहिर्मण्डपान्निष्कासनं कृत्वा ध्रियन्ते मण्डपक्षेत्राद् बहिः। तेन भित्तिच्छ्रदावधौ स्तम्भद्वयम्। ततोऽपि बहिर्भित्तेरष्टहस्तान्तरस्तम्भापेक्षयाऽप्यष्टहस्तान्तरं स्तम्भद्रयमित्येतावदित्यष्टहस्तविस्तारा समचतुरस्रा मत्तवारणी भवति। आयामस्तु प्रमाणमिति ये वदन्ति तेषां मते दैर्घ्यादष्टहस्तं विस्तारात् षोडशहस्तमित्येवं विकृष्टता रङ्गपीठस्य भवति। अन्येषां हस्तमानोऽत्र (मानमत्र) यथा रङ्गपीठापेक्षया च सार्धहस्तपरिमाण उच्छ्रायः कार्यो मत्तवारण्याः। तयोरिति द्विवचनं ज्ञापकमेतच्चरितार्थमितीह नापेक्षित इति। तस्या एव यावानुत्सेधस्तावान् रङ्गपीठस्य। तेन ब्रघ्नभूभागापेक्षया सार्धहस्तप्रमाणोन्नतं रङ्गपीठमित्युक्तं भवति। तेन मत्तवारण्यालोकेन नात्यर्थं रङ्गपीठस्य दुष्प्रेक्षता। एतच्चोत्सेधेनेत्येकवचनेन सूचितम्। अन्यथोत्सेधाभ्यामित्युच्येत।

माल्यधूपाद्यत्र निर्माणकाल एव देयम् । तदधिष्ठातॄणां भूतादीनामुग्रत्वेन यत्नोपचरणीयत्वात्। तदाह–विधिपुरस्कारैरिति। पुरस्कारशब्देन विधिर्वास्तुशास्त्रोक्तः।।६३-६७।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–रङ्गपीठ के दोनों पार्श्वभूमि में मत्तवारणी का निर्माण करना चाहिए। प्रत्येक मत्तवारणी चार खम्भों की होनी चाहिए। रङ्गपीठ (रंगमंच) के प्रमाण से डेढ़ हाथ (३६ अंगुल) ऊंची मत्तवारणी का निर्माण करना चाहिए। दोनों ओर की मत्तवारणी के ऊँचाई के बरावर रङ्गमण्डप का निर्माण करना चाहिए। मत्तवारणी का निर्माण करते समय विविध रंग के माला-धूप-गन्ध-वस्त्रादि से उसका पूजन करना चाहिए और भूतों को प्रिय बलिदान करना चाहिए। कुशल शिल्पियों का यह कर्तव्य है कि वे स्तम्भों के मूल में लोहा रखें। उस समय ब्राह्मणों को खिचड़ी का भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार शिल्पशास्त्रानुसार मत्तवारणी का निर्माण करना चाहिए।।६३-६७।।

व्याख्या–प्रथमाध्याय में नाट्यमण्डप की रक्षा करते समय यह वर्णित किया

१. पायसं चात्र, आयसं तत्र।
२. कुशलाय तु ।
३. कृसरं चैव।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

गया है कि उसकी रक्षा के लिए दैत्यों का संहार करनेवाली इन्द्र की वज्रायुधस्वरूपा विद्युत् को स्थापित किया गया और उसके चार खम्भों में यथाक्रम भूत, यक्ष, पिशाच और गुह्यकों को नियुक्त किया गया। (द्र.ना.शा. १।९०-९१) शब्दस्तोम महानिधि में पुंल्लिङ्गी 'मत्तवारण' शब्द दृष्टिगोचर होता है, जिसका अर्थ 'प्रासाद-वरण्ड (घर का बरामदा) किया गया है।

रङ्गपीठस्य पार्श्वे—यहां 'पार्श्वे' का अर्थ रंगपीठ की दोनों पार्श्वभूमि में यह है। यहां 'किस ओर' यह उल्लेख नहीं है, 'उत्सेधने तंयोस्तुल्यम्' (२।६५) में द्विवचन का प्रयोग है।

चतुःस्तम्भसमायुक्ता—प्रत्येक मत्तवारणी चार खम्भों की होनी चाहिए, जो रङ्गमण्डप से बाहर उससे सटकर होनी चाहिए। रंगमण्डप के दोनों ओर निर्माणाधीन मत्तवारणी के दो-दो खम्भे रंगमण्डप की दीवाल से सटकर नीचे की ओर होने चाहिए। उनसे हटकर आठ-आठ हाथ के अन्तर पर दो-दो खम्भे और होने चाहिए। इस प्रकार आठ हाथ चौड़ाई और आठ हाथ लम्बाई की समान चतुरस्र (वर्गाकार) प्रत्येक मत्तवारणी होती है, यह 'अभिनव-भारती' कार का मत है। जो आयाम को प्रमाण मानते हैं, उनके मत में रङ्गपीठ की लंबाई आठ हाथ और चौड़ाई सोलह हाथ इस प्रकार रङ्गपीठ आयताकार होना चाहिए। रङ्गपीठ की अपेक्षा मत्तवारणी की ऊंचाई डेढ़ हाथ अधिक ऊंची होनी चाहिए।

उत्सेधेन तयोस्तुल्यम्— दोनों ओर की मत्तवारणी की जितनी उंचाई हो, उतनी ही उंचाई रंगपीठ की होनी चाहिए। उत्सेधेन इस तृतीया एकवचन से यह सूचित होता है, कि नाट्यशाला की भूमि की जो ऊंचाई हो, रंगपीठ की उंचाई उससे डेढ़ हाथ अधिक होनी चाहिए। जिससे वहां बैठे दर्शकों को नाट्यप्रयोग देखने में कोई असुविधा न हो।

तस्यां माल्यं च धूपं च—जैसा कि प्रथमाध्याय में निरूपित है—

स्तम्भेषु मत्तवारण्याः स्थापिताः परिपालने ।
भूतयक्षपिशाचाश्च गुह्यकाश्च महाबलाः ।।

(ना.शा. १।९१)

अतः भूत-यक्ष आदि को प्रसन्न करने के लिए मत्तवारणी के निर्माण के समय ही उनका पूजन और उन्हें प्रियबलि देनी चाहिए, क्योंकि वे उसके अधिष्ठाता दिव्ययोनिगण हैं। यह सम्पूर्ण विधान वास्तुशास्त्र की पद्धति से सम्पन्न करना चाहिए।।६३-६७।।

रङ्गपीठं ततः कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ।
रङ्गशीर्षं तु कर्तव्यं षड्दारुकसमन्वितम् ।।६८।।
कार्यं द्वारद्वयं चाऽत्र नेपथ्यगृहकस्य तु ।
पूरणे मृत्तिका चाऽत्र कृष्णा देया प्रयत्नतः ।।६९।।
लाङ्गलेन समुत्कृष्य निर्लोष्ठतृणशर्करम्[1] ।
लाङ्गले शुद्धवर्णौ तु धुर्यौ योज्यौ प्रयत्नतः ।।७०।।

१. शर्करा।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

कर्तारः पुरुषाश्चाऽत्र[1] येऽङ्गदोषविवर्जिताः ।
अहीनाङ्गैश्च वोढव्या मृत्तिका पिटकैर्नवैः[3] ।।७१।।

अन्वयः–ततः विधिदृष्टेन कर्मणा रङ्गपीठं कार्यम् । (ततः) षड्दारुकसमन्वितं तु रङ्गशीर्षं कर्तव्यम्। अत्र च नेपथ्यगृहकस्य तु द्वारद्वयं कार्यम्। अत्र च पूरणे लाङ्गलेन समुत्कृष्य निर्लोष्ठतृणशर्करं प्रयत्नतः कृष्णा मृत्तिका देया। लाङ्गले तु प्रयत्नतः शुद्धवर्णौ धुर्यौ योज्यौ। अत्र च ये अङ्गदोषविवर्जिताः, (ते) कर्तारः। अहीनाङ्गैश्च (नरैः) नवैः पिटकैः मृत्तिका वोढव्या।

अभिनव-भारती

रङ्गपीठे कार्ये रङ्गशिरस्तावदाह रङ्गशीर्षमिति। नेपथ्यगृहभितिलग्नौ स्तम्भावष्टहस्तान्तरावन्योन्यं निवेश्य तयोर्यन्मुखं तदपेक्षया चतुर्हस्तान्तरं स्तम्भद्वयम्। तेषामधस्तनं काष्ठमुपरितनं चेति षड् दारूणि। यत्र षड् दारूणि तत् षड्दारुकम्। संज्ञायां कन्। तत् तेन विचित्ररचनोपेतं व लभ्यते। अत्र नेपथ्य-गृहस्य द्वारद्वयं कार्यम्-एकं दक्षिणतः, अपरमुत्तरतः। तच्च द्वारद्वयमापादितं कूर्पराभिन(म) त्या भवति। तत्पात्राणां विश्रान्त्यै आगच्छतां च गुप्त्यै रङ्गस्य शोभायै रङ्गशिरः कार्यम्। अन्ये तु–

पार्श्वद्वयोर्ध्वाधरदारुमण्डितं स्तम्भद्वयोपेतमिहाच्छपातकम्

इति षड्दारुकमाहुः। अन्ये (अत्र) तूहः स्तम्भशिरसो दूरं निर्गतं काष्ठम्। प्रत्यूहस्ततो विनिर्गता तुला, आकाशे भित्त्याकारोच्छ्रितकाष्ठः संजवनोपेतः व्यूहः। स्तम्भाश्रिताः सिंहादयो व्यालानुबन्धाश्च निर्यूहास्तुलान्तान्निस्सृताः फलकभित्तिमयाः। कुहराणि पर्वतपुरनिकुञ्जगह्वररूपाणीति षड्दारुकम्। सर्वत्र च पक्षे दक्षिणोत्तरगतं द्वारद्वयं पात्राणां प्रवृत्तिभेदकृतात् त्प्रदक्षिणाप्रदक्षिणा-प्रवेशत्वात्। शुद्धवर्णौ शुक्लौ। धुर्यौ दान्तौ।।६८-७१।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–मत्तवारणी का निर्माण करने के उपरान्त वास्तुशास्त्रोक्त विधि से यथाक्रम रङ्गपीठ (रङ्गमञ्च) और रङ्गशीर्ष का निर्माण करना चाहिए, जिसमें छः 'दारुक' होने चाहिए। उसमें प्रवेश के लिए नेपथ्यगृह के दो दरवाजे होने चाहिए।

रङ्गपीठ (रंगमंच) और नाट्यमण्डप की नींव भरने में प्रयत्नपूर्वक काले रंग की मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए। वह जमीन हल चलाकर भरनी चाहिए और उसमें मिले हुई मिट्टी के ढेले, कंकड़-पत्थर, घास-फूस आदि को वहां से हटा देना चाहिए। हल चलाते समय उसमें शुभ्र वर्ण के दो बैलों को प्रयत्नपूर्वक जोतना चाहिए। उनमें काम करनेवाले कारीगर और श्रमिक विकलाङ्ग न हों, और वे नई टोकरियाँ लेकर ही वहां की जमीन को काली मिट्टी से समतल करें।।६८-७१।।

व्याख्या–नाट्यमण्डप के भूमि की प्रमाणविधि (माप-जोख) का विवेचन करते समय ६४×३२ हाथों वाले आयताकार नाट्यमण्डप में ३२×३२ हाथों का वर्गाकार 'प्रेक्षागृह' कल्पित है। ३२×३२ हाथवाले वर्गाकार सम्पूर्ण रङ्गपीठ के दो भाग हैं–

२. तत्र।
३. पीटकैः।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

(१) रङ्गशीर्ष और (२) नेपथ्यगृह। इन दोनों में (१) रङ्गशीर्ष प्रेक्षागृह के सम्मुख और ठीक उसके पीछे (२) नेपथ्यगृह होना चाहिए। (१) रङ्गशीर्ष और (२) नेपथ्यगृह दोनों १६×८ हाथ वाले पृथक् पृथक् आयताकार होने चाहिए। यहां पर अग्रिम सार्द्ध कारिका में सम्पूर्ण रङ्गपीठ में 'रङ्गशीर्ष' के निर्माण और द्वार-निर्माण का विधान है।

षड्दारुकसमन्वितम्—वह 'रङ्गशीर्ष' छः दारुकों (धरनों) पर आधारित होना चाहिए। वे छः दारुक कैसे स्थापित किये जायं? इसके विषय में विभिन्न मत हैं। 'अभिनव-भारती' की प्रथम व्याख्या के अनुसार 'रङ्गशीर्ष' के दो खम्भे 'नेपथ्यगृह' की दीवाल से सटकर होने चाहिए और उन दोनों की दूरी आठ हाथों के अन्तर पर रहनी चाहिए। उन दोनों का जो अग्रभाग हो, उनसे चार हाथों की दूरी पर दो खम्भे स्थापित किये जाने चाहिए। उनके नीचे और ऊपर एक-एक काष्ठखंड रखते हुए छः 'दारुकों' वाले 'रङ्गशीर्ष' का निर्माण करना चाहिए। **यत्र षड् दारूणि तत् षड्दारुकम्, तेन समन्वितं षड्दारुकसमन्वितम्**। उससे 'रङ्गशीर्ष' विचित्र आकृतिसम्पन्न होगा। रङ्गशीर्ष में प्रवेश करने के लिए नेपथ्यगृह के दो द्वार होने चाहिए—एक दक्षिण की ओर और दूसरा उत्तर की ओर। वह नेपथ्यगृह रङ्गमंच पर आवागमन करने के लिए सुरक्षित और गुप्त विश्राम-स्थल है। उसके आगे 'रङ्गशीर्ष' समस्त रङ्गमण्डप की शोभा बढ़ाता है।

द्वितीय व्याख्या इस प्रकार है—**पार्श्वद्वयोर्ध्वाधरदारुमण्डितं स्तम्भद्वयोपेत-महाच्छपातकम्**। अर्थात् रङ्गमंच के दोनों ओर दो स्तम्भ होने चाहिए, उनके बीच दूरी छोड़ कर दो स्तम्भ और होने चाहिए। नेपथ्यगृह की दीवाल से सटकर उन पर ऊपर और नीचे एक-एक करके छः काष्ठफलक इस प्रकार रखने चाहिए, जिससे वह रङ्गशीर्ष का आच्छादन हो।

इसकी तीसरी व्याख्या के अनुसार 'रङ्गशीर्ष' में प्रयुक्त छः 'दारुक' (काष्ठखण्डों) के विभिन्न नाम हैं' जिनका विवरण इसप्रकार है—(१) **ऊह**—जो काष्ठखण्ड स्तम्भ के ऊपरी भाग से निकला होता है। (२) **प्रत्यूह**—स्तम्भों से बाहर की ओर निकली हुई वह लकड़ी, जिसे 'तुला' कहते हैं। यहां विश्वकोष द्रष्टव्य है—**तुला सादृश्यमानयोः। गृहाणां दारुबन्धाय पीठिकायामपीष्यते**। यहां 'दारुबन्ध' का तात्पर्य लकड़ी की उस चौखट से है, जिसमें दरवाजे लगाये जाते हैं, उसकी पीठिका 'तुला' (धरन या जोता) कहलाती है और उसका खम्भों से बाहर निकला हुआ बाहरी हिस्सा 'प्रत्यूह' कहलाता है। (३) **व्यूह**—आकाश की ओर दीवाल के आकार का खड़ा किया गया काष्ठफलक, जिसपर 'संजवन' का आकार होना चाहिए। 'संजवन' की परिभाषा 'अमरकोष' में इस प्रकार है—**सञ्जवनं त्विदम्। चतुःशालम्** (२।२।६)। अर्थात् परस्पर एक दूसरी ओर बनाई हुई चार शालाओं को 'संजवन' कहते हैं, वे चार चतुष्कोण (चार खाने) भी हो सकते हैं। 'व्यूह' में उसकी आकृति अंकित होनी चाहिए। (४) **अनुबन्ध**—खम्भों के ऊपर उभरी हुई सिंह, व्याल (सर्प) आदि की आकृतियां (५) **निर्यूह**—'तुला' (जोता या धरन) के किनारे से बाहर की ओर निकले हुए दीवारों के आकार के काष्ठफलक। (६) **कुहर**—उनपर खुदी हुई पहाड़, नगर, निकुञ्ज, गुफा आदि गहरी आकृतियां। तृतीय व्याख्या के अनुसार इस छः प्रकार के 'दारुकों' का

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

प्रयोग 'रङ्गशीर्ष' में होना चाहिए। इनसे तत्कालीन काष्ठशिल्पकला पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

त्रिविध व्याख्या करने पर भी 'रङ्गशीर्ष' के दाहिनी और वायीं ओर प्रदक्षिणा क्रम अथवा उसके विपरीत क्रम से पात्रों का प्रवेश-निर्गम करने के लिए एक-एक द्वार अवश्य होना चाहिए, यह निश्चित है।

लाङ्गले शुद्धवर्णौ तु धुर्यौ–जिस जमीन को हल से जोतना चाहिए, उसमें सफेद रंग के दो बैल जुते हुए हों, जो उसकी 'धुरा' का मजबूती से संभालनेवाले हों। 'अभिनव-भारती' में 'धुर्यौ दान्तौ' पर्याय दिया गया है। 'मेदिनीकोष' अनुसार 'दान्तस्तु दमितंऽपि स्यात् तपःक्लेशसहे त्रिषु' यह अर्थ किया हुआ है। तदनुसार उनमें कष्ट सहने की क्षमता होनी चाहिए।

'अमरकोष' में हल की धुरा को धारण करनेवाले बैल के पांच पर्याय है–धूर्वह, धुर्य, धौरेय, धुरीण और धुरन्धर। 'धूर्वहे धुर्य-धौरेय धुरीणाः सधुरन्धराः' (२।९।६५) इस प्रकार बैल का वाचक 'धुर्य' शब्द योगरूढ है।।६८-७१।।

एवंविधैः[1] प्रकर्तव्यं रङ्गशीर्षं प्रयत्नतः ।
कूर्मपृष्ठं[2] न कर्तव्यं मत्स्यपृष्ठं तथैव च ।।७२।।
शुद्धादर्शतलाकारं रङ्गशीर्षं प्रशस्यते ।
रत्नानि चाऽत्र देयानि पूर्वं[3] वज्रं विचक्षणैः ।।७३।।
वैडूर्यं दक्षिणे पार्श्वे[4] स्फटिकं पश्चिमे तथा ।
प्रवालमुत्तरे चैव मध्ये तु कनकं भवेत् ।।७४।।
एवं रङ्गशिरः कृत्वा दारुकर्म प्रयोजयेत्[5] ।
ऊहप्रत्यूहसंयुक्तं नानाशिल्पप्रयोजितम् ।।७५।।
नानासञ्जवनोपेतं बहुव्यालोपशोभितम् ।
[6]ससालभञ्जिकाभिश्च समन्तात् समलङ्कृतम् ।।७६।।
[7]निर्व्यूहकुहरोपेतं नानाग्रथितवेदिकम् ।
नानाविन्याससंयुक्तं [8]चित्रजालगवाक्षकम् ।।७७।।
सुपीठधारिणी[9]युक्तं कपोतालीसमाकुलम् ।
नानाकुट्टिमविन्यस्तैः स्तम्भैश्चाऽप्युपशोभितम् ।।७८।।

अन्वयः–एवंविधैः प्रयत्नतः रङ्गशीर्षं प्रकर्तव्यम्। कूर्मपृष्ठं तथैव च मत्स्यपृष्ठं न कर्तव्यम्। शुद्धादर्शतलाकारं रङ्गशीर्षं प्रशस्यते। अत्र च रत्नानि देयानि। विचक्षणैः पूर्वे वज्रं, दक्षिणे पार्श्वे वैडूर्यं, तथा पश्चिमे स्फटिकम्, उत्तरे चैव प्रवालं देयानि। मध्ये तु कनकं भवेत्। एवं रङ्गशिरः कृत्वा ऊह-प्रत्यूहसंयुक्तं नानाशिल्पप्रयोजितं

१.एवंविधैश्च कर्तव्यम्।
२.पूर्वं कर्तव्यम्।
३. पूर्वं।
४. चैव।
५. प्रवर्तयेत्।
६. अट्टाल, भवेयुश्चात्र विन्यस्ता विविधाः सालभञ्जिकाः।
७. निर्यूह।
८. यन्त्र।
९. धरणी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

नानासञ्जवनोपेतं बहुव्यालोपशोभितं ससालभञ्जिकाभिश्च समन्तात् समलङ्कृतं निर्व्यूह-कुहरोपेतं नानाग्रथितवेदिकं नानाविन्याससंयुक्तं चित्रजालगवाक्षकं सुपीठ-धारिणी-युक्तं कपोतालीसमाकुलं नानाकुट्टिमविन्यस्तैः स्तम्भैः चापि उपशोभितं दारुकर्म प्रयोजयेत्।।७२-७८।।

अभिनव-भारती

कूर्मपृष्ठमिति। समन्ततो निम्नं मध्ये च वर्तुलरूपं मन्दम्। तत् तादृगेव मध्ये दीर्घरूपं मत्स्यपष्ठम्। तदुभयं नाऽत्र कार्यम्। समं तुल्यं कार्यम्। रत्नानि तदायुधं तद्वर्णानुरूपत्वेन यथायोगम्। कृत्वेति। पूर्वं विभज्य बुद्ध्येति यावत्। दारुकर्मेत्युक्तं विभजति–ऊहप्रत्यूहसंयुक्तमित्यादिना स्तम्भैश्चाप्युपशोभित-मित्यन्तेन। अनेकसालभञ्जिकाः काष्ठमय्यः कान्ताप्रकृतयः। नानाकृतिभिर्ग्रथिताः वेदिकाश्चतुरस्त्रिकाः यत्र। चित्राणि जालानि चतुरस्राष्टास्रच्छिद्ररूपाणि गवाक्षाणि च वर्तुलच्छिद्रात्मकानि यत्र। पीठानि स्तम्भोपरि। तेषु धारिण्य-स्तुलाः। कपोताली विटङ्कपाली। कुट्टिमस्य नानात्वं रङ्गशिरोरङ्गपीठ-मत्तवारणीद्वयभेदात्। सर्वत्र तथाविधदारुकम्। रक्तसितनीलपीतादिभेदाद् वा। अत्रोहप्रत्यूहावन्वयव्यतिरेकतर्कोपयोगिनौ केचिदाहुः।।७२-७८।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक रङ्गशीर्ष का निर्माण करना चाहिए। वह कूर्मपृष्ठ अथवा मत्स्यपृष्ठ नहीं होना चाहिए। निर्मल दर्पण के आकार का रङ्गशीर्ष श्रेष्ठ (प्रशस्त) होता है। उस रङ्गशीर्ष में रत्नों का विन्यास इस प्रकार करना चाहिए–पूर्व में हीरा, दक्षिण-पार्श्व में वैदूर्य, पश्चिम में स्फटिक, उत्तर में प्रचाल (मूंगा) और मध्य में सुवर्ण। इस प्रकार रङ्गशीर्ष की कल्पना कर उसके काष्ठशिल्प की रचना करनी चाहिए। उस काष्ठरचना में ऊह, प्रत्यूह और विविध प्रकार की शिल्पकारी होनी चाहिए। विविध प्रकार के संजवन (चतुःशाल या चतुष्कोण) तथा विविध सर्पाकृत्तियां अंकित होनी चाहिए। उसके चारों ओर सालभञ्जिकाएं अंकित करनी चाहिए। उसमें निर्व्यूह और कुहर होने चाहिए। विविध प्रकार की वेदिकाएं अंकित होनी चाहिए। उसमें विविध रचनाएं और चित्र-विचित्र झरोखे होने चाहिए। स्तम्भों के विस्तीर्ण पृष्टभाग पर चौड़ी धरनों का प्रयोग होना चाहिए, जिसमें कबूतरों को रहने के लिए घोसले भी हों। विविध प्रकार के फर्शों पर वे काष्ठस्तम्भ गाड़ने चाहिए।।७२-७८।।

व्याख्या–रङ्गशीर्ष का निर्माण कूर्मपृष्ठ जैसा नहीं होना चाहिए, जिस प्रकार कछुवे की पीठ चारों ओर से झुकाव वाली और बीच में वर्तुल (गोल) होती है, वैसा रङ्गशीर्ष नहीं होना चाहिए। उसी प्रकार वह 'मत्स्यपृष्ठ, भी नहीं होना चाहिए। जैसे मछली की पीठ चारों ओर से झुकी और बीच में लम्बी आयताकार होती है, वह वैसा भी नहीं होना चाहिए। अपितु वह निर्मल दर्पण तल के आकार का समतल होना चाहिए।

रत्नानि चाऽत्र देयानि–नाट्यमण्डप की रक्षा करने के लिए चन्द्र, दिक्पाल आदि देवता जब विविध स्थानों पर नियुक्त किये गए, तब मध्य में स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठित हुए–**रङ्गपीठस्य मध्ये जु स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठितः** (ना.शा. १।९५)। उन देवंताओं के जो आयुध हैं, उनके जो रंग हैं, तदनुरूप उस रंग के रत्न का विन्यास उस-उस दिशा

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

में करना चाहिए।

एवं रङ्गशिरः कृत्वा—रङ्गशीर्ष छः दारुकों से युक्त होता है। उसका षड्विध विभाग बुद्धिस्थ करके काष्ठशिल्प रचना करनी चाहिए यही कृत्वा का आशय है—**पूर्वं विभज्य बुद्धयेति यावत्** (अभिनव-भारती)।

दारुकर्म प्रयोजयेत्— विशेषक में उसी दारुकर्म के विशेषण **ऊहप्रत्यूहसंयुक्तं** से लेकर **स्तम्भैश्चाप्युपशोभितं** तक प्रयुक्त हैं। **रङ्गशीर्ष तु कर्तव्यं षड्दारुकसमन्वितम्** (२।६८) की तृतीय व्याख्या करते समय **अभिनवभारती**कार ने ऊह, प्रत्यूह, संजवन, निर्यूह, कुहर, व्यांल आदि शब्दों का प्रयोग किया है। वहीं उसका अर्थ द्रष्टव्य है।

ससालभञ्जिकाभिश्च—'शब्दस्तोममहानिधि' में इसका निर्वचन इस प्रकार है—**सालभञ्जिका-स्त्री.सालं (वृक्ष-काष्ठं) भनक्ति, भञ्ज्-ण्वुल्। काष्ठादिनिर्मिते कृत्रिमक्रीडासाधने पुत्तलिकायाम्, वेश्यायां च।** तदनुसार रङ्गशीर्ष के काष्ठशिल्प पर चित्र विचित्र पुतलियां खुदी हुई होनी चाहिए। इसकी **अभिनवभारती** द्रष्टव्य है—**अनेकसालभञ्जिकाः काष्ठमय्यः कान्ताप्रकृतयः।** इससे यह विदित होता है कि वे पुतलियां अप्सराओं जैसी कान्ता (सुन्दरी) होनी चाहिए।

नानाग्रथितवेदिकम्—उस पर विभिन्न आकृतियों के चतुरस्र (वर्ग) उत्कीर्ण होने चाहिए।

चित्रजालतगवाक्षकम्—उसमें विविध चतुष्कोण, अष्टकोण, वर्तुल छिद्रवाले गवाक्ष (झरोखे) होने चाहिए।

सुपीठधारिणीयुक्तम्—रङ्गशीर्ष के स्तम्भपीठों पर मजबूत धरनें स्थापित की जानी चाहिए, **'धारिणी'**, **'धारणी'** **'धरणी'**, **'तुला'** आदि धरनवाची अर्थ संस्कृत में विविध पर्यायवाची शब्द हैं, जिनमें अन्यतम **'तुला'** का प्रयोग पूर्वव्याख्या (२।६८) में भी है।

नानाकुट्टिमविन्यस्तैः स्तम्भैः—रङ्गशीर्ष के दो मुख्य भेद हैं—(१) रंगपीठ और (२) मत्तवारणी। अतः उनके फर्श विभिन्न प्रकार के होते हैं। अथवा वे फर्श लाल, सफेद, नीले, काले, पीले आदि विभिन्न रंगों के भी हो सकते हैं। उस पर काष्ठस्तम्भ स्थापित करने चाहिए और उन पर पूर्वोक्त पद्धति से शिल्पकारी होनी चाहिए।

ऊह-प्रत्यूहसंयुक्तम्—कुछ लोगों के मतानुसार ऊह और प्रत्यूह का अर्थ वास्तुशास्त्रीय पारिभाषिक यह न होकर तर्कशास्त्रीय अन्वय और व्यतिरेक के उपयुक्त यह है। 'शब्दसोममहानिधि' में ऊह का निर्वचन इस प्रकार है—**ऊहः, वितर्के आगमादिविरोधिना तर्केण आगमार्थस्य संशयपूर्वपक्षनिवारेण उत्तरपक्षच्यवस्थापनेन निर्णयरूपे परीक्षणे।।७२-७८।।**

एवं काष्ठविधिं कृत्वा भित्तिकर्म प्रयोजयेत्[1] ।
स्तम्भं वा नागदन्तं वा वातायनमथापि वा ।।७९।।
कोणं वा सप्रतिद्वारं [2]द्वारविद्धं न कारयेत् ।
कार्यः शैलागुहाकारो द्विर्भूमिर्नाट्यमण्डपः ।।८०।।
मन्दवातायनोपेतो निर्वातो धीरशब्दवान्[3] ।

१. प्रवर्तयेत् ।
२. दारु।
३. धीशब्दभाक् ।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

तस्मान्निवातः कर्तव्यः कर्तृभिर्नाट्यमण्डपः ।।८१।।
गम्भीरस्वरता येन कुतपस्य भविष्यति ।[1]
भित्तिकर्मविधिं कृत्वा भित्तिलेपं प्रदापयेत् ।।८२।।
सुधाकर्म [2]बहिस्तस्य विधातव्यं[3] प्रयत्नतः ।
भित्तिष्वथ[4] विलिप्तासु[5] परिमृष्टासु सर्वतः ।।८३।।
समासु जातशोभासु चित्रकर्म प्रयोजयेत्[6] ।
चित्रकर्मणि चालेख्याः पुरुषाः स्त्रीजनास्तथा ।।८४।।
लतावन्धाश्च कर्तव्याश्चरितं चात्मभोगजम् ।
एवं विकृष्टं कर्तव्यं नाट्यवेश्म प्रयोक्तृभिः[7] ।।८५।।

अन्वयः—एवं काष्ठविधिं कृत्वा भित्तिकर्म प्रयोजयेत्। स्तम्भं वा नागदन्तं वा अथ वातायनम् अपिवा सप्रतिद्वारं कोणं वा द्वारविद्धं न कारयेत्। शैलगृहाकारः मन्दवातायनोपेतः निर्वातः धीरशब्दवान् द्विर्भूमिः नाट्यमण्डपः कार्यः। तस्मात् कर्तृभिः नाट्यमण्डपः कर्तव्यः, येन कुतपस्य गम्भीरस्वरता भविष्यति। भित्तिकर्मविधिं कृत्वा भित्तिलेपं प्रदापयेत्। तस्य वहिः सुधाकर्म प्रयत्नतः विधातव्यम्। अथ भित्तिषु विलिप्तासु सर्वतः परिमृष्टासु समासु जातशोभांसु (सतीषु) चित्रकर्म प्रयोजयेत्। चित्रकर्मणि च पुरुषाः तथा स्त्रीजनाः आलेख्याः लतावन्धाश्च कर्तव्याः, आत्मभोगजं चरितं (कर्त्तव्यम्)। एवं प्रयोक्तृभिः विकृष्टं नाट्यवेश्म कर्तव्यम्।।

अभिनव-भारती

प्रतिद्वारमवान्तरद्वारं द्वारेण विद्धं परस्परसंमुखीभूतमध्यं न कुर्यात्। नागदन्तं स्तम्भोर्ध्वनीचस्थांशकं (नीडस्थाङ्कं) पुत्रिकाधारणार्थं गजमुखमिति केचित्। द्वे भूमी रङ्गपीठस्याऽधस्तनोपरितलरूपेणेति केचित्। मत्तवारणी बहिर्निर्गमनप्रमाणेन सर्वतो द्वितीयभित्तिनिवेशेन देवप्रसादाद्धा (दाद् वा) रिका (देवप्रासादाट्टालिका) प्रदक्षिणसदृशी द्वितीया भूमिरित्यन्ये। उपरि मण्डपान्तरनिवेशनादित्यपरे। अद्विभूमिरित्येके। उपाध्यायास्तु वीप्सागर्भं व्याचक्षते। द्वे द्वे भूमी निम्नान्ते (निम्नोन्नते) ततोऽप्युन्नता इति निक्रमेण (निम्नोन्नतक्रमेण) यत्र रङ्गपीठनिकटात् प्रभृति द्वारपर्यन्तं यावद् रङ्गपीठो-त्सेधतुल्योत्सेधा भवति। एवं हि परस्परानाच्छादनं सामाजिकानाम्। शैलगुहाकारत्वं (त्वात्) स्थिरशब्दादित्वं च भवति। मन्दत्वं वातायनानां जलकपान (जालकपाट) योगात् कार्यम्। कुतपः संफेटकगायकवादकसमूहः। कुर्नाट्यभूमिस्तां तपति उज्ज्वलयतीति कृत्वा। कुतं शब्दं पातीत्यन्ये। गम्भीरत्वं तत्रैव शब्दस्य भ्रमणादन्योन्यप्रतिश्रुतिकारसमारम्भसम्पूर्णाच्च। भित्तिलेपो

१. गाम्भीर्यं सुस्वरत्वं च कुतुपस्य भवेदिति।
२. तथैवास्य।
३. कुर्याद् बाह्यं ।
४. अपि।
५. च लिप्तासु।
६. प्रवर्तयेत् ।
७. नाट्यवेश्मप्रयोक्तृभिः।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

भङ्ग(शङ्ख) वालुकाशुक्तिकालेपः। लताबन्धा द्रुमलतादिवन्धसन्निवेशा वा मालत्यादिलतागतातोद्यवेष्टनवैचित्र्यप्रकारा वा वक्ष्यमाणपिण्डीबन्धप्रकार-विशेषाश्च। एतदुपसंहरति–एवं विकृष्टमिति। ।।७९-८५।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–इस प्रकार विविध काष्ठस्तम्भों पर षड्विध काष्ठ-शिल्प का सृजन करने के पश्चात् भित्तिकर्म (दीवालों का काम) करना चाहिए। वहां जो खम्भे, नागदंत, खिड़की, कोण अथवा प्रतिद्वार (दूसरा दरवाजा) हों, वे एक दूसरे के सामने नहीं होने चाहिए। वह नाट्यमण्डप पर्वत की गुफा के आकार का और दो मंजिला होना चाहिए। उसमें ऐसे झरोखे होने चाहिए, जिससे उसमें पवन धीरे-धीरे बहे, जोर से नहीं और जिससे गंभीर ध्वनि गूंजे। इसलिए शिल्पियों द्वारा ऐसे नाट्यमण्डप का निर्माण किया जाना चाहिए, जिसमें कुतप की ध्वनि गंभीर प्रतीत हो। दीवालों का काम होने पर उस पर भित्तिलेप (पलस्तर) करना चाहिए। अनन्तर उस पर उसके बाहर सफेदी करनी चाहिए। भित्तियों (दीवालों) पर सफेदी और चारों ओर से पालिश होने के बाद जब वे समतल और सुन्दर प्रतीत हों, तब उन पर चित्रकारी करनी चाहिए। उसके अन्तर्गत अनेक प्रकार के पुरुषों, स्त्रियों और आत्मभोग से उत्पन्न चरित्रों का अंकन करना चाहिए। इस प्रकार प्रयोगकर्ता द्वारा विकृष्ट (आयताकार) नाट्य-मण्डप का निर्माण करना चाहिए।।७९-८५।।

व्याख्या–इन कारिकाओं में विशेषरूप से 'भित्तिकर्म' का विधान प्रतिपादित है और स्तम्भ से लेकर प्रतिद्वार तक एक दूसरे के सामने निर्माण का निषेध किया गया है। **कोणं वा सप्रतिद्वारं द्वारविद्धं न कारयेत्** इस पद्यार्द्ध का **सप्रतिद्वारं कोणं वा द्वारविद्धं न कारयेत्** इस प्रकार अन्वय समझ कर 'अभिनव-भारती' कार 'प्रतिद्वार' का अर्थ अवान्तर-द्वार करते हैं। **प्रतिद्वारेण सह वर्तते इति सप्रतिद्वारम्** इस प्रकार समास करने पर यह कोण का विशेषण होगा। यहां पर **कोण** का तात्पर्य **त्रिकोण, षट्कोण, चतुष्कोण** आदि आकृतियां यह होना चाहिए। **'द्वारविद्धम्'** का निर्वचन इस प्रकार होगा–**द्वारेण विद्धं परस्परसंमुखीभूतमध्यम्। वा** विकल्पवाचक है। **नागदन्त** का तात्पर्य हाथीदांत की बनी उन खूंटियों से हैं, जिनका आकार हाथी के मुख का होता है और जिनका उपयोग काष्ठस्तम्भों के ऊपर निर्मित घोंसलों पर काष्ठ-पुत्तलिकाओं को लटकाने के लिए अथवा उनके ऊपर बैठाने के लिए किया जाता है।

द्विर्भूमिः–नाट्यमण्डप दो मंजिल का होना चाहिए। कुछ लोग इन दो मंजिलों के रङ्गपीठ के धरातल से रङ्गशीर्ष की ऊंचाई की दृष्टि से एक दूसरे के ऊपर मानते हैं। अन्य-मतानुसार दोनों ओर के बरामदे (मत्तवारणी) जितने बाहर निकले हुए हों, उनके ऊपर दूसरी दीवाल का निर्माण कर दूसरी मंजिल देवप्रासाद की अट्टालिका जैसी होनी चाहिए। तृतीय मत है कि एक नाट्यमण्डप के ऊपर दूसरा नाट्यमण्डप हो। चतुर्थ मत है कि **शैलगुहाकारोऽद्विर्भूमिः** इस प्रकार अवग्रह की कल्पना कर नाट्यमण्डप दो मंजिला का नहीं, एक ही मंजिल होना चाहिए। अभिनवगुप्तपादाचार्य के साहित्यगुरु भट्टतौत के अनुसार **'द्विर्भूमिः'** को **'द्विद्विर्भूमिः'** पढ़ना चाहिए। यह **'वीप्सागर्भ'** पाठ है। तदनुसार रङ्गपीठ (रंगमंच) के निकट से लेकर द्वार तक विभिन्न

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

धरातलों का निर्माण किया जाना चाहिए, जो एक दूसरे से ऊंचे हों और जिससे सामाजिक दर्शक एक दूसरे के सामने न आ सकें और वे नाट्य-प्रयोग सुकरता से देख सकें। इस प्रकार के निर्माण से नाट्यमण्डप पर्वत की गुफा जैसा होगा और उसमें ध्वनि गूंजेगी। खिड़कियों या झरोखों में ऐसी जालियां लगानी चाहिए, जिससे उसमें धीरे-धीरे पवन प्रवेश करे।

कुतपस्य—ऐसा नाट्यमण्डप बनाना चाहिए, जिससे उसमें 'कुतप' का गम्भीर स्वर गूंजे। जैसा कि नाट्यशास्त्र के वाद्याध्याय नामक तैंतीसवें अध्याय में नाट्याचार्य द्वारा पूर्वाभिमुख होकर नेपथ्यगृह के दोनों दरवाजों के बीच कुतपविन्यास का विधान प्रतिपादित है, जिसमें गायक-गायिका और शहनाई-वादक, वंशीवादक तथा मृदंगवादक, पणव, दर्दुर आदि ताल वाद्यवादकों का समूह हो। इसी को ध्यान में रखकर 'अभिनवभारती'कार ने 'कुतप' के त्रिविध अर्थों में प्रथम अर्थ 'संफेटक-गायक-वादक समूह' किया है। इसमें 'संफेटक' का अर्थ स्पष्ट नहीं है। संभवतः उसका अर्थ हाथ से ताल देनेवाला होना चाहिए। 'कुः नाट्यभूमिः' तां तपति उज्ज्वलयति इति कुतुपः' इस निर्वचन के अनुसार वह गायक-वादक समूह रंगभूमि की शोभा बढ़ाता है। 'कुतं शब्दं पाति (रक्षति) इति कुतपः' इस निर्वचन के अनुसार वह वहां ध्वनित शब्द को गम्भीरता प्रदान करता है, क्योंकि वह उतने स्थान में ही में गूंजता है, बाहर प्रतिध्वनित नहीं होता।

भित्तिलेपः—कुछ समय पूर्व दीवारों का पलिस्तर बरी और चूना से किया जाता था। आज वह स्थान सीमेंट और बालू ने ले लिया है। 'अभिनवभारती' के अनुसार शंख-सीप और बालू का लेप उसपर किया जाना चाहिए, जिससे दीवाल समतल और परिमृष्ट, चिकनी हो।

लताबन्धाश्च—यहां 'च'कार समुच्चयवाचक न होकर विकल्पवाचक है। या तो उन दीवालों पर स्त्री-पुरुष चित्रित हों या लताबन्ध। 'लताबन्ध' का आशय यह है कि उस पर वृक्ष-लता आदि विविध चित्रण हो। अथवा उन स्त्री-पुरुष-मिथुनों का चित्रण हों, जो 'लतावेष्टितक' वृक्षाधिरूढक आदि वात्स्यायनप्रोक्त कामसूत्र वर्णित आलिंगनों में आबद्ध हो।

आत्मभोगजं चरितम्—उन दीवालों पर ऐसा चरित्र-चित्रांकन होना चाहिए, जो आत्मा को आह्लादित करे।

इस प्रकार आयताकार नाट्यमण्डप की रचनाविधि निरूपित की गयी है।।७९-८५।।

पुनरेव[1] हि वक्ष्यामि चतुरस्रस्य लक्षणम्।
समन्ततश्च[2] कर्तव्या हस्ता द्वात्रिंशदेव तु।।८६।।
शुभभूमिर्विभागस्यो नाट्यज्ञैर्नाट्यमण्डपः।
यो विधिः पूर्वमुक्तस्तु लक्षणं मङ्गलानि[3] च।।८७।।

१. अतः परं।
२. तु।
३. मण्डलानि।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

विकृष्टे तान्यशेषाणि चतुरस्त्रेऽपि कारयेत्[१] ।
चतुरस्त्रं समं कृत्वा सूत्रेण प्रविभज्य च ।।८८।।
बाह्यतः सर्वतः कार्या भित्तिः श्लिष्टेष्टका दृढा ।
तत्राऽभ्यन्तरतः कार्या रङ्गपीठोपरि[२] स्थिताः ।।८९।।
दश प्रयोक्तृभिः स्तम्भाः शक्ता[३] मण्डपधारणे ।
स्तम्भानां बाह्यतश्चापि[४] सोपानाकृति पीठकम् ।।९०।।
इष्टकादारुभिः कार्यं प्रेक्षकाणां निवेशनम् ।
हस्तप्रमाणैरुत्सेधैर्भूमिभागसमुत्थितैः ।।९१।।
रङ्गपीठावलोक्यं तु[५] कुर्यादासनजं[६] विधिम् ।
षडन्यानन्तरे[७] चैव पुनः स्तम्भान् यथादिशम् ।।९२।।
विधिना स्था[८]पयेत् तज्ज्ञो[९] दृढान् मण्डपधारणे ।
अष्टौ स्तम्भान् पुनश्चैव तेषामुपरि कल्पयेत्[१०] ।।९३।।
स्थाप्यं चैव[११] ततः पीठमष्टहस्तप्रमाणतः ।
विद्धास्यमष्टहस्तं च पीठं तेषु ततो न्यसेत् ।।९४।।

अन्वयः–हि पुनरेव चतुरस्त्रस्य लक्षणं वक्ष्यामि। समन्ततः च द्वात्रिंशदेव हस्ता शुभभूमिः कार्या। नाट्यज्ञैः (एवं) विभागस्थो नाट्यमण्डपः (कर्तव्यः)। पूर्वं यः विधिः तु उक्तः, (यत्) लक्षणं (यानि) मङ्गलानि (उक्तानि), तानि अशेषतः चतुरस्त्रेऽपि कारयेत्। चतुरस्त्रं समं कृत्वा सूत्रेण च प्रविभज्य वाह्यतः सर्वतः श्लिष्टेष्टका दृढा भित्तिः कार्या। तत्र प्रयोक्तृभिः अभ्यन्तरतः रङ्गपीठोपरि स्थिताः मण्डपधारणे शक्ताः दश स्तम्भाः कार्याः। स्तम्भानां च बाह्यतः अपि इष्टकादारुभिः प्रेक्षकाणां निवेशनं सोपानाकृति पीठकं कार्यम्। भूमिभागसमुत्थितैः हस्तप्रमाणकैः उत्सेधैः रङ्गपीठावलोक्यं तु आसनजं विधिं कुर्यात्। पुनः चैव तज्ज्ञः अन्तरे मण्डपधारणे दृढान् षट् अन्यान् स्तम्भान् यथादिशं स्थापयेत्। पुनश्चैव तेषाम् उपरि अष्टौ स्तम्भान् कल्पयेत्। ततश्चैव अष्टहस्तप्रमाणतः पीठं स्थाप्यम्। ततः तेषु च विद्धास्यम् अष्टहस्तं पीठं न्यसेत्।।८६-९४।।

अभिनव-भारती

यद्यपि समचतुरस्त्रोऽत एव शक्य ऊहितुं तथापि विस्पष्टार्थं वक्ष्यामीत्याशयेन पुनःशब्देनोपक्रमते-पुनरेवेति। ननु विकृष्टे स्तम्भविभागरङ्गयोजनादि नोक्तम्, तत् कथं प्रतिपत्तव्यमित्याशङ्कायामावृत्त्याऽनेनैवोत्तरम्–चतुरस्त्र-

१. चतुरस्त्रस्य तान्येव कारयेन्नाट्यवेश्मनः।
२. रङ्गपीठे यथादिशम्।
३. शस्ता।
४. स्थाप्यम्।
५. च।
६. आसनिकम्।
७. सुन्दराम् दद्यात्।
८. धारयेत्।
९. प्राज्ञो।
१०. कारयेत्।
११. संस्थाप्यं च।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

सम्बन्धि यल्लक्षणं तत् पुनर्यस्माद् वक्ष्यामो यदस्य विकृष्टस्य सम्बन्धित्वेन तस्मान्नाऽपूर्णं विकृष्टलक्षणम्। तथा यदस्य लक्षणमुक्तम्, तच्चतुरस्रेऽपि सञ्चारणीयमिति पुनः शब्देन दर्शयति। तेनाऽतिदेशा(शम) नागतापेक्षणाख्यं तत्र युनक्ति। चतुरस्रमाह-समन्तत इति। सर्वेष्वन्तेषु चतसृष्वपि दिक्ष्वित्यर्थः। प्रविभज्य चेति। पूर्ववदेवेत्यर्थः। यदि बाह्यतो भित्तिरभ्यन्तरे किमित्याह-तत्राऽभ्यन्तरत इति। अष्टभिर्भागैः सर्वतः क्षेत्रं विभजेत्, येन चतुरङ्गफलकवच्च-तुष्षष्टिकोष्ठं भवति। तत्र मध्यमकोष्ठकचतुष्के रङ्गपीठं सर्वतोऽष्टहस्तम्। तस्य पश्चिमे भागे प्राक्पश्चिमं द्वादशहस्तं दक्षिणोत्तरतो द्वात्रिंशत्करं तत् क्षेत्रमवशिष्यते। (अत्र यद् रङ्गपीठेन स्वीकृतं तद्धि हस्ताष्टकमेव।) यदवशिष्टं क्षेत्रं तन्मध्याद् रङ्गपीठनिकटगतं प्राक्पश्चिमतश्चतुर्हस्तं विस्तारेण द्वात्रिंशद्धस्तं क्षेत्रांशाद् विभज्य तावत्प्रमाणमेव पश्चिमभागेऽपि ष(ड्दारु)कसंस्थानं रङ्गशिरः कुर्यात्। ततोऽपि पश्चिमे तावदेव नेपथ्यग्रहणम् (गृहम्)। एवं स्थिते रङ्गपीठं लक्षयित्वा दश स्तम्भाः षड्दारुकस्तम्भव्यतिरिक्ता देयाः। तत्र कोणचतुष्टये तावच्चत्वारः। तत्राऽऽग्नेयस्तम्भाच्चतुर्हस्तान्तरो दक्षिणदिश्येकः स्तम्भः। तथैव नैर्ऋतस्तम्भाद् द्वितीयः। एवमुदीच्यामपि स्तम्भद्वयम्। पूर्वभागे ऐशानाग्निगतात् स्तम्भद्वयाच्चतुर्हस्तान्तरं स्तम्भद्वयमिति षट्। कोणगाश्चत्वार इति ये दश त एव। बहिः सामाजिकासनानि सर्वेभ्यो वा बहिः। अतिसामीप्ये दृष्टिविघातात्। अत एवाऽऽह रङ्गपीठावलोकने साधुभूतमिति। अनेन द्विर्भूमित्वमेवानुसंहितम्।

अन्तरे स्तम्भविधिमाह–षडन्यानिति। रङ्गपीठस्य दक्षिणतो निवेशितस्तम्भ-द्वयाच्चतुर्हस्तान्तरौ अन्योन्यमष्टहस्तान्तरौ द्वौ। तत आग्नेयस्तम्भसम्मुखो योऽन्यस्तु पूर्वः स्तम्भः ततश्चतुर्हस्तान्तरं दक्षिणस्तम्भं कुर्यादिति पूर्वन्यस्तानां दक्षिण-स्तम्भानां दक्षिणभित्तेश्चाऽन्तराले स्तम्भत्रयम्। एवमुत्तरस्यामपि।

तेषामुपरीति। अधिकानष्टौ दद्यात्। तत्र दक्षिणभितेरुदग्भागे चर्तुहस्तान्तरं पूर्वस्थापितस्तम्भाद् भित्तेश्चैकं स्तम्भं दद्यात् पूर्वम्। एवमुत्तरभित्तेर्दक्षिण-दिग्भागे। ततः पूर्वभित्तेश्चतुर्हस्तान्तरौ रङ्गभागद्वयानुसारेण द्वौ (द्वौ द्वौ) ततोऽपि चतुर्हस्तान्तरौ द्वावित्यष्टौ।

विद्धमास्यं मुखं यस्य तत् पद्मादिविरचितं मुखं स्तम्भेष्वष्टहस्तं पीठं निक्षिपेत्। विद्धास्यस्योपरि हस्तप्रमाणधारिणीनां तुलानां धारकाः आश्रया स्तम्भा इति चतुरस्रे स्तम्भविधिः।

तमेव विकृष्टे त्रिकोणेषु स्वबुद्ध्या योजयेदिति श्रीशंकुकाद्याः। अन्ये तु–अष्टौ स्तम्भान् पुनश्च इति नेपथ्यगृहविषयानेतानाहुः।

वार्तिककृत् तु–

अन्तर्नेपथ्यगृहं स्तम्भौ द्वौ पीठकाश्च चत्वारः।
दिक्ष्वन्ये चत्वारो दशैवमुक्ता भवन्त्येते ।।
भित्तेः स्तम्भानां च स्यादन्तरमष्टहस्तमेवाऽन्ते। इति।
दत्तोऽद्यवाताथः, सोऽथा नाना भवेदुक्तः(?)।
चत्वारः पीठगताः पश्चादग्रे च याविह द्वौ द्वौ ।।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

षट् सान्तरास्तथाऽन्ये कार्या इतिशात्र(तात्पर्यम्) ।
तेषामष्टावन्येऽप्युपरि निवेश्या य उद्दिष्टाः ।
तैरुत्क्षिप्तैरिह तत्ते स्यादालोकः समस्तरङ्गस्य ।।
सोपानाकृति पीठकमत्र विधेयं समन्ततो रङ्गे ।
येनाऽऽलोकनसुविधा येऽप्युपरिगतेषु काष्ठेषु ।।इनि।।

अन्येऽपि चैवविधा बहवः प्रवादा ग्रन्थविस्तरभयान्न लिखिताः। अयं चन्द्रसोदर इत्युपाध्यायाः। इह प्रेक्षामण्डपस्य त्रिधा कल्पना कृता- अधोभूमिः, रङ्गपीठं रङ्ग इति। तेषु चाऽयं स्तम्भविन्यासविधिविच्छेद उक्तः।

तथा हि-अधोभूमौ स्तम्भानाह-तत्राभ्यन्तरत इति। विस्तारे द्वादशहस्तायाममेवं च चतुर्हस्तान्तरा दातव्याः। द्वौ स्तम्भौ भित्तिद्वयापेक्षया द्वादशहस्तान्तरावन्योन्यापेक्षया चाऽष्टहस्तान्तरौ। अन्योन्यं तयोरन्तरं तथा कार्यं येन द्वारविद्धता न भवति। इत्येवं पञ्चतुलासु दश।

एतत्स्तम्भदशकाव्यतिरिक्तायां भूमावासनविधिरित्याह-स्तम्भानां बाह्यतश्चापीत्यादि। पूर्ववद् व्याख्येयम्। अथ रङ्गपीठे स्तम्भन्यासमाह-षडन्यानित्यादि। उपरि रङ्गपीठमुखोपलक्षितस्य नेपथ्यगृहस्य वारुणकोण इत्युक्तं भवति। [विकृष्टे तान्यशेषाणि' (२।८८) इत्यत्र] सर्वग्रहणादन्यूनाऽनधिकत्वमत्र दर्शयन् विकृष्टे स्तम्भानामाधिक्यमभ्युपजानीते।।८६-९४।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ—अब मैं चतुरस्र (वर्गाकार) नाट्यमण्डप का लक्षण कह रहा हूँ। नाट्यशास्त्रज्ञों को यह मण्डप चारों ओर से बत्तीस हाथोंवाला बनाना चाहिए और उसे शुभ (मङ्गलमय, पवित्र) भूमिखण्ड पर बनाना चाहिए। विकृष्ट (दीर्घाकार) नाट्यमण्डप के निर्माणविधि के अवसर पर जो निर्माणविधि एवं माङ्गलिक कर्तव्य-कृत्य विवेचित किए गये हैं, उन सम्पूर्ण शुभ कृत्यों का सम्पादन चतुरस्र (वर्गाकार) नाट्यमण्डप का निर्माण करते समय भी करना चाहिए। प्रथम चतुरस्र(वर्गाकार) भूखंड को समतल करना चाहिए और पश्चात् उसे मान-सूत्र से नापना चाहिए। पश्चात् उसके बाहर की ओर चारों ओर से सटी हुई और मजबूत ईंटों की दीवाल बनानी चाहिए। प्रयोगकर्ता उसमें भीतर की ओर रङ्गपीठ के ऊपर नाट्य-मण्डप को स्थिर करने योग्य सक्षम दस खम्भों को गाड़े। खम्भों के बाहर की ओर सीढ़ियों के आकार के पीठक (दर्शक-दीर्घा) का निर्माण करे। वह पीठक (गैलरी) ईंटों और लकड़ी के पटरियों से बनानी चाहिए, जिससे दर्शक उस पर बैठ सकें। वह गैलरी धरातल से एक हाथ ऊंची उठी हुई होनी चाहिए, जिससे रङ्गपीठ को देखा जा सके।

पुनश्च नाट्यशास्त्रवेत्ता उस मण्डप को धारण करने में समर्थ छः अन्य स्तम्भों को उस उस दिशा में विधानपूर्वक स्थापित करे। और पुनश्च उनके ऊपर आठ खम्भों को गाड़ दे। उन खम्भों पर आठ हाथों के प्रमाण से आठ हाथों के 'विद्धास्य-पीठ' का निर्माण करे।।८६-९४।।

व्याख्या—विकृष्ट (आयताकार) नाट्यमण्डप का लक्षण जान लेने पर समान रूप से चतुरस्र नाट्यमण्डप की कल्पना की जा सकती है, तथापि उसका शब्दशः उपक्रम उसको अत्यन्त स्पष्ट करने के लिए किया गया है—पुनरेव हि वक्ष्यामि इत्यादि। मुख्य निष्कर्ष यह है कि चतुरस्र नाट्यमण्डप बत्तीस हाथों का होना चाहिए। अन्य

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

विधान विकृष्ट-मण्डप के समान ही है। साथ ही जो प्रतिपादन 'विकृष्ट' नाट्यमण्डप के विवेचन में नहीं किया गया है एवं जो चतुरस्र मण्डप हैं, वह विधान विकृष्ट मण्डप में भी चतुरस्र-मण्डप के समान ही कर्तव्य है। पुनरेव का यही तात्पर्य है। इससे यह व्यंजित होता है, कि न तो विकृष्ट नाट्यमण्डप का लक्षण अपूर्ण है और न 'चतुरस्र' का। 'चतुरस्र' (वर्गाकार) नाट्यमण्डप चारों दिशाओं में बत्तीस हस्तप्रमाण होना चाहिए, 'समन्ततः' का यही अर्थ है।

सूत्रेण प्रविभज्य च—पूर्व में कहा गया है कि ज्येष्ठ, मध्यम और अवर नाट्यमण्डपों में अवर नाट्यमण्डप बत्तीस हस्तप्रमाण होता है—

कनीयस्तु तथा वेश्म हस्ता द्वांत्रिशदिष्यते।(२।१०)

वह सामान्य जनता के चरित्र के मंचन के उपयुक्त प्रेक्षागृह होता है—

शेषाणां प्रकृतीनां तु कनीयः संविधीयते।(२।११)

प्रथम भूमिशोधन करना चाहिए, अनन्तर कार्पास आदि अन्यतम सूत्र द्वारा उसका मानचित्र जमीन पर बनाना चाहिए। जिस प्रकार आयताकार (विकृष्ट) नाट्यमण्डप में विधान वर्णित है, तदनुरूप उसका सम्पादन करना चाहिए। (द्र.२।२४-३१)

तत्राभ्यन्तरतः कार्याः ३२×३२ वर्गाकार भूमि में बाहर ईंटों की मजबूत दीवाल खड़ी करने के बाद भीतर की ओर खम्भों को गाड़ना चाहिए। इसके लिए सम्पूर्ण भूखण्ड को इस प्रकार चारों दिशाओं से आठ भागों में विभाचित करना चाहिए, जिससे वह क्षेत्र चौंसठ खानों में विभक्त हो। मध्य में जो चार कोष्ठकों का क्षेत्र हो, उसमें चारों दिशाओं में आठ हाथ प्रमाण की दूरी का रङ्गपीठ बनाना चाहिए। फलतः पूर्व और पश्चिम की ओर १२-१२ हाथों की दूरी का एवं दक्षिण और उत्तर की ओर ३२-३२ हाथों की दूरी का क्षेत्रफल अवशिष्ट रहेगा और मध्य में रंगपीठ (रंगमंच) के लिए स्वीकृत क्षेत्रफल ८×८ हस्तप्रमाण बचेगा। मध्य से उस अवशिष्ट क्षेत्र के मध्य में इस तरह नापना चाहिए, जो पूर्व और पश्चिम में (मध्य में) चार-चार हाथ हो और विस्तार में (लम्बाई-चौड़ाई) में ३२-३२ हाथ हो। उस रंगपीठ के पश्चिम भाग में चार हाथों वाला षड्दारुक संस्थान रंगशीर्ष और उसके भी पीछे नेपथ्यगृह बनाना चाहिए।

दश प्रयोक्तृभिः स्तम्भाः—षड्दारुकसंस्थान रंगशीर्ष में जो छः (६) काष्ठस्तम्भ हैं, उनसे ये दस स्तम्भ भिन्न हैं। उनमें चार स्तम्भ चार कोण-दिशाओं में गाड़ने चाहिए। उसके बाद आग्नेय-कोण के चार हाथ की दूरी पर दक्षिण दिशा में एक स्तम्भ, नैर्ऋत्य-कोण से चार हाथ की दूरी पर पश्चिम दिशा में एक स्तम्भ, इसी प्रकार उत्तर दिशा में दो स्तम्भ बनाने चाहिए। पूर्व की ओर ईशान्य-कोण-स्तम्भ तथा आग्नेय-कोण स्तम्भ के चार-चार हाथ के अन्तराल पर दो स्तम्भ और गाड़ने चाहिए। इस प्रकार कोण-दिशाओं के चार तथा उक्त छः स्तम्भों को मिलाकर दस स्तम्भ गाड़ने चाहिए।

स्तम्भानां बाह्यतश्चापि—इन दसों स्तम्भों के बाद दर्शकों को बैठने के लिए सोपान के आकार की दर्शक दीर्घा (गैलरी) होनी चाहिए, यदि वह अत्यन्त पास हो तो देखने में असुविधा होती है। **रङ्गपीठावलोक्यम्**—वह दर्शक दीर्घा इतने अन्तराल पर होनी चाहिए, जिससे वहां से सम्पूर्ण रङ्गपीठ दृष्टिगोचर हो सके। 'विकृष्ट

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

(दीर्घाकार) नाट्यमण्डप के विधान में 'द्विर्भूमि' अनेक धरातल के नाट्यमण्डप निर्माण का विधान है, यहां **सोपानाकृति नाट्यमण्डप** के निर्माण का विधान है। दोनों का लक्ष्य एक ही है।

षडन्यानन्तरे चैव–रङ्गपीठ के दक्षिण की ओर आग्नेय और नैर्ॠत्य-कोण में स्थापित दो स्तम्भों के अन्तराल में परस्पर चार हाथ की दूरी पर आठ हाथ के अन्तराल में और दो स्तम्भ होने चाहिए। आग्नेय-कोण-स्तम्भ के अन्तराल पर जो पूर्व-स्थापित स्तम्भ होगा, उसके चार हाथ की समानान्तर दूरी पर दक्षिण-स्तम्भ स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार पूर्व-स्थापित दक्षिण-स्तम्भों और दाहिनी ओर दीवाल के वीच में तीन स्तम्भ गाड़ने चाहिए। इसी प्रकार उत्तर दिशा में भी तीन स्तम्भ स्थापित करने चाहिए। ये छः स्तम्भ इतने मजबूत होने चाहिए, जिनके आधार पर नाट्यमण्डप मजबूती से टिका हो।

अष्टौ स्तम्भान् पुनश्चैव–तत्पश्चात् उसके बाद भी आठ स्तम्भों को स्थापित करना चाहिए। उनमें दक्षिण दीवार के उत्तरी ओर पूर्वस्थापित स्तम्भ और दीवार से चार हाथ की दूरी पर एक खम्भा गाड़ना चाहिए। उसी प्रकार उत्तरी दीवार के दक्षिण की ओर भी चार हाथ की दूरी पर एक खम्भा गाड़ना चाहिए। उसी प्रकार उत्तरी दीवार के दक्षिण की ओर भी चार हाथ की दूरी पर एक खम्भा गाड़ना चाहिए। अनन्तर पूर्वी दीवार से चार हाथ की दूरी पर रंगमंच को दो भागों में विभक्त कर तदनुसार दो-दो खम्भों को स्थापित करना चाहिए।

विद्धास्यमष्टहस्तं तु–उन आठ स्तम्भों के ऊपर अष्टहस्तप्रमाण **विद्धास्य**-पीठ स्थापित करना चाहिए। **विद्धं पद्मादि-विरचितम् आस्यं मुखं यस्य तत् पीठं विद्धास्यम्** इस निर्वचन के अनुसार वह पीठ कमल इत्यादि के आकार के मुखवाला होना चाहिए। अर्थात् मध्य में अष्टहस्तप्रमाण चतुरस्र (वर्गाकार) जो रंगपीठ होगा, वह इन्हीं आठ स्तम्भों के ऊपर होना चाहिए। वह **विद्धास्य पीठ** होना चाहिए अर्थात् उसे चारों ओर से बांध देना चाहिए, तथा उसके अग्रभाग की ओर कमल इत्यादि का अंकन होना चाहिए। उन स्तम्भों पर आठ-आठ हाथ की धरनों को रखा जाना चाहिए। यही चतुरस्र नाट्यमण्डप के स्तम्भ निर्माण का विधान है।

स्तम्भ-निर्माण-विधान के विषय में **आचार्य शंकुक** इत्यादि शास्त्रकारों का मत है कि दीर्घाकार अथवा त्रिकोणाकार नाट्यमण्डप का निर्माण करते समय इन स्तम्भों की योजना अपनी विवेकाश्रित बुद्धि के अनुसार करनी चाहिए। अन्य मत के अनुसार नेपथ्यगृह के निर्माण के विषयमें **अष्टौस्तम्भान् पुनश्चैव** इत्यादि कारिकाभाग हैं। तदनुसार इन आठ खम्भों के आधार पर नेपथ्यगृह बनाना चाहिए। यद्यपि **नेपथ्यगृहकं चैव** इत्यादि कारिका-भाग में नेपथ्य-विधान वर्णित है, तथापि

दश प्रयोक्तृभिः स्तम्भाः शक्ता मण्डपधारणे

इस कारिकार्द्ध की व्याख्या के अवसर पर **वार्तिककार** कहते हैं कि 'नेपथ्यगृह के भीतर दो स्तम्भ, चार पीठक (पीठस्तम्भ) और चारों दिशाओं में चार इस प्रकार दस स्तम्भ होने चाहिए। दीवाल और खम्भों के बीच में अष्टहस्तप्रमाण रंगपीठ होना चाहिए। उसमें विविध प्रकार की वातायन-रचना संभव है। रंगपीठ चार स्तम्भों पर आद्धृत होना चाहिए। उसके अग्रिम और पश्चाद्वर्ती भागों में दो-दो और उसके अन्तराल में छः स्तम्भों की स्थापना करनी चाहिए, यह निष्कर्ष है। उनके बाद आठ

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

अन्य स्तम्भों की स्थापना करनी चाहिए, उन स्तम्भों के चारों ओर सोपान के आकार की दर्शक-दीर्घा बनानी चाहिए। इसका फल यह होगा कि उन स्तम्भों के बीच से आनेवाले प्रकाश से समस्त रंगशाला आलोकित होगी। उन ईंटों और काष्ठफलकों से निर्मित दर्शक दीर्घा से दर्शकों को नाट्यप्रयोग को देखने में प्रचुर सुविधा होगी। इस प्रकार अनेक प्रकार के मत हैं।

आचार्य अभिनवगुप्तपाद के साहित्योपाध्याय भट्टतौत के मतानुसार यह नाट्यमण्डप चन्द्राकृति (सम्भवतः अर्द्धचन्द्राकृति) होना चाहिए। सम्पूर्ण नाट्यमण्डप को तीन भागों में विभाजित किया गया है–अधोभूमि, रङ्गपीठ और रङ्ग। उनमें स्तम्भों का निर्माण किस प्रकार करना चाहिए, यह इसमें चित्रित है। **तत्राभ्यान्तरः कार्याः** इत्यादि कारिका द्वारा **अधोभूमि** के स्तम्भों का विधान है। वे स्तम्भ लम्बाई में बारह हाथों के अन्तराल में चार-चार हाथ के अन्तर पर स्थापित करने चाहिए। उनमें दो खम्भे दो दीवालों की अपेक्षा बारह हाथ की दूरी पर और परस्पर चार हाथ की दूरी पर कायम करने चाहिए। उनमें परस्पर अन्तर इतना होना चाहिए, जिससे वे द्वारविद्ध न हों अर्थात् एक दूसरे के सम्मुख न हों। इस प्रकार दस स्तम्भ स्थापित करने चाहिए, जिस पर पांच धरनों को रखना चाहिए।

इन दस स्तम्भों की अतिरिक्त भूमि पर दर्शकों को बैठने के लिए गैलरी (दर्शकदीर्घा) बनानी चाहिए। **स्तम्भानां बाह्यतश्चापि** (२।९०), **षडन्यानन्तरे चैव** इत्यादि द्वारा रङ्गपीठ का स्तम्भविधान विवेचित है।

अष्टौ स्तम्भम् पुनश्चैव तेषामुपरि कल्पयेत्

तात्पर्य यह है कि वे आठ स्तम्भ नेपथ्यगृह के वारुण (पश्चिम) कोण में हों और रङ्गपीठ के अग्रभाग से दृष्टिगोचर हों। रङ्गपीठ के पृष्ठभाग में जो रङ्गशीर्ष हो, उसकी ओर दूसरा द्वार होना चाहिए। इस प्रकार रङ्गशीर्ष से नेपथ्यगृह में प्रवेश करने के लिए दो दरवाजे बनाने चाहिए। एक द्वार सर्वसाधारण के प्रवेशार्थ होना चाहिए। इस प्रकार मतान्तर के अनुसार नाट्यशाला के तीन द्वार होने चाहिए। विकृष्ट (दीर्घाकार) नाट्यमण्डप में इससे अधिक स्तम्भ हो सकते हैं, कम नहीं।।८६-९४।।

तत्र स्तम्भाः प्रदातव्यास्तज्ज्ञैर्मण्डपधारणे ।
धारणीधार[1]णास्ते च शालस्त्रीभिरलङ्कृताः ।।९५।।
नेपथ्य[2]गृहकं चैव ततः कार्यं प्रयत्नतः[3] ।
द्वारं चैकं भवेत् तत्र रङ्गपीठप्रवेशनम्[4] ।।९६।।
जनप्रवेशनं [5]चान्यदाभिमुख्येन कारयेत् ।
रङ्गस्याऽभिमुखं कार्यं द्वितीयं द्वारमेव तु ।।९७।।
अष्टहस्तं तु कर्तव्यं रङ्गपीठं प्रमाणतः ।
चतुरस्रं समतलं वेदिकासमलङ्कृतम् ।।९८।।
पूर्वप्रमाणनिर्दिष्टा कर्तव्या मत्तवारणी ।
चतुःस्तम्भसमायुक्ता वेदिकायास्तु पार्श्वतः ।।९९।।

---

१. धारिताः।
२. नैपथ्य।
३. प्रयोक्तृभिः।
४. तस्य रङ्गपीठप्रवेशने।
५. चैवमा।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

समुन्नतं समं चैव रङ्गशीर्षं[1] तु कारयेत्।
विकृष्टे तू[2]न्नतं कार्यं चतुरस्रे समं तथा।।१००।।
एवमेतेन विधिना चतुरस्रं गृहं भवेत्।

अन्वयः-तत्र तज्ज्ञैः मण्डपधारणे धारणी-धारणाः स्तम्भाः प्रदातव्याः। ते च शालस्त्रीभिः अलंकृताः (स्युः)। ततः चैव प्रयत्नतः नेपथ्यगृहकं कार्यम्। तत्र चैकं रङ्गपीठप्रवेशकं द्वारं भवेत्। अन्यत् च आभिमुख्येन जनप्रवेशकं द्वारं कारयेत्। द्वितीयं द्वारमेव तु रङ्गस्य अभिमुखं कार्यम्। प्रमाणतः अष्टहस्तं समतलं चतुरस्रं वेदिका- समलङ्कृतं रङ्गपीठं कर्तव्यम्। वेदिकायाः तु पार्श्वतः पूर्वप्रमाणनिर्दिष्टा चतुःस्तम्भ- समायुक्ता मत्तवारणी कर्तव्या। समुन्नतं समं चैव रङ्गशीर्षं तु कारयेत्। विकृष्टे तु उन्नतं तथा चतुरस्रे तु समं (रङ्गशीर्षं) कारयेत्। एवम् एतेन विधिना चतुरस्रं गृहं भवेत्।।९५-१०१।।

अभिनव-भारती

त्र्यस्ररङ्गपीठे तु प्रतिरङ्गमध्य इति। रङ्गोऽत्र तच्छिरः। ततः पीठस्य पृष्ठतः रङ्गं यावत् परितोऽभितः परि कर्मप्रवचनीयो वर्जग (न) द्योतकः। रङ्गपीठं वर्जयित्वा तदभ्यन्तरमण्डपस्य। तत्र द्वात्रिंशद्धस्तेषु रङ्गपीठे प्रतिकोणस्तम्भा इत्यष्टहस्तान्तराश्चत्वारः। तदनन्तरं स्तम्भद्वयमिति षडप्येतेऽष्टहस्तान्तरं ततो द्वादशहस्तायामं यदवशिष्यते तत्र चतुर्हस्तायामं द्वात्रिंशद्धस्तविस्तारं यद्रङ्गशिरस्तत्र द्वे तुले दातव्ये। प्रतितुलं चाऽष्टहस्ता (न्तरं स्तम्भचतुष्टयं) वर्जयित्वेत्यष्टौ भवन्ति। अत एव हि विद्धास्यमष्टहस्तं चतुर्हस्तान्तरालेऽपि तिरश्चीनं देयम्, येन तुलितं चित्रं भवति। एतदाऽऽह-अष्टौ स्तम्भानित्यादि। रङ्गपीठस्य यदुपरि शिरोरूपमित्यर्थः। तथा च विकृष्टमण्डपे रङ्गपीठापेक्षया रङ्गशिर उन्नतं वक्ष्यते। तत्र नियमादष्टस्तम्भा न्यस्यन्ते। अपि तु दृढा न्यसनीया इति दर्शयति-तत्र स्तम्भा इति। अथाऽवशिष्टेषु हस्तेषु विधिमाह नेपथ्यगृहकमिति। (द्वारं चैकमिति।) रङ्गपीठस्य यत् पृष्ठं रङ्गशिरस्तत्र द्वितीयमिति राश्यपेक्षयैकवचनम्। तेन द्वारद्वयमेव रङ्गशिरसि नेपथ्यगत-पात्रप्रवेशाय कर्तव्यम्। चकारात् अन्यत् जनप्रवेशनं द्वारम्। त्रीणि वा कार्याणि मतान्तरे इति संगृहीतं भवति। रङ्गपीठप्रवेशनमिति वचनेनेदमाह-कक्ष्याविभागेन तावत् द्वे द्वारे, तेन द्वारमिति जातावेकवचनम् एकशब्दश्च राश्यभिप्रायेण। राशिकरणे च निमित्तं पात्रप्रवेशोपायनम्। तथा च कक्ष्याध्याये वक्ष्यति-

ये नेपथ्यगृहद्वारे मया पूर्वं प्रकीर्तिते।
तयोर्भाण्डस्य　　विन्यासः।(ना.शा. १३-२) इति।

(जन) प्रवेशनं च तृतीयद्वारं नेपथ्यगृहस्य, येन भार्यामादाय नटपरिवारः प्रविशति। अन्यत् तु द्वारमाभिमुख्येन पूर्वस्यां दिशि कुर्यात्। द्वारवृत्त्या सामाजिकजनप्रवेशार्थम्। ननु किमपेक्षमाभिमु(ख्यम्? कक्ष्यापेक्षयैव पूर्वादिभिरित्युक्तम्। यद् वक्ष्यति च-

यतो मुखं भवेद् भाण्डद्वारं नेपथ्यकस्य तु।

---

१. रङ्गपीठं।
२. अपि।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

सा मन्तव्या तु दिक् पूर्वा नाट्ययोगे विपश्चिता ।।
(ना.शा. १३-११) इति।

एवं चतुर्द्वारं नाट्यगृहम्। अन्ये त्वाद्यद्वार (द्वयमि) वाऽऽद्येन हेतुनाऽन्यद्वारद्वयं पार्श्वस्थितं कुर्यादालोक-सिद्ध्यर्थमिति षड्द्वारं नाट्यगृहमाचक्षते। अथ रङ्गपीठ-रङ्गशिरसोर्वक्तव्यशेषं निरूपयति–अष्टहस्तत्विति। वेदिके शोभायुक्ते कार्ये। पूर्वप्रमाणम् अर्ध्यहस्तोत्सेधत्वम्। समुन्नतमिति रङ्गपीठापेक्षया। एतच्चेह प्रसङ्गात् सूचयन् विकृष्टे तेनैव प्रकारेण स्तम्भत्रय्यधिका कर्तव्या। अन्तरमप्यत्रैव दर्शितम्।।९५-१०१।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–वास्तुशिल्पियों द्वारा उस चतुरस्र (वर्गाकार) नाट्यमण्डप में उन स्तम्भों को स्थापित करना चाहिए, जिन पर धरनों का बोझ रखा जा सके उन स्तम्भों पर आकर्षक पुत्तलिकाओं को उत्कीर्ण अथवा अंकित करना चाहिए। पश्चात् उसमें प्रयत्नपूर्वक नेपथ्यकक्ष (प्रसाधनकक्ष अथवा मेकअप् रूम) बनाना चाहिए। उसमें रङ्गमंच में प्रवेश करने के लिए प्रवेश द्वार होने चाहिए। उस रंगमंच के सम्मुख प्रेक्षकों के प्रवेश के लिए दूसरा प्रवेश द्वार होना चाहिए। उस रङ्गपीठ को अष्टहस्तप्रमाण चतुरस्र (वर्गाकार) और समतल तथा ऊंची वेदिका पर होना चाहिए। रङ्गपीठ की वेदिका के दोनों ओर पूर्ववर्णित प्रमाण की मत्तवारणी का निर्माण करना चाहिए, जिनमें चार-चार खम्भे हों। वह रङ्गशीर्ष दो प्रकार का होना चाहिए–(१) कुछ उभरा हुआ और (२) समतल। (१) विकृष्ट (दीर्घाकार) नाट्यमण्डप का रङ्गशीर्ष उभरा हुआ और (२) चतुरस्र (वर्गाकार) नाट्यमण्डप का समतल। इसी विधि से चतुरस्र नाट्यमण्डप का निर्माण करना चाहिए।।९५-१०१।।

व्याख्या– भरतमुनि ने चतुरस्र (वर्गाकार) नाट्यमण्डप के अन्तर्गत स्तम्भस्थापन-विधि वर्णित की है। अभिनवगुप्तपादाचार्य के अनुसार त्र्यस्र नाट्यमण्डप की निर्माण-विधि इस प्रकार होगी–त्र्यस्र (त्रिभुजाकार) नाट्यमण्डप में तीन रंगशीर्ष होते हैं। उनमें प्रत्येक रङ्गशीर्ष में स्तम्भ स्थापित करने चाहिए। किन्तु रङ्गपीठ की पृष्ठभूमि से रङ्गशीर्ष तक उसके चारों ओर रङ्गपीठ में कोई स्तम्भ नहीं होना चाहिए। वे सभी स्तम्भ बत्तीस हाथ के अन्तराल पर होने चाहिए। अर्थात् प्रथम चार-चार हाथ के अन्तराल पर प्रत्येक कोने में एक-एक स्तम्भ स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार चार स्तम्भ स्थापित करने के पश्चात् दो और स्तम्भ कायम करने चाहिए। ये सभी छः स्तम्भ आठ हाथ के अन्तर पर स्थापित करने चाहिए। अनन्तर बारह हाथ लम्बी जो भूमि अवशिष्ट हो, उसमें चार हाथ चौड़े और बत्तीस हाथ लम्बे रङ्गशीर्ष (रंगमंच) पर दो धरनों को स्थापित करना चाहिए। प्रत्येक धरन पर चार हाथ के अन्तराल पर चार स्तम्भ छोड़ने पर आठ स्तम्भ बचते हैं। इस प्रकार वह त्र्यस्र (त्रिकोणाकार) 'विद्धास्य' नाट्यमण्डप बाहरी ओर कमल इत्यादि आकृतियों से अंकित, अष्टहस्तप्रमाण तथा चार हाथों के अन्तराल पर भी तिरछा होना चाहिए, जिससे उन तुलाओं(धरनों) के कारण उसकी शोभा कुछ विशिष्ट ही होगी। अष्टौ स्तम्भान् पुनश्चैव इत्यादि की त्र्यस्र नाट्यमण्डप के पक्ष में यह व्याख्या होगी।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

दीर्घाकार विकृष्ट नाट्यमण्डप में ये आठ स्तम्भ रंगपीठ के ऊपर जो रङ्गशीर्ष होगा, वहां स्थापित करने चाहिए। इस प्रकार विकृष्ट नाट्यमण्डप में चतुरस्र नाट्यमण्डप की अपेक्षा रङ्गशीर्ष उन्नत होगा, और चतुरस्र नाट्यमण्डप में समतल। जैसा कि कारिका का अंश है–**विकृष्टे तून्नतं कार्यं चतुरस्रे समं तथा** (२।१००)।

उसके स्तम्भ मजबूत होने चाहिए, जो धरनों का बोझ संभाल सकें (द्र. २।९५)।

द्वारं चैकम्–यह प्रयोग विशिष्ट अर्थ की अभिव्यंजना करता है। इसमें द्वार शब्द के साथ एकवचन का और **एकम्** इस संख्यावाचक सर्वनाम का प्रयोग है। जिसमें एकवचन की व्यंजना यह है कि एक द्वार रंगशीर्ष के सम्मुख और दूसरा उसके पृष्ठभाग में होना चाहिए। इस प्रकार यह एक वचन **राशि** (एक समूह) का द्योतक है। इसका निष्कर्ष यह है कि रंगशीर्ष में पात्रों के प्रवेश के लिए दो दरवाजे होने चाहिए और एक उसके पीछे जनसामान्य के प्रवेश के लिए होना चाहिए। अथवा अन्य मतानुसार रंगमंच में आगे की ओर ही तीन द्वार होने चाहिए। **रङ्गपीठप्रवेशनम्** इसमें एकवचन का प्रयोग जाति के अभिप्राय से है और **एकम्** यह एक संख्यावाचक प्रयोग राशि (समूह) के अभिप्राय से है। जैसा कि कक्ष्याध्याय में वर्णित है–

ये नेपथ्यगृहद्वारे मया पूर्वं प्रकीर्तिते।
तयोर्भाण्डस्य विन्यासः ।।(ना. शा. १३।२)

इसके अनुसार नेपथ्यगृह (प्रसाधनकक्ष) को दो कक्षाओं में विभक्त करना चाहिए और वाद्य-वृन्द की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सामान्य जन के प्रवेश के लिए नेपथ्यगृह का तृतीय द्वार होना चाहिए। जिससे नट परिवार सपत्नीक प्रवेश कर सकता हो। एक अन्य द्वार पूर्व दिशा में होना चाहिए, जिसमें प्रेक्षक प्रवेश करें। नेपथ्यगृह के आगे, जहां वाद्य-वृन्दवादक बैठते हैं, वह द्वार **भाण्डद्वार** कहलाता है। उसका मुख जिस ओर हो, उसे पूर्व दिशा समझना चाहिए। (द्र.ना.शा. १३।११)। इस प्रकार नाट्यमण्डप में चार द्वार होने चाहिए। कुछ लोगों का कथन है कि नाट्यमण्डप में छः द्वार होने चाहिए–दो पात्र-प्रवेश के लिए, दो द्वार वाद्य-वृन्दवादकों के लिए और दो द्वार प्रकाश-व्यवस्था के लिए।

वह आठ हाथवाले चतुरस्र (वर्गाकार) रङ्गपीठ दो वेदिकाओं से सुशोभित होना चाहिए। उस रंगपीठ के दोनों ओर निर्माणाधीन मत्तवारणी आधा हाथ (१२ अंगुल) उंचाई की होनी चाहिए। विकृष्ट नाट्यमण्डप का रंगशीर्ष रंगपीठ की अपेक्षा ऊंचा होना चाहिए।

चतुरस्र नाट्यमण्डप का वर्णन करते हुए प्रसङ्ग से त्र्यस्र रङ्गपीठ के विषय में सूचित किया गया है। विकृष्ट (दीर्घाकार) नाट्यमण्डप में तीन स्तम्भ अधिक स्थापित करने चाहिए। यही उसका अन्तर भी प्रतिपादित किया गया है।।९५-१०१।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि त्र्यस्रगेहस्य लक्षणम्[1] ।।१०१।।
त्र्यस्रं त्रिकोणं कर्तव्यं नाट्यवेश्म प्रयोक्तृभिः।
मध्ये त्रिकोणमेवाऽस्य रङ्गपीठं तु कारयेत् ।।१०२।।
द्वारं तेनैव[2] कोणेन कर्तव्यं तस्य [3]वेश्मनः।
द्वितीयं चैव कर्तव्यं रङ्गपीठस्य पृष्ठतः ।।१०३।।

१. त्र्यस्य मण्डपास्यापि संप्रवक्ष्यामि लक्षणम्।
२. एकेन।
३. तु प्रवेशने।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

विधिर्यश्चतुरस्रस्य भित्तिस्तम्भसमाश्रयः ।
स तु सर्वः प्रयोक्तव्यस्त्र्यस्रस्याऽपि प्रयोक्तृभिः ।।१०४।।
एवमेतेन विधिना कार्या नाट्यगृहा[1] बुधैः ।
पुनरेषां[2] प्रवक्ष्यामि पूजामेव[3] यथाविधि ।।१०५।।

।। इति भारतीये नाट्यशास्त्रे मण्डपविधानो नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

अन्वयः–अतः परं त्र्यस्रगेहस्य लक्षणं प्रवक्ष्यामि। अस्य मध्ये तु त्रिकोणमेव रङ्गपीठं कारयेत्। तेनैव कोणेन तस्य वेश्मनः द्वारं कर्तव्यम्। रङ्गपीठस्य पृष्ठतः द्वितीयं चैव द्वारं कर्तव्यम्। यः भित्ति-स्तम्भसमाश्रयः चतुरस्रस्य विधिः, प्रयोक्तृभिः सः सर्वः त्र्यस्रस्यापि विधिः प्रयोक्तव्यः। एवम् एतेन विधिना बुधैः नाट्यगृहाः कार्याः। पुनः एषां पूजां यथाविधि प्रवक्ष्यामि।।१०१-१०५।।

अभिनव-भारती

अथ त्र्यस्रस्याऽतिदेशद्वारेण लक्षणं कर्तुमुपक्रममाह–त्र्यस्रमिति। त्रिकोणमिति लक्षणम्। उभयानुग्रहाच्च विकृष्टचतुरस्रमानद्वयमेव भवति। मध्ये च त्रिकोणमेव रङ्गपीठम्। तथैव रङ्गशिरसः। नेपथ्यगृहं च तेनैव कोणेनेति वारुणीगतेन। द्वारं जनप्रवेशनम्, येन तस्मिन्नेव कोणे द्वारे कर्तव्ये। सङ्गतिं सूचयति–एवमेतेनेति। एतेन विधिना बहवो नाट्यमण्डपाः, न तु पूर्वोक्ताष्टादशभेदकलनयेत्यर्थः। बुधैरित्यूहापोहविद्भिः। पुनरिति। यद्यपि गदिताः सर्वे शुभदाः। पूजामिति। तथापि वक्ष्यामीति पुनश्शब्दार्थः। तत्र हि विधाने(नं) नोक्तम्। तदाह–यथाविधीति। एषामिति। मण्डपस्था देवताः अनेनोपचारादुक्ताः।।१०२-१०५।।

।। इति श्रीमहामाहेश्वराभिनवगुप्ताचार्यविरचितायामभिनवभारत्यां भारतीयनाट्यशास्त्रविवृतौ मण्डपाध्यायो द्वितीयः।।२।।

तात्पर्य-दीपिका

भावार्थ–अब मैं इसके पश्चात् त्र्यस्र (त्रिकोणाकार) नाट्यमण्डप का लक्षण कह रहा हूँ। इसके बीच में त्रिकोणाकृति रङ्गपीठ बनवाना चाहिए। उसी कोण के अनुरूप उसका प्रथम द्वार बनाना चाहिए। रङ्गपीठ के पृष्ठभाग (पीछे) की ओर दूसरा दरवाजा होना चाहिए। खम्भों का सहारा लेकर चतुरस्र नाट्यमण्डप के दीवालों को बनाने की विधि है, शिल्पियों को त्र्यस्र नाट्यमण्डप का निर्माण करते समय भी पूरा का पूरा उसी विधान का प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार शिल्पशास्त्रज्ञ लोग विकृष्ट (दीर्घाकार), चतुरस्र (चतुष्कोण या वर्गाकार) और त्र्यस्र (त्रिकोण या त्रिभुजाकार) नाट्यमण्डपों का निर्माण करें। अग्रिम अध्याय में इनकी पूजाविधि निरूपित है।।१०२-१०५।।

व्याख्या–त्र्यस्र नाट्यमण्डप का मुख्य लक्षण यही है कि वह त्रिकोणाकार होना चाहिए। उभय (विकृष्ट और चतुरस्र) नाट्यमण्डप के लक्षणों के अनुरोध से दीर्घाकार और वर्गाकार नाट्यमण्डपों के प्रमाण (नक्शे) ही मुख्य हैं। उनमें केवल अन्तर यह है कि बीच में सम्पूर्ण रङ्गपीठ और उसका शीर्षभाग त्रिकोणाकार होना

१. कार्यं नाट्यगृहं।
२. अत ऊर्ध्वं।
३. एषां।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

चाहिए। नेपथ्यगृह (प्रसाधनकक्ष या मेकअप् रूम) भी उसी कोण के अनुरूप होना चाहिए और वह पश्चिम-कोण में होना चाहिए। उसी कोण में दर्शकों के लिए दो प्रवेश द्वार बनवाने चाहिए। रङ्गपीठ के पीछे का प्रवेश-द्वार पात्रों को प्रवेश करने के लिए किया जाना चाहिए। इसमें नाट्यमण्डपों के अठारह प्रकार परिगणित हैं। उनका ऊहापोह करते हुए उसी विधि से उनसे भिन्न भी बहुत प्रकार के अन्य नाट्यमण्डपों का निर्माण किया जा सकता है। यद्यपि इस अध्याय में नाट्यमण्डपों की अधिष्ठात्री देवताओं की पूजाविधि की ओर भी संकेत किया गया है, तथापि अग्रिम अध्याय में उनका विस्तारपूर्वक उपचार-विधान वर्णित है।।१०१-१०५।।

।। इस प्रकार भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र के मण्डपविधान नामक द्वितीय अध्याय की तात्पर्य-दीपिका-व्याख्या यहीं सम्पन्न होती है।।२।।

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकप्रतीकम्	*पृष्ठम्*
अचलं चाप्यकंप्यं च (२/५५)	१०६
अणवोऽष्टौ रजः प्रोक्तं (२/१४)	९०
अणू रजश्च बालश्च (२/१३)	९०
अत् ऊर्ध्वं न कर्तव्यः (२/१८)	९३
अत्रेदानीमयं वेदो (१/५५)	४२
अथवा याः क्रियास्तत्र (२/२)	८३
अथापश्यत् सदो विघ्नैः (१/६८)	५०
अध्यर्धहस्तोत्सेधेन (२/६४)	१०८
अपूजयित्वा रंगं तु (१/१२२,१२३)	७९,८०
अभिमंत्र्य यथान्यायं (२/६१)	१०७
अर्धच्छिन्ने भवेत् सूत्रे (२/२९)	९९
अवृष्टिरुक्ता चलने (२/५६)	१०६
अशक्या पुरुषैः सा तु (१/४६)	३८
अष्टहस्तं तु कर्तव्यं (२/९८)	१२४
अष्टांगपदसंयुक्ता (१/५७)	४२
अष्टाधिकं शतं ज्येष्ठं (२/१०)	८८
अष्टौ स्तम्भान् पुनश्चैव (२/९३)	११९
अहीनांगैश्च वोढव्या (२/७१)	१११
अहो प्रहरणं दिव्यं (१/७२)	५१
आचार्येण सुयुक्तेन (२/४५)	१०४
आयसं तत्र दातव्यं (२/६६)	१०९
आज्ञापितो विदित्वाऽहं (१/२५)	३२
इष्टकादारुभिः कार्यं (२/९१)	११९
इह प्रेक्षागृहं दृष्ट्वा (२/७)	८६
इहादिर्नाट्ययोगस्य (२/३)	८४
ईश्वराणां विलासश्च (१/१११)	६८
उत्तमाधममध्यानां (१/११३)	६८
उत्थाय त्वरितं शक्रो (१/६९)	५०
उत्पाद्य नाट्यवेदं तु (१/१९)	२९
उत्सार्याणि त्वनिष्टानि (२/४४)	१०२
उत्सेधेन तयोस्तुल्यं (२/६५)	१०८

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्लोकप्रतीकम्	पृष्ठम्
ऊहप्रत्यूहसंयुक्तं (२/७५)	११३
ऋजुकं मण्डकं चैव (१/३१)	३३
एतद्रसेषु भावेषु (प्र.१/११४)	६८
एतस्मिन्नंतरे देवान् (१/१२०)	७९
एतस्मिन्नंतरे देवैः (१/९९)	६०
एवमस्त्वित्ति तानुक्त्वा (१/१३)	२१
एवमुक्त्वा तु भगवान् (१/१२७)	८२
एवमुत्थापयेत् तज्ज्ञो (२/६३)	१०७
एवमेतेन विधिना कार्या (२/१०५)	१२८
एवमेतेन विधिना चतुरस्रं (२/१०१)	१२५
एवमेवास्त्विति ततः (१/७५)	५१
एवं तु स्थापनं कृत्वा (२/४३)	१०२
एवं प्रयोगे प्रारब्धे (१/६४)	४९
एवं रंगशिरः कृत्वा (२/७५)	११३
एवं विकृष्टं कर्तव्यं (२/८५)	११६
एवंविधिपुरस्कारैः (२/६७)	१०९
एवं विधैः प्रकर्तव्यं (२/७२)	११३
एवं संकल्प्य भगवान् (१/१६)	२२
अंशांशैर्भाविताम् भावान् (१/६३)	४७
कत्यंगः किंप्रमाणश्च (१/५)	१०
कनीयस्तु तथा वेश्म (२/१०)	८८
कनीयस्तु स्मृतं व्यस्रं (प्र. २/१२,प्र.२/२२)	८९,९६
कर्तराक्षं हिरण्याक्षं (१/३५)	३४
कर्तारः पुरुषाश्चात्र (२/७१)	१११
कर्तॄनपि तथा सर्वान् (२/६०)	१०७
कार्पासं बाल्वजं वापि (२/२८)	९९
कार्यं द्वारद्वयं चात्र (२/६९)	११०
कार्यः शैलगृहाकारो (२/८०)	११५
कालियं भ्रमरं चैव (१/३३)	३४
काषायवसनाश्चैव (२/३८)	१०२
कुशला ये विदग्धाश्च (१/२०)	२९
कूर्मपृष्ठं न कर्तव्यं (२/७२)	११३

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्लोकप्रतीकम्	पृष्ठम्
कोणं वा सप्रतिद्वारं (२/८०)	११५
कौत्सं ताण्डायनिं चैव (१/२९)	३३
कंपने परचक्रात् तु (२/५७)	१०६
क्लीवानां धाष्टर्यजननं (१/११०)	६८
क्वचिद् धर्मः क्वचित् क्रीडा (१/१०८)	६८
गन्धपुष्पफलोपेतो (२/३९)	१०२
गम्भीरस्वरता येन (२/८२)	११६
ग्रहणे धारणे ज्ञानं (१/२२)	२९
ग्राम्यधर्मे प्रवृत्ते तु (१/९)	१६
चतुःषष्टिकरान् कुर्याद् (२/१७)	९३
चतुःषष्टिकरान् कृत्वा (२/३३)	१००
चतुःस्तम्भसमायुक्ता (२/६४, २/९९)	१०८, १२४
चतुरस्रं समं कृत्वा (२/८८)	११९
चतुर्हस्तो भवेद् दण्डो (२/१६)	९०
चित्रकर्मणि चालेख्याः (२/८४)	११६
छिन्नायां तु चतुर्भागे (२/३०)	९९
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् (१/१७)	२५
जनप्रवेशनं चान्यत् (२/९७)	१२४
जम्बुध्वजं काकजंघं (१/२८)	३३
जर्जरे तु विनिक्षिप्तं (१/९२)	५७
तच्छ्रुत्वा भगवान् शक्रो (१/२१)	२९
ततश्च क्षत्रियस्तम्भे (२/४७)	१०४
ततश्च विश्वकर्माणं (१/७९)	५१
ततस्तैरसुरैः सार्धं (१/६६)	४९
ततोऽचिरेण कालेन (१/८०)	५१
ततः सह महेन्द्रेण (१/८२)	५१
तत्र स्तम्भाः प्रदातव्याः (२/९५)	१२४
तत्राऽभ्यन्तरतः कार्या (२/८९)	११९
तथा विध्वंसनं दृष्ट्वा (१/६७)	४९
तन्नात्र मन्युः कर्तव्यः (१/११७)	७३
तन्नैतदेवं कर्तव्यं (१/१०४)	६१
तस्माद् दैवकृतैर्भावैः (२/२३)	९६
तस्मान्नित्यं प्रयत्नेन (२/३१)	९९

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्लोकप्रतीकम्	पृष्ठम्
तस्मान्निवातः कर्तव्यः (२/८१)	११६
तस्यां माल्यं च धूपं च (२/६५)	१०८
तादृशस्तत्र दातव्यो (२/४१)	१०२
ताम्रं चाधः प्रदातव्यं (२/५१)	१०४
तिथिनक्षत्रयोगेन (२/४४)	१०४
तुषारं पार्षदं चैव (१/३२)	३३
तेषां तु वचनं श्रुत्वा (१/६)	१४
तेषां तु वचनं श्रुत्वा मुनीनां (२/४)	८४
तेषां त्रीणि प्रमाणानि (२/८)	८६
तैतिलं भार्गवं चैव (१/३०)	३३
त्रीण्युतराणि सौम्यं च (प्र.२/२७)	९९
त्र्यस्रं त्रिकोणं कर्तव्यं (२/१०२)	१२७
दश प्रयोक्तृभिः स्तंभाः (२/९०)	११९
दिव्यानां मानसी सृष्टिः (२/५)	८५
दीयतां भगवन् द्रव्यं (१/४४)	३८
दुःखार्तानां श्रमार्तानां (१/११४)	६८
दृष्टा मया भगवतो (१/४५)	३८
दृष्ट्वा तेषां व्यवसितं (१/७७)	५१
दृष्ट्वा नाट्यगृहं ब्रह्मा (१/८३)	५१
देवदानवगन्धर्वै- (१/१०)	१६
देवानामसुराणां च (१/११८)	७५
देवानां तु भवेज्ज्येष्ठं (२/११)	८८
देवानां मानसी सृष्टि- (२/२२)	९६
देवानां वचनं श्रुत्वा (१/१०१)	६०
देहल्यां यमदण्डस्तु (१/८९)	५७
दोषैरेतैर्विहीनं तु (२/५७)	१०६
द्वारशालानियुक्तौ तु (१/८८)	५७
द्वारं तेनैव कोणेन (२/१०३)	१२७
धर्मो धर्मप्रवृत्तानां (१/१०९)	६८
धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च (१/१४)	२२
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं (१/११५)	६८
धारणीष्वथ भूतानि (१/८७)	५५
नक्षत्रेण तु कर्तव्यं (२/४२)	१०२
न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं (१/११६)	७३
नन्दां सपुष्कलां चैव (१/५०)	४०

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्लोकप्रतीकम्	पृष्ठम्
नराणां यत्नतः कार्याः (२/५)	८५
नर्तकोऽर्थपतिर्वापि (१/१२५)	८१
न वेदव्यवहारोऽयं (१/१२)	१६
नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तं (१/५३)	४२
नाट्यालंकारचतुराः (१/४७)	४०
नानाकुट्टिमविन्यस्तैः (२/७८)	११३
नानाभावोपसंपन्नं (१/११२)	६८
नानावर्णानि देयानि (२/६६)	१०९
नानाविन्याससंयुक्तं (२/७७)	११३
नानासंजवनोपेतं (२/७६)	११३
नायकं रक्षतीन्द्रस्तु (१/९७)	५८
नारदाद्याश्च गन्धर्वा (१/५१)	४०
निक्षिपेत् कनकं मूले (२/५१)	१०४
निशायां च बलिः कार्यो (२/३८)	१०२
निश्चिता भगवन् विघ्ना (१/७८)	५१
निर्व्यूहकुहरोपेतं (२/७७)	११३
निहतेषु तु सर्वेषु (१/७१)	५०
नीलप्रायं प्रयत्नेन (२/५०)	१०४
नेपथ्यगृहकं चैव (२/९६)	१२४
नेपथ्यभूमौ मित्रस्तु (१/८५)	५४
नेमे वेदा यतः श्राव्याः (प्र० १/१३)	२१
नैकान्ततोऽत्र भवतां (१/१०७)	६४
पञ्चमे च महानागाः (१/९४)	५८
परिगृह्य प्रणम्याऽथ (१/४२)	३७
पवित्रे ब्राह्मणस्तम्भे (२/५८)	१०७
पश्चिमे च विभागेऽथ (२/३५)	१००
पश्चिमेन बलिः पीतो (२/४०)	१०२
पातालवासिनो ये च (१/९६)	५८
पादुकोपानहौ चैव (१/३४)	३४
पार्श्वे च रङ्गपीठस्य (१/९०)	५७
पुण्ड्राक्षं पुण्ड्रनासं च (१/३६)	३४
पुनरेव हि वक्ष्यामि (२/८६)	११८

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्लोकप्रतीकम्	पृष्ठम्
पुरोहितं नृपं चैव (२/५९)	१०७
पुष्यनक्षत्रयोगेन (२/२७)	९९
पूरणे मृत्तिका चाऽत्र (२/६९)	११०
पूर्वप्रमाणनिर्दिष्टा (२/९९)	१२४
पूर्वेण शुक्लान्नयुतो (२/३९)	१०२
पूर्वोक्तब्राह्मणस्तम्भे (२/५०)	१०४
पूर्वं कृतयुगे विप्रा (१/८)	१६
पूर्वं साम प्रयोक्तव्यं (१/१००)	६०
पृष्ठतो यो भवेद् भागो (२/३४)	१००
प्रणम्य शिरसा देवौ (१/१)	२
प्रथमे ब्राह्मणस्तंभे (२/४६)	१०४
प्रथमं शोधनं कृत्वा (२/२६)	९८
प्रददुर्हृष्टमनसः (१/५९)	४६
प्रमाणमेषां निर्दिष्टं (२/९)	८६
प्रमाणं यच्च निर्दिष्टं (२/१२)	९०
प्रयोगे प्रस्तुते ह्येवं (१/७६)	५१
प्रवालमुत्तरे चैव (२/७४)	११३
प्रहृष्टामरसंकीर्णे (१/५६)	४२
प्रयोजितं पुत्रशतं (१/४०)	३४
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तच्चैव (२/१२)	९०
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तस्मात् (२/२१)	९५
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां त्रिप्रकारो (प्र.२/१२)	८९
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां प्रशस्तं (प्र.२/१२)	८९
प्रोक्तवान् दुहिणं गत्वा (१/८१)	५१
बलिप्रदानैर्होमैश्च (१/१२१)	७९
बाह्यतः सर्वतः कार्या (२/८९)	११९
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा (१/१०२)	६०
ब्रह्मा कुटिलकं चैव (१/६०)	४७
ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा तु (२/५५)	१०५
भगवन् ! श्रोतुमिच्छामो (२/१)	८३
भरतस्य वचः श्रुत्वा (२/१)	८३
भवतां देवतानां च (१/१०६)	६२
भवद्भिः शुचिभिर्भूत्वा (१/७)	१५

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्लोकप्रतीकम्	पृष्ठम्
भारतीं सात्वतीं चैव (१/४१)	३६
भित्तिकर्मणि निर्वृत्ते (२/४४)	१०४
भित्तिकर्मविधिं कृत्वा (२/८२)	११६
भित्तिष्वथ विलिप्तासु (२/८३)	११६
भूमिस्तत्रैव कर्तव्यः (२/२५)	९८
भूमेर्विभागं पूर्वं तु (२/२४)	९७
भोजने कृसराश्चैव (२/६७)	१०९
मण्डपे विप्रकृष्टे तु (२/१९)	९३
मधुपर्कस्तथा राज्ञे (२/४२)	१०२
मन्त्रपूतं च तद् देयं (२/५९)	१०७
मन्दवातायनोपेतो (२/८१)	११५
मर्त्यलोकगताः सर्वे (१/१२२)	७९
महानयं प्रयोगस्य (१/५४)	४२
महेन्द्रप्रमुखैर्देवैः (१/११)	१६
मानुषस्य तु गेहस्य (२/२३)	९६
मुनयः पर्युपास्यैनं (१/३)	९
मुहूर्तेनानुकूलेन (२/३२,४३)	९९, १०२
य इमे वेदगुह्यज्ञा (१/२३)	३१
यच्च तस्याः क्षमं द्रव्यं (१/४३)	३७
यथाऽचलो गिरिर्मेरु- (२/६१)	१०७
यथाविधि यथादृष्टं (१/१२६)	८१
यश्चाप्यास्यगतो भावो (२/२०)	९५
यज्ञेन संमितं ह्येतत् (१/१२४)	८१
यस्मादनेन ते विघ्नाः (१/७३)	५१
यादृशं दिशि यस्यां तु (२/४०)	१०२
यान्येतानि नियुक्तानि (१/९८)	५८
यूकास्त्वष्टौ यवो ज्ञेयो (२/१५)	९०
येनानुकरणं नाट्यं (प्र.१/११८)	७५
योऽयं भगवता सम्यग् (१/४)	१०
योऽयं भगवता सृष्टौ (१/१०३)	६१
योऽयं स्वभावो लोकस्य (१/११९)	७५
यो विधिः पूर्वमुक्तस्तु (२/८७)	११८
रक्षणे मण्डपस्याऽथ (१/८४)	५४
रङ्गपीठगतान् विघ्नान् (१/७०)	५०

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्लोकप्रतीकम्	पृष्ठम्
रङ्गपीठस्य पार्श्वे तु (२/६३)	१०८
रङ्गपीठस्य मध्ये तु (१/९५)	५८
रङ्गपीठावलोक्यं तु (२/९२)	११९
रङ्गपीठं ततः कार्यं (२/६८)	११०
रङ्गशीर्षं तु कर्तव्यं (२/६८)	११०
रत्नदानैः सगोदानैः (२/५४)	१०५
रत्नानि चाऽत्र देयानि (२/७३)	११३
लतावन्धाश्च कर्तव्याः (२/८५)	११६
लाङ्गलेन समुत्कृष्य (२/७०)	११०
लाङ्गले शुद्धवर्णौ तु (२/७०)	११०
वर्णाश्चत्वार एवाय (१/८६)	५४
विकृष्टश्चतुरस्रश्च (२/८, प्र.२/१२,प्र.२/२२)	८६,८९,९६
विकृष्टे यान्यशेषाणि (२/८८)	११९
विघ्नानां वचनं श्रुत्वा (१/१०५)	६२
विद्युतं शातजंघं च (१/३९)	३४
विधिना स्थापयेत् तज्ज्ञो (२/९३)	११९
विधिर्यश्चतुरस्रस्य (२/१०४)	१२८
विभज्य भागान् विधिवद् (२/३५)	१००
विरूपाक्षपुरोगाश्च (१/६५)	४९
विष्णुः सिंहासनं चैव (१/६१)	४७
वेदविद्येतिहासानां (प्र.१/१२०)	७९
वेदोपवेदैः सम्बद्धो (१/१८)	२५
वैडूर्यं दक्षिणे पार्श्वे (२/७४)	११३
वैश्यस्तम्भस्य मूले तु (२/५२)	१०४
वैश्यस्तम्भे विधिः कार्यो (२/४८)	१०४
शङ्खदुंदुभिनिर्घोषै (२/३६)	१०२
शङ्खवर्णमुखं षण्डं (१/३८)	३४
शतं चाष्टौ चतुःषष्टिः (२/९)	८६
शान्तितोयं ततो दत्वा (२/३३)	१००
शाण्डिल्यं चैव वात्स्यं च (१/२६)	३३
शिरःपर्वस्थितो ब्रह्मा (१/९३)	५८
शुद्धादर्शतलाकारं (२/७३)	११३
शुभभूमिर्विभागस्थो (२/८७)	११८
शुभे नक्षत्रयोगे च (२/३६)	१०२

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्लोकप्रतीकम् *पृष्ठम्*

शूद्रस्तम्भस्य मूले तु (२/५२) १०४
शूद्रस्तम्भे विधिः कार्यः (२/४९) १०४
शेषाणां भोजनं कार्य (२/५८) १०७
शेषा ये चैव हिंसार्थं (१/७४) ५१
शेषा ये देवगन्धर्वा (१/६२) ४७
शोधयित्वा वसुमतीं (२/२७) ९९
श्यामायनं माठरं च (१/३७) ३४
श्रुतिस्मृतिसदाचार- (प्र.१/१२०) ७९
श्रुत्वा तु शक्रवचनं (१/२४) ३२
श्रूयतां तद्यथा यत्र (२/६) ८५
षडन्यानन्तरे चैव (२/९२) ११९
समन्ततश्च कर्तव्या (२/८६) ११८
सममर्धविभागेन (२/३४) १००
समा स्थिरा तु कठिना (२/२५) ९८
समाप्तजप्यं व्रतिनं (१/२) ९
समुन्नतं समं चैव (२/१००) १२५
सम्फेटविद्रवकृता (१/५८) ४५
समासु जातशोभासु (२/८४) ११६
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं (१/१५) २२
सर्वमेवं विधिं कृत्वा (२/६०) १०७
सर्वशुक्लो विधिः कार्यो (२/४७) १०४
सर्वं पीतं प्रदातव्यं (२/४९) १०४
सर्वं रक्तं प्रदातव्यं (२/४८) १०४
सर्वातोद्यैः प्रणुदितैः (२/३७) १०२
सर्वेष्वेवं तु निक्षेप्यं (२/५३) १०४
सुधाकर्म बहिस्तस्य (२/८३) ११६
सुपीठधारिणीयुक्तं (२/७८) ११३
सुमालां सन्ततिं चैव (१/४९) ४०
सैन्धवं सपुलोमानं (१/२७) ३३
सौदामिनीं देवदत्तां (१/४८) ४०
स्तम्भद्वारं च भित्तिं च (२/६२) १०७
स्तम्भस्योत्स्थापने सम्यक् (२/५६) १०६
स्तम्भानां बाह्यतश्चापि (२/९०) ११९

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

श्लोकप्रतीकम्	पृष्ठम्
स्तम्भानां स्थापनं कार्यं (२/४५,४६,५४)	१०४,१०५
स्तम्भेषु मत्तवारण्याः (१/९१)	५७
स्तम्भं वा नागदन्तं वा (२/८६)	११५
स्थापने ब्राह्मणेभ्यश्च (२/४१)	१०२
स्थाप्यं चैव ततः पीठं (२/९४)	११९
स्वस्तिपुण्याहघोषेण (२/५३)	१०४
स्वातिनारदसंयुक्तो (१/५२)	४०
हस्ततिष्यानुराधाश्च (प्र.२/२७)	९९
हस्तप्रमाणैरुत्सेधै– (२/९१)	११९
हस्तात् प्रभ्रष्टया वाऽपि(२/३०)	९९

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 7048

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative

1. शिवराजविजयः (प्रथमो विराम) व्याख्याकार : श्रीनिवास शर्मा 2000 40.00
2. वृत्तरत्नाकरः (सम्पूर्ण) नारायणी-तारा-संस्कृत हिन्दी व्याख्योपेतः, पं० सत्यानारायण शास्त्री खण्डूड़ी 2000 40.00
3. मध्यमव्यायोगः महाकवि भास प्रणीतः, संस्कृत-हिन्दी-भूमिकाऽन्वय-शब्दार्थ-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतः, सम्पादक : डॉ० त्रिलोकीनाथ द्विवेदी [illegible] 25.00
4. मुण्डकोपनिषद् : शाङ्करभाष्य-हिन्दीव्याख्या-मेक्समूलरकृताङ्ग्लानुवादैः विस्तृत भूमिकाया च संवलिता : हिन्दी व्याख्याकार पं० श्री जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग [illegible] 35.00
5. ईशावास्योपनिषद्-शाङ्करभाष्य : हिन्दी आङ्ग्लानुवादसहितः शशितिवारी 50.00
6. कठोपनिषद्-शाङ्करभाष्य : हिन्दी आङ्ग्लानुवादसहितः रामरंग शर्मा, तृतीय संस्करण [illegible] 35.00
7. तर्कसंग्रहः (अन्नम्भट्टकृत) मूल दीपिका संस्कृत व्याख्या आङ्ग्लानुवादसहितः, के० पी० पर्व 1999 40.00
8. तर्कसंग्रह (श्रीमदन्नम्भट्टविरचितः) न्यायबोधिनी संवलितः हिन्दी व्याख्या सहित नर्वदेश्वर तिवारी 1997 35.00
9. वैदिक साहित्य का इतिहास : डॉ० जयदेव वेदालंकार 50.00
10. वैदिक साहित्य का इतिहास : डॉ० कुँवर लाल जैन 40.00
11. वेदान्तसार (श्रीसदानन्दविरचितः) श्री रामतीर्थप्रणीतं विद्वन्मनोरञ्जनी समाख्या व्याख्या हिन्दी रूपान्तर व रेखा चित्रों तथा विस्तृत भूमिकादिभिश्च समलंकृतः पं० रामगोविन्द शुक्ल 2000 50.00
12. सांख्यकारिका: (ईश्वरकृष्णविरचिता) अन्वय गौड़पादभाष्य अन्वय हिन्दी, व्याख्या सहितः डॉ० बैजनाथ पाण्डेय 1998 20.00
13. चन्द्रालोकः (पीयूवर्षश्रीजयदेवविरचितः) सम्पूर्ण संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहितः डॉ० त्रिलोकीनाथ द्विवेदी अजिल्द 60.00, सजिल्द 80.00
14. चन्द्रालोकः (पीयूवर्षश्रीजयदेवविरचितः) (1-4 मयूख) संस्कृत हिन्दी व्याख्याः त्रिलोकीनाथ द्विवेदी 20.00
15. कादम्बरी : (बाणभट्टस्यकृतं) (शुकनासोपदेश) भानुचन्द्र सिद्धचन्द्र टीका भाषानुवाद व्याकणिक विशेषता सरल संस्कृत-सरल संस्कृत व्याख्यासमन्वितः श्रीमती सुदेश नारंग, द्वितीय संस्करण 1998 30.00
16. किरातार्जुनीयम् : (महाकविभारविकृतं) (प्रथम एवं द्वितीय सर्ग) संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहितः डॉ० अमलधारी सिंह व डॉ० कान्ता भाटिया 40.00

भारतीय विद्या प्रकाशन

1, यू०बी०, जवाहर नगर,
बंगलो रोड, दिल्ली-7.
दूरभाष : (011) 3971570

पोस्ट बाक्स नं० 1108, कचौड़ी गली,
वाराणसी-221001 (उत्तर प्रदेश)
दूरभाष : (0542) 392376

CC-O. Jangamwadi Math Collection, Varanasi. An eGangotri Initiative